रंगभूमि : अध्ययन

(प्रमचन्द जी के अमर उपन्यास "रंगभूमि" का
सरल-सुबोध अध्ययन)

लेखक :

प्रो० रामखेलावन चौधरी, एम० ए०, एम० एड०
(लेक्चरर, जियालाल एजुकेशनल इन्स्टीट्यूट, अजमेर)

Donated by
Rk Razdan w/o RL Shant

मूल्य २-५०

प्रकाशक :

हिन्दी साहित्य भण्डार,

गंगाप्रसाद रोड,

लखनऊ

प्रथम संस्करण

१९६५

मूल्य – ढाई रुपया

मुद्रक :

वन्दना प्रेस,

नजीरगंज, डालीगंज,

लखनऊ

विषय सूची

भूल सुधार

प्रेस की भूल से पृष्ठ संख्या ४३ के स्थान पर ४६ एवं ४६ के स्थान पर ४३ छप गया है पाठक कृपया सुधार कर पढ़ें।

—:०:—

रंगभूमि : एक अध्ययन

परिच्छेदों का साहित्यिक मूल्यांकन

परिच्छेद १—भारत के प्रसिद्ध नगर बनारस के बाहरी भाग में स्थित पांडेपुर की बस्ती में एक गरीब अंधा चमार रहता था। भारतीय प्रथा के अनुसार उसका नाम सूरदास पड़ गया। भीख मांगना उसका पेशा था। जाति और पेशे से निकृष्ट होने पर भी उसमें अन्तर्दृष्टि थी; उसे जीवन का अनुभव था और सरल स्वभाव होने के साथ-साथ वह धुन का पक्का था। उसने कुछ धन जोड़ लिया था। बाप-दादों से उसे एक जमीन भी मिली थी जिस पर उसे गर्व था। उस जमीन के टुकड़े पर पड़ोसियों के जानवर घास चरते और उसका उपयोग सार्वजनिक कामों के लिये भी होता। उसी जमीन के निकट एक ईसाई महोदय ने जिनका नाम जानसेवक था, चमड़े का गोदाम खोला था। इनके परिवार में उनके वृद्ध पिता, पत्नी, पुत्री सोफिया और पुत्र प्रभु सेवक सदस्य थे। एक दिन जॉनसेवक सपरिवार अपनी फिटन पर अपना गोदाम देखने चले। मार्ग में सूरदास ने फिटन का पीछा किया। सोफिया की इच्छा के विरुद्ध जॉनसेवक सूरदास की याचना ठुकराते रहे। उधर सूरदास उनकी फिटन के पीछे दौड़ता-दौड़ता गोदाम तक चला आया। गोदाम पहुँच कर उनका ध्यान सूरदास की जमीन की तरफ गया। इसकी ओर उनके मुन्शी ताहिर अली ने उनका ध्यान आकर्षित किया था। जान सेवक का इरादा उस पर एक सिगरेट का कारखाना बनवाने का था। वे उस जमीन को देखने लगे और इधर सोफिया सूरदास से दर्शन-चर्चा करने लगी। उसकी माँ सूर की हँसी उड़ाती रही। माता-पिता ने सूरदास को भिक्षा देने से इनकार कर दिया। इसी बीच ताहिर अली ने बताया कि वह जमीन सूरदास की है। उन्होंने सूरदास से जमीन बेचने का आग्रह किया पर उसने इनकार कर दिया। बस, चतुर जॉनसेवक उस पर प्रेम बरसाने लगे। उसे पाँच

रुपये देने का प्रयत्न उन्होंने किया पर सूर ने उनकी कूट नीति को समझ कर रुपये लेने से इनकार कर दिया। ईसाई परिवार वापस लौट गया।

परिच्छेद २—उस जमीन के प्रश्न ने सूरदास के मन में हलचल पैदा कर दी। यह उसके पुरखों की निशानी थी और इससे मोहल्ले वालों का भला होता था। इधर ईसाई जान सेवक की निष्ठुरता से उसे पीड़ा पहुँची थी। घर लौट कर सूर ने मनको समझाया। भिक्षा रूप में प्राप्त अन्न को उसने हाँडी में डाल कर, पकाया। कुछ रोटियाँ सेंकी और अपने भतीजे मिट्ठू को जगाया। मिट्ठू ने गुड़-रोटी न खाकर दूध के लिये ज़िद की। अब सूरदास को पड़ोसी बज़रंगी अहीर के घर जाना पड़ा। वहाँ से दूध लाकर भतीजे को खिलाया पिलाया और स्वयं खा-पीकर मंदिर की ओर चला जहाँ रात को जगधर खोंचे वाला, नायक राम पंडा, मंदिर का पुजारी दयागिरि, ठाकुरदीन पान वाला, भैरों पासी और बजरंगी अहीर एकत्र होकर भजन आदि गाते, ठठोली करते और दिन के श्रम को दूर करते। यहाँ दूध और शराब के महत्व पर वार्तालाप हुआ, और खेती की श्रेष्ठता सिद्ध करके, अंत में सूरदास ने अपनी जमीन का प्रसंग छेड़ दिया। सबके होश उड़ गये। इसी बीच ताहिर अली उधर आ निकले। उन्होंने भी ईसाई साहब की योजना की बात बतायी। सूर ने जमीन न बेचने का अपना निश्चय दोहराया फिर सब परेशान हो उठे। पर, सूरदास का भजन प्रारम्भ हुआ और चिन्ता के बादल छट गये। सूर लौट कर अपनी झोपड़ी में भतीजे के साथ सो गया।

परिच्छेद ३—मि० जॉन सेवक का बंगला सिगरा में था। उनके पिता ईश्वर सेवक बड़े धर्मपरायण और किफायतशार थे। उन्हें अपने पुत्र का स्वभाव पसंद न था। वे अपनी पोती सोफिया से प्रायः बाइबिल पढ़वा कर सुना करते थे। उधर सोफ़िया ईसाई होते हुए भी बाइबिल पर अक्षरशः विश्वास न करती थी। उसके हृदय में अनेक संदेह उठते थे और बाबा को बाइबिल सुनाना उसे अखरता था पर माता के भय से वह पढ़ती ही थी। उसकी माँ को अपने धर्म पर अंधविश्वास था और वह अनदार तथा कट्टर स्वभाव की थीं।

सोफिया का भाई प्रभु सेवक भी उदार विचारों का और विचार शील बुद्धि वादी युवक था पर वह अपने विचार निर्भीकतापूर्वक प्रकट नहीं करता था। सोफिया अपने विचार स्पष्ट व्यक्त कर देती थी। बाइबिल के प्रति अपने संदेह प्रकट करने में उसे माँ का क्रोध सहन करना पड़ा। फिर भी उसनें अपने बाबा को बाइबिल पढ़कर सुनायी। एक दिन गिरजे न जाने पर सोफिया को माता का कोप-भाजन बनना पड़ा। उसका इतना अपमान हुआ कि उसने घर से निकल जाने का निश्चय किया। सबके गिरजे चले जाने पर वह बँगले से बाहर आयी। वह गंगा की ओर बढ़ती गयी। मार्ग में उसे एक विशाल महल दिखायी पड़ा। उसके चबूतरे पर कुछ नवयुवक देश प्रेम से भरा गीत गा रहे थे। इस बीच वहाँ आग लग गयी। लोग आग बुझाने दौड़ पड़े। एक व्यक्ति इसी प्रयत्न में गिर पड़ा। सोफिया उसे बचाने दौड़ी पर स्वयं आग की लपेट में आगयी। वह बेहोश हो गयी। होश में आने पर उसने अपने को एक सजे हुए कमरे में पाया। देव तुल्य एक वृद्ध पुरुष और संभ्रांत महिला उसकी सेवा में लगे थे। उसे ज्ञात हुआ कि एक नवयुवक-समिति द्वारा आयोजित उस अग्नि-परीक्षा में वह जल गयी थी और उसने जिस नवयुवक को बचाया था, वह उसी परिवार का पुत्र था। यह संयोग था कि इस नवयुवक विनय की बहन इंदु नैनीताल में सोफिया के साथ पढ़ चुकी थी। इंदु भी उससे मिली। यह परिवार बनारस के प्रसिद्ध रईस कुँवर भरतसिंह का था। इस परिवार में सोफिया को आदर और प्रेम इतना मिला कि वह अपने घर के दुख को भूल गयी। यहाँ रह कर सोफिया को हिन्दू-धर्म पर श्रद्धा होने लगी। सोफिया और इन्दु दो बहनों की तरह रहने लगीं। सोफिया के दुर्घटना ग्रस्त होने का समाचार जॉन सेवक को भेज दिया गया। उसकी माँ लड़की को घर वापस नहीं लाना चाहती थीं पर ईश्वर सेवक (बाबा) के कहने से सब लोग उसे बुलाने गये। कुंवर भरतसिंह के घर उनका आदर हुआ। मिसेज जॉन सेवक को सन्तोष न हुआ पर जॉन सेवक ने कुँवर साहब को अपनी सिगरेट कंपनी के पचास हजार के हिस्से खरीदने को राजी कर लिया। यह उनकी बहुत बड़ी सफलता थी। सोफिया और उसकी माँ का मन मुटाव दूर न हुआ। इधर कुँवर साहब ने सोफिया

को अपने घर रखने का आग्रह किया। जॉन सेवक ने उसे उन्हीं के घर कुछ दिन रहने को छोड़ दिया।

परिच्छेद ४—सवेरा होते ही सूरदास भिक्षा माँगने निकला। बजरंगी अहीर का पुत्र घीसू प्रायः उसे परेशान करता रहता था। आज भी वह उसकी लठिया खींचने लगा। खींच तान में लाठी छूट गयी और घीसू गिर गया। उसे चोट आगयी। उसने दौड़ कर माँ से शिकायत की। सूर पर गालियों की बौछार होने लगी। बजरंगी पत्नी को मना करने लगा। इसी बीच भैरों ताड़ी वाला उधर आ निकला। जगधर भी आ पहुँचा। दोनों सूर को धिक्कारने लगे। सूर का भतीजा मिठुआ जगधर और भैरों को चिढ़ाने लगा। भैरों ने उसे कई तमाचे मार दिये। अब सूरदास उबल पड़ा। असमर्थ होने पर भी उसने बदले की भावना से सबको चिढ़ाना प्रारंभ किया। सूरदास के बाल-व्यवहार पर सब हँस पड़े। बजरंगी ने सबको शांत किया। सूरदास के मन पर इतना आघात हुआ कि वह अपनी जमीन बेचने के लिए गोदाम की ओर चल पड़ा। दयागिरि ने मार्ग में उसे समझाया पर वह न माना। गोदाम पहुँच कर ताहिर अली का सामना होते ही उसका विचार फिर बदल गया। उसने जमीन बेचने से फिर इनकार कर दिया। उधर दयागिरि ने सारा समाचार मोहल्ले में जा कहा। सब लोग सूर को मनाने के लिए दौड़े पर यहाँ गोदाम पहुँच कर मालूम हुआ कि सूरदास ने जमीन बेचने से इनकार किया है। इन लोगों ने ताहिर को प्रलोभन दिये और कुछ भय भी दिखाया। सब चले गये पर बजरंगी ताहिर के घर के पास डटा रहा। ताहिर की विमाताओं ने उससे ५०) लेने पर जमीन छुड़वा देने का वायदा किया। इन्होंने ताहिर को खुदा के कहर का भय दिखाकर जमीन की ओर से जॉन सेवक का विचार हटा देने का प्रयत्न किया।

परिच्छेद ५—बनारस म्युनिसिपैलिटी के प्रधान, चतारी राजा महेन्द्र कुमार सिंह एक प्रसिद्ध नवयुवक जनसेवी थे। वे कुँवर भरतसिंह के दामाद अर्थात् सोफिया की सखी इन्दु के पति थे। वे सारे कार्य जनहित में ही करते थे। मि० जॉनसेवक कुँवर भरत सिंह से परिचित हो जाने के कारण

राजा महेन्द्र कुमार सिंह से काम निकालने के लिए मिले क्योंकि वे म्युनिसिपैलिटी के अध्यक्ष होने के नाते जमीन दिला सकते थे। सूरदास पर जोर डलवा देने से उनका काम बन सकता था। जॉनसेवक ने वार्तालाप में राजा साहब की तारीफ की और अधिकारियों की बुराई। प्रसन्न होकर महेन्द्र सिंह ने सहायता का वचन दिया। जॉन सेवक घर लौट आये और कहने लगे कि सोफिया और इन्दु की मित्रता से ऐसा लाभ होने की आशा है। उनकी पत्नी को सोफिया से चिढ़ हो गयी थी। वे बुरा भला कहने लगीं। सोफिया का भाई प्रभुसेवक कुँवर भरत सिंह के परिवार से प्रभावित था और उनके पुत्र विनय का मित्र बन गया था। उसे सोफिया से सहानुभूति भी थी। इसलिए वह माँ से उनकी अनुदारता पर बिगड़ बैठा। पिता ने उसे किसी प्रकार समझा-बुझा कर झगड़ा शांत करा दिया।

परिच्छेद ६—ताहिर अली की विमाताओं ने उन्हें सूरदास की जमीन के बारे में उनके मन में खुदा के कहर का भय पैदा करा दिया था। वे दूसरे दिन अपने मालिक जॉन सेवक के पास पहुँचे और गरीबों को सताने से उत्पन्न परिणामों का भय दिखाकर जमीन न खरीदने का आग्रह करने लगे। चालाक ईसाई साहब इस अंध विश्वास से भयभीत न होकर उल्टे उन्हें बर्खास्त करने का भय दिखाने लगा। ताहिर अली ने अपने मन को समझाया और घर लौट आये।

परिच्छेद ७—सूरदास को अपनी जमीन निकल जाने की चिन्ता से चैन न आती थी। पंडा नायकराम उसे समझाता, साहस दिलाता और हर प्रकार सहायता देने की बात कहता। वह उसे समझा रहा था कि राजा महेन्द्र सिंह अपनी गाड़ी पर आ निकले। वे उन दोनों को अपनी गाड़ी पर बिठा कर जॉन सेवक के गोदाम पर लाये। उन्होंने सूर से जमीन बेचने का आग्रह किया। सूर का तर्क था कि इससे गरीबों की हानि होगी। राजा साहब का तर्क था कि कारखाना खुल जाने से गरीबों को रोजगार मिलेगा। सूर का उत्तर था कि कारखाने से जुआ, शराब और व्यभिचार की बुराइयाँ

फैलेंगी। उसके तर्क ने राजा साहब को परास्त कर दिया। सूरदास की धाक जम गयी। राजा साहब ने जॉनसेवक को जवाब दे देने का वायदा किया।

परिच्छेद ८—सोफिया ने इन्दु के घर चार महीने बिता दिये वह यहाँ रह कर हिन्दू, बौद्ध और जैन दर्शनों का अध्ययन करती रही। इसी बीच उसकी सखी इन्दु ससुराल जाने के लिए तैयार हो गई। उसके पति राजा महेन्द्र सिंह उसे ससम्मान लेने आये। एक ओर इन्दु सखी के वियोग से दुखी थी और दूसरी ओर ससुराल में अपनी स्वतन्त्रता के अभाव में पीड़ा पा रही थी। साथ ही यह दुख भी था कि उसके पति सार्वजनिक कार्यों में व्यस्त रहने के कारण उसके प्रेम तृषित हृदय को तुष्ट न करते थे। इन्दु ने सोफिया से अपने साथ चलने की प्रार्थना की। सोफिया बड़ी कठिनाई से राजी हुई पर राजा महेन्द्र सिंह ने बदनामी के भय से अपने घर ले जाने से इनकार कर दिया। मर्माहत होकर इन्दु ने अपनी माता से जोर डालने के लिये कहा पर वे भी उसे पति की आज्ञा मानने का ही उपदेश देने लगी। इन्दु निराश हो गई। वह अपने भाई विनय से मिली। बात-बात में यह प्रकट हो गया कि सोफिया और विनय मे प्रेम पैदा हो गया है। इन्दु ने भाई को सचेत किया क्योंकि उसने देश सेवा का व्रत ले लिया था और साथ ही इससे माता पिता को कष्ट होगा। दोनों का विवाह सम्भव न था।

परिच्छेद ९—इंदु सोफिया से मिले बिना पति के साथ चली गयी। सोफिया को यह व्यवहार खला और अपमान अनुभव हुआ। पर, इन्दु की माता ने सोफिया को यह समझा दिया कि मैंने सोफिया को जाने न दिया, इससे इन्दु नाराज होकर चली गयी। साथ उन्होंने सोफिया पर बड़ा प्रेम प्रदर्शित करना आरम्भ किया। उसकी सेवा में दास-दासी तत्पर थे। सोफिया का दिल साफ हो गया। एक दिन उसका भाई प्रभुसेवक एक कविता की रचना करके विनय को सुनाने लाया। उसका विषय था—गार्हस्थ्य प्रेम उत्तम है। भावपूर्ण कविता थी। विनय ने सुनकर आलोचना की कि आज देश को उस प्रेम की आवश्यकता नहीं जो भारतीय जन को स्वार्थ और माया के बन्धन में डाल दे। आज विवाह करके जनसंख्या बढ़ाते जाने से क्या लाभ ? प्रभुसेवक निर्णय देने

के लिए सोफिया को विनय के कमरे में बुला लाया। सोफिया ने देखा कि विनय फर्श पर एक कंबल के सहारे रहता है। उसकी माता जान्हवी ने पहले ही सोफिया से विनय की शिक्षा-दीक्षा, उसके देश-सेवा व्रत आदि के बारे में बताया था। वह विनय से अत्यन्त प्रभावित हो गयी थी और प्रेम करने लगी थी। फिर भी इस अवसर पर उसने यह निर्णय दिया कि इस समय भारत को गार्हस्थ्य धर्म की आवश्यकता नहीं है और यह कविता असामयिक है। देखने में यह विनय की विजय थी पर वास्तव में यह बड़ी पराजय थी। प्रकारान्तर से सोफिया ने विवाह को अनुचित बताकर विनय को बता दिया था कि उसका और विनय का विवाह असम्भव है। विनय और प्रभुसेवक सोफिया के चले जाने के बाद बात करने लगे। विनय की निराशा से प्रभुसेवक को दुख हुआ। तभी इन्दु का समाचार लाने के लिये जान्हवी ने विनय को बाहर भेज दिया। प्रभुसेवक ने बहन के विचार जानने का प्रयत्न किया। सोफिया को विनय की प्रेमपात्री होने का गर्व था पर वह इस प्रेम को विनय के मार्ग की बाधा न बनने देना चाहती थी। उसका प्रेम त्यागमय था पर आकर्षण बढ़ने लगा। विनय राजपूताना जाने वाले थे पर वह अपना जाना स्थगित कर रहे थे। एक दिन दोनों की चेष्टाओं से रानी जान्हवी को उनके हृदय का हाल मालूम हो गया। उन्होंने निष्ठुरतापूर्वक विनय को राजपूताने जाने का आदेश दिया। वे बेमन से चले गये और एक बार सोफिया से मिल भी न सके। सोफिया ने चलते समय उनके दर्शन ही कर पाये। दोनों का मन विरह की आँच में झुलस रहा था।

परिच्छेद १०—घरों में चलने वाली दोस्ती-दुश्मनी का असर बच्चों पर सबसे ज्यादा होता है। सूरदास की जमीन को लेकर जो चर्चा चलती थी, उसके प्रभाव से मिठुआ और घीसू न बच सके। दोनों ताहिरअली से शत्रुता रखने लगे। वे ताहिर अली के मुँह पर खरी खोटी बातें कहते पर वे टाल जाते। एक दिन दोनों ने जाकर ताहिर अली के छोटे भाइयों से बदला लेने के लिए लड़ाई छेड़ दी। घीसू बलवान था। उसने सबको पीटा और सबसे बड़े भाई माहिरअली को बुरी तरह काट लिया। खबर घर पहुँची।

विमाताओं के कहने से स्वयं ताहिर अली आ गये। घीसू को मार लगायी। उधर बजरंगी भी आ गया। अब ताहिरअली और बजरंगी में कहा सुनी हुई और अंत में बजरंगी की लाठी ताहिर के सर पर बैठ गयी। ताहिर अली को गोदाम के चमार घर उठा लाये। बेचारी पत्नी कुलसुम कहती रही कि यह नौकरी छोड़ दो, भाइयों के लिए झगड़ा न करो पर मुन्शी जी को यह अच्छा न लगा। घीसू की माँ यह मारपीट की बात सुनकर पुलिस और मुकदमें के भय से ताहिरअली के घर आयी। ताहिर की विमाताओं ने उसे डरा-धमका कर उससे २५ रु० ले लिए और बेचारे ताहिर को एक पाई न देकर जॉनसेवक के पास दवा कराने के लिए जाने की सलाह दी। वे उनके बँगले पर गये। उस समय जॉनसेवक अपनी पत्नी के साथ बातें कर रहे थे। ताहिर का हाल सुनकर जॉनसेवक ने उन्हें ही बुराभला कहा, भोले ग्रामीणों से लड़ाई लड़ने पर बेवकूफ बनाया पर इस घटना से लाभ उठाने में न चूके। वे ताहिर को लेकर राजा महेन्द्रसिंह के घर गये और खूब नमक मिर्च लगा कर पांडेपुर के लोगों की बुराई की। राजा साहब को रोष आया। उन्होंने उस झगड़े की जमीन को ले लेने में सहायता का वचन दे दिया। घर लौट कर उन्होंने ताहिर को अपने पुत्र प्रभुसेवक के साथ वापस भेजा और अपनी सफलता पर फूले न समाये।

परिच्छेद ११—भैंरों पासी (ताड़ी का दुकानदार) जितना मातृभक्त था, उतना ही अपनी पत्नी सुभागी के लिए शत्रु। वह स्वयं माँ की सेवा करता और पत्नी से करवाता। बुढ़िया हर प्रकार का मानसिक अत्याचार करती और उसके कहने से भैंरों सुभागी को ठोकता पीटता। एक दिन ताड़ी के नशे में उसने सुभागी को बुरी तरह पीटा और वह बेचारी भागकर सूरदास की झोपड़ी में जा छिपी। इस बात पर भैंरों सूरदास से बिगड़ गया। कुछ दिन बाद बुढ़िया की शिकायत पर सुभागी बुरी तरह पिटी और फिर सूरदास की शरण में आयी। सूर ने रक्षा की पर भैंरों ने उसे धक्का दिया। शोर मचने पर मुहल्ले के लोग एकत्र हो गये। सब ओर से सूर पर व्यंग्य वर्षा होने लगी। उस पर सुभागी को फुसलाने और उससे अवैध सम्बन्ध रखने का जुर्म लगाया

गया । साथ ही सूरदास को कुस्ती लड़ने के लिए नायकराम ने उत्साहित किया । शारीरिक बल परीक्षा में वह जगधर से श्रेष्ठ साबित हुआ । सूरदास को इस लांछन से कि वह सुभागी पर कुदृष्टि डालता है, बड़ा दुख हुआ । उधर भैरों और जगधर उसके शत्रु बन बैठे । भैरों ने बदला लेने के लिए सूर की सारी जमापूंजी जो एक पोटली में बंद थी और छप्पर में छिपी रखी थी, उड़ा दी और झोपड़ी में आग लगा दी । इसका पता जगधर को चल गया और सूरदास को उसने बताया पर सूरदास रुपये के बारे में इनकार कर गया क्योंकि लोकभय से वह यह प्रकट न करना चाहता था कि एक भिखारी भी इतना धनवान हो सकता है । हाँ, आग बुझने पर वह राख को टटोलता रहा । सुभागी को इस खबर से बड़ा दुख हुआ । उसने भैरों के घर फिर जाकर रहने और सूरदास के रुपये निकाल लाने का निश्चय किया । मोहल्लेवालों ने सूरदास की झोपड़ी दुबारा उसी दिन बना दी ।

परिच्छेद १२—प्रभुसेवक ताहिर अली के साथ गोदाम की ओर चले । मार्ग में वे, बच्चों के झगड़ों में पड़ कर लड़ने के लिए ताहिर अली को फटकाते रहे । मार्ग में प्रभुसेवक को सूरदास, जगधर, और भैरों मिले । उन्होंने सबसे पूंछताँछ की और किसी को डाँटा तो किसी को समझाया । उन्होंने ताहिर से कहा कि मोहल्ले में पूरी एकता नहीं है अन्यथा सूरदास की झोपड़ी क्यों जला दी जाती । अन्त में उनका सामना नायकराम से हुआ जो आसपास में अपने बल और गुंडागीरी के लिए विख्यात था । वह उससे अकड़ कर बात करता रहा और कुछ अपशब्द कह बैठा । प्रभुसेवक सह न सके, लगे हंटर चलाने । नायकराम हतप्रभ हो गया । सारी शेखी भूल गयी । प्रभुसेवक वापस चले गये । नायकराम की सारी शान खत्म हो गयी पर बाद में वह बदला लेने की हाँकता रहा । मोहल्ले के सब लोग मिल कर शिकायत करने के लिए राजा महेन्द्र सिंह के पास जाने को तैयार हो गये । नायकराम के हल्दी-चूना मला गया; पट्टियाँ बाँधी गयीं । उधर प्रभुसेवक के पिता जॉनसेवक को खबर मिली । काम बिगड़ा देखकर वे तुरन्त पांडेपुर आये । चतुर ईसाई ने सबसे मिलकर क्षमा-याचना की । नायकराम की प्रशंसा की ओर अपने लड़के को बुराभला

कहा। बेचारे देहाती इस ठकुर सुहाती के चक्कर में पड़ गये। इस प्रकार एक बिगड़ी हुई स्थिति से उन्होंने लाभ उठाया। यहाँ तक कि वे उन्हें कार-खाने के बनने से ऐसे लाभ सुझाये कि पांडेपुर वाले सूर की जमीन भी देने को तैयार हो गये। सूरदास ने यह सब सुना और अकेले साहब के विरुद्ध उठे रहने का निश्चय किया।

परिच्छेद १३—सोफिया विनयसिंह के प्रेम में बुरी तरह पड़ गयी। उसे जरा भी चैन न मिलता था। रानी जाह्नवी उसे शंका की दृष्टि से देखने लगी थी। वह चाहती थी कि अपना मन विनय की ओर से हटाले पर विवश हो जाती थी। एक दिन उतावली होकर वह रानी के कमरे में जाकर विनय के पत्र पढ़ने लगी पर उनमें सोफिया के प्रति एक वाक्य भी न लिखा था। लौटकर उसने अत्यन्त भावमय पत्र लिख दिया। पर बाद में उसे पश्चात्ताप हुआ इसी समय रानी साहिबा आगयी और उसने उनसे सच कह दिया कि मैंने विनय के पत्र आपकी अनुपस्थिति में पढ़े। रानी ने उसे खूब फटकारा और उससे विनय के मार्ग से अलग हटने का अनुरोध किया क्योंकि वे उसे आदर्श देशसेवक बनाना चाहती थीं। यहाँ तक कि रानी ने उसे विवाह कर लेने का आदेश दे डाला। सोफिया ने उनके आगे यह बात स्वीकार कर ली पर वह विनय को भूल न सकती थी; विवाह करके प्रेम का त्याग करना असंभव था। उसी दिन उसके भाई प्रभु सेवक उससे मिलने आये। उन्होंने उसे अपनी एक कविता सुनायी और विनय का एक पत्र लाकर दिया। सोफिया ने प्रतिज्ञा बस वह पत्र बिना पढ़े रानी सहिबा को दे दिया। फिर भी उसका मन अशान्त था। वह अपने प्रिय का पत्र पढ़ना चाहती थी। रात में वह रानी साहिबा के कमरे से उनका हैंडबैग उठा लायी, जिसमें पत्र रक्खे रहते थे। सारी रात खोजने पर भी उसे विनय का पत्र न मिला। सबेरा हो गया और जब वह हैंडबैग रखने रानी के कमरे में गयी, तो उसका बुरी तरह उपहास किया गया।

परिच्छेद १४—सोफिया को भरतसिंह के घर रहना कठिन जान पड़ने लगा। एक ओर अविश्वास और दूसरी ओर भावात्मक संघर्ष उसके मन को

झकझोर रहे थे। तभी उसकी माता मिसेज सेवक उसके पास आयी। वह पुरानी दुर्भावना को भूल कर उनके गले लगी। पर, उसे यह जान कर कष्ट हुआ कि वे उसे स्वार्थवश बुलाने आयी है। बनारस के जिलाधीश मिस्टर क्लार्क सोफिया पर लट्टू थे पर वह उनकी ओर से उदासीन थी। उसकी माँ क्लार्क के हाथों सोफिया को सौंप कर अपना सामाजिक सम्मान बढ़ाना चाहती थी। इसलिए वे सोफिया को अपने घर लाना चाहती थी। दूसरे, उसी दिन क्लार्क ने सोफिया को निमंत्रण दिया था। सोफिया धर्म संकट में पड़ गयी। रानी जाह्नवी सोफिया से असंतुष्ट थी ही, उन्होंने परोक्ष रूप से मिसेज सेवक को सोफिया की शादी कर डालने का संकेत कर दिया। रानी और मिसेज सेवक से हिन्दू और ईसाई धर्म की श्रेष्ठता को लेकर बहस हो गयी। दोनों एक दूसरे से असंतुष्ट हो गयीं। मिसेज सेवक ने कुँवर भरतसिंह से मुलाकात की। वे उस दिन गढ़वाल प्रांत में दुर्भिक्ष पीड़ितों की सहायता के लिए स्वयंसेवकों का संगठन कर रहे थे। फिर भी उन्होंने सोफिया और उसकी माता का सम्मान किया। सोफिया उसी दिन अपनी माँ के साथ अपने घर लौट आयी। सोफिया को एक क्षण भी शांति न मिलती थी।

परिच्छेद १५—राजा महेन्द्रकुमार सिंह अधिकारियों से दबते तो न थे पर मन में उन्हें प्रसन्न रखकर सम्मान पाने की इच्छा तो थी ही। अतः जब इंदु के पिता द्वारा संगठित सेवा-समिति को गढ़वाल भेजने के दिन, इन्दु उन्हें बिदाई देने स्टेशन जाने लगी, तो राजा साहब ने उसे रोका। पत्नी होने के नाते इंदु उनका कहना मानने को तैयार हो गयी पर उसका हृदय विद्रोह कर उठा। वह स्टेशन चल दी और वहाँ पहुँच कर पत्नी-धर्म ने उसे फटकारा वह वापस रास्ते से लौट आयी। उधर राजा साहब इन्दु के तर्कों से पराजित हो स्टेशन जा पहुँचे थे। पत्रों में, इस अवसर पर राजा महेन्द्र के आगमन पर टीका-टिप्पणी हुई क्योंकि वे एक शासनाधिकारी थे और ऐसी सुधारवादी समीतियों का स्वागत, शासन की नीति के विरुद्ध था राजा साहब को भय होने लगा कि कमिश्नर क्लार्क उनसे असंतुष्ट न हो जाय। उसे प्रसन्न करने के लिए वह उसके पास गये। उसने यही प्रसंग सामने रक्खा। राजा साहब ने इस

अवसर पर साहस करके कह दिया कि उनका स्टेशन पर जाना अनुचित न था। क्लार्क चुप हो गया पर उसे प्रसन्न करने के लिए क्योंकि वह जॉन सेवक का दामाद बनने वाला था। उन्होंने सूरदास की जमीन को हस्तगत कराने के लिए म्यूनिसिपैलिटी में कानून पास कराने का वचन दे दिया। घर आकर उनमें और इन्दु में बड़ा तर्क हुआ। इन्दु सूरदास के साथ अन्याय करने के लिए पति की आलोचना करती रही। उसका यह तर्क था कि जब जमीन कारखाने के लिए लेना ही है, तो किसी अमीर की जमीन छीनी जाय।

परिच्छेद १६—माता की आज्ञा से विनय सिंह राजस्थान चले गये। वहाँ अरावली की पहड़ियों और जंगलों के बीच भी उनका मन अशांत था। सोफ़िया का प्रेम उनकी सेवा-भावना को कुंठित कर रहा था। जसवंत नगर की रियासत में वे जन-सेवा करने लगे थे। चिकित्सा इस सेवा का माध्यम थी। रियासत के अधिकारी वर्ग के कान खड़े हो गये। एक दिन वे जंगलों में जा रहे थे। थककर वे विश्राम करने लगे। इसी बीच राज्य का एक डाकिया उनकी माता का पत्र लाया जिसमें उन्हें कड़ी फटकार सुनायी गयी थी और उसमें यह भी सूचना थी कि सोफिया और क्लार्क का विवाह होने वाला है। विनय को सोफिया के इस व्यवहार से बड़ी पीड़ा हो गयी। डाकिया उन्हें साथ चलने के लिए मजबूर करने लगा क्योंकि उसके पास ढ़ाई सौ रुपये की रकम थी। उसे भय था कि रास्ते में डाकू लूट न लें। विनय जैसे प्रसिद्ध समाज सेवी के साथ रहने से डाकुओं से मुक्ति मिल सकती थी। विनय उसके साथ चले। उसका भय सच उतरा। मार्ग में रियासत का प्रसिद्ध डाकू वीरपाल सिंह आ पहुँचा। विनय सिंह को पहचान कर डाकिये को छोड़ दिया और क्षमा माँगी। साथ ही उसने रियासत के अफसरों के अत्याचार की चर्चा की। विनय सिंह ने राज्य में सुधार कराने का वचन दिया। डाकिया उन्हें अपने साथ घर ले गया। वहाँ भौजनादि से निवृत्त होकर वे सो गये। सबेरे होते ही पुलिस ने उन्हें पकड़ लिया पुलिस ने बताया कि रात को वीरपाल सिंह ने एक सरकारी खजाने पर डाका डाला था। और डाकिये ने पुलिस को विनय और वीरपाल के मिलने की पूरी सूचना दे दी है।

परिछेन्द १७—डाकुओं द्वारा जसवंत नगर रियासत के खजाने को लुटवाने के अभियोग में विनयसिंह को जेल में डाल दिया गया। प्रमाण के अभाव में मुकदमा भी न चल पाया। जेल में कष्टमय जीवन बिताते-बिताते उन्हें छः महीने बीत गये। एक ओर उन्हें इस बात की प्रसन्नता थी कि उनके इस कष्टमय जीवन से उनकी माता प्रसन्न होगी और दूसरी ओर दुख था सोफिया की हृदयहीनता से। वे स्त्री जाति को कोसते थे। एक दिन रात में जब वे विचारों में निमग्न थे, वीरपाल सिंह ने जेल की दीवार में सेंध लगाकर उन्हें बाहर निकालने का आयोजन किया। उन्होंने कानून के विरुद्ध इस प्रकार मुँह मोड़ने से इन्कार कर दिया। डाकू लोग लौट गये। विनय के इस व्यवहार से अधिकारीगण भी बड़े प्रभावित हो गये। उनका यश चारों ओर फैलने लगा। तभी रियासत के दीवान सरदार नीलकठ सिंह ने उन्हें बुलाया। उन्होंने बड़ी चतुरता से विनय को अपना विचार बदलने के लिए समझाया पर विनय न माने। अन्त में दीवान ने उन पर मुकदमा चलाने का निश्चय किया।

परिच्छेद १८—अपने घर लौट कर सोफिया की उलझन और ज्यादा बढ़ गयी। यहाँ उसे हर प्रकार से प्रसन्न रखने की चेष्टा की गयी। वह स्वयं भी विनय को भूलने और क्लार्क को वरण करने का प्रयत्न करने लगी परन्तु उसके लिएअपने हृदय पर विजय पाना कठिन हो गया। मिसेज सेवक सोफिया को प्रायः डाँटा करती थीं क्योंकि वह क्लार्क को निराश कर रही थी। एक दिन रविवार को वह सपरिवार गिरजे गयी। क्लार्क भी वहाँ था। धर्म पर सोफिया का विश्वास उठता जा रहा था। गिरजे में प्रवेश करने के पूर्व उसने सूर का एक गीत सुना जो दार्शनिक विचारों से ओत प्रोत था। वह इतनी निमग्न ही गयी कि गिरजे में न जा सकी। वहाँ उस दिन उत्तम उपदेश हो रहा था। उपदेश समाप्त हो गया और सोफिया बाहर खड़ी रही। क्लार्क ने उसे बाहर देख कर उसके न आने का कारण पूछा। तब तक बहुत से लोग वहां आ गये। सूरदास ने सबको देख कर अपनी जमीन के लिए फरियाद करनी आरम्भ कर दी क्योंकि राजा महेन्द्र सिंह की सहायता से मिस्टर जॉन सेवक ने सूरदास की भूमि पर अधिकार

कर लिया था परन्तु उसने उसका मुआवजा लेने से इनकार कर दिया था। उपस्थित जनों में कुछ लोग ऐसे भी थे जो जॉन सवक से प्रतिस्पर्धा रखते थे। उन लोगों ने सूरदास का समर्थन करना प्रारम्भ कर दिया। जॉन सेवक वहां से चले आये। उनकी मुलाकात राजा महेन्द्र सिंह से हो गयी। राजा साहब सूरदास की जमीन के कारण जनता में बदनाम हो गये थे। इसलिए इस मामले को तय करने के लिए वे जॉन सेवक के साथ पाँडेपुर गये। वहाँ की जनता को सन्तुष्ट करने के लिये उन्होंने वहाँ पर सरकारी नल, बिजली तथा सड़क आदि बनवाने का वायदा किया। तभी भैंरों की पत्नी सुभागी ने वहाँ आकर सूर के साथ न्याय करने की याचना की।

परिच्छेद १९—सोफिया को मालूम हुआ कि सूरदास के साथ उसके पिता ने अन्याय किया है और इस काम में क्लार्क और राजा महेन्द्र सिंह का समर्थन उसी (सोफिया) के कारण ही मिला है। इससे उसे बड़ा आत्मिक कष्ट हुआ। इस बात का प्रतिकार करने के लिये, वह इन्दु के पास गयी। इन्दु ने उससे स्पष्ट कह दिया कि इस अन्याय की जड़ सोफिया ही है। सोफिया ने प्रण किया कि वह सूरदास को जमीन वापस दिला कर रहेगी। साथ ही इन्दु को इस अपमान के लिए नीचा दिखाने का भी निश्चय कर डाला। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिये वह क्लार्क के प्रति ज्यादा प्रेम प्रदर्शित करने लगी। एक दिन उसने ब.तों ही बातों में उसके प्रेमी क्लार्क को सूरदास की जमीन वापस दिलाने के लिए प्रेरित किया। वह जिले का सर्वोच्च अधिकारी था। वह सोफिया की इच्छा पूरी करने के लिए तैयार हो गया। इसी अवसर पर ताहिर अली ने सूरदास द्वारा दंगाइयों से गोदाम की रक्षा करने की घटना सुनायी। क्लार्क सूरदास के व्यक्तित्व से और भी ज्यादा प्रभावित हो गया और उसने उसकी जमीन वापस कराने का निश्चय कर लिया।

परिच्छेद २०—घर आते ही क्लार्क ने अपने अधीनस्थ कर्मचारियों और सहायकों को बुलाया। डिप्टी साहब ने उसको आदेश दिया कि वे राजा महेन्द्रसिंह को एक परवाना भेज कर सूचित करें कि सरकार पांडेपुर की

जमीन लेने के निर्णय को वापस लेती है। जॉन सेवक को यह सूचना मिली तो उन्हें बड़ा आघात हुआ। उनके पिता और पुत्र ने समझाया कि सूरदास को जमीन वापस देकर झगड़े का निपटारा करना उत्तम होगा पर वे न माने। उन्हें यह भी पता चल गया कि सोफिया के इशारे से क्लार्क ने यह परेशानी खड़ी कर दी। इससे पिता पुत्री में कहासुनी हो गयी। फिर भी सोफिया प्रसन्न थी। उसने राजा महेन्द्रसिंह को नीचा दिखा कर इन्दु से बदला ले लिया था। अब जोश में आकर उसने 'राजा मुछेन्द्रसिंह' शीषर्क से एक प्रहसन लिख डाला जिसमें राजा महेन्द्रसिंह की खिल्ली उड़ाई गयी थी। उसने यह प्रहसन प्रभुसेवक को सुनाया। भाई बहन खूब हँसे। सोफिया इस प्रहसन को किसी पत्रिका में छपवा कर राजा साहब की मट्टी पलीद कर देना चाहती थी। जमीन वापस कराने की सूचना देने के लिए वह प्रभुसेवक के साथ घोड़े पर चली। मार्ग में सूरदास मिल गया। उसके विचारों से प्रभावित हो उसने प्रहसन को फाड़ डाला क्योंकि वह शत्रु के प्रति प्रतिहिंसा की भावना से लिखा गया था।

परिच्छेद २१—राजा महेन्द्रसिंह ने सात वर्षों तक जनता की सेवा जीजान से की थी पर सूरदास के सम्बन्ध में एक छोटी-सी भूल ने उनके सारे कारनामे पर पानी फेर दिया था। वह बदनाम हो गये। इन्दु ने इस मामले में पहले पति का विरोध किया था परन्तु सोफिया के प्रति विद्वेष ने उसकी राय बदल दी थी। उसे सूरदास से घृणा और पति से सहानुभूति हो गयी। वह पति से बदला लेने और अपने निर्णय पर डटे रहने के लिए आग्रह करने लगी। सूरदास की जमीन को कारखाने के लिए लेने के प्रश्न को उसने सम्मान का प्रश्न बना लिया। क्षत्रियत्व की शान रखने के लिए उसने राजा साहब को सलाह दी कि गवर्नर से अपील की जाय। दूसरे दिन जॉन सेवक ने आकर राजा साहब को खूब मारा। उनके ससुर कुँवर भरतसिंह और गाँगुली महोदय ने भी क्लार्क के फैसले के विरुद्ध गवर्नर से अपील करने की राय का पूरा समर्थन किया। अपील कर दी गयी।

परिच्छेद २२—मुंशी ताहिर अली की पारिवारिक दशा बड़ी खराब

थी। वे इतने धर्म परायण थे कि किसी प्रकार अनैतिक ढंग से धन न पैदा करते। आमदनी थोड़ी थी पर उनकी विमाताएँ पान और मिठाइयों पर खूब धन खर्च करती। मुंशी जी पर दूकानदारों का कर्ज लद गया। वे तगादे के लिए आते और उन्हें शर्मिन्दा होना पड़ता था। कई बार वे सरकारी रोकड़ से पैसा लेने का निश्चय करते पर पत्नी उन्हें समझाती। एक दिन जगधर मिठाई वाले का देना चुकाने के लिए उन्हें अपनी पुत्री के गले की तौंक दे देनी पड़ी। यही नहीं, कर्ज निपटाने के लिए १५) लेकर उन्होंने भैरों को कारखाने में आकर ताड़ी बेचने की आज्ञा दे दी। इस प्रकार उन्होने अपनी आत्मा की हत्या कर डाली।

परिच्छेद २३—सूरदास की जमीन बच गयी और राजा महेन्द्र सिंह जैसे व्यक्ति को उसके आगे दबना पड़ा। यह बात मोहल्ले वालों के लिए ईर्ष्या का कारण बन गयी। दूसरे क्लार्क और सोफिया की उस पर कृपा दृष्टि थी। लोगों का सन्देह था कि सूरदास उनसे सबकी शिकायत करता है। एक दिन सुभागी ने अपने प्रण के अनुसार अपने पति को धोखा देकर रुपयों की वह थैली जो उसने (भैरों) सूरदास की झोपड़ी से चुरायी थी, लाकर सूरदास को दे दी। वह उसे लेने से इनकार करता रहा क्योंकि पता चलने पर सुभागी के पीटे जाने की आशंका थी। सुभागी ने स्नेह के बल पर वह थैली सूरदास को रखने के लिए वाध्य किया। चारों ओर यह खबर उड़ा दी गयी कि भैरों के घर चोरी होगयी। भैरों को जगधर पर सन्देह था। वह पुलिस में रिपोर्ट करने गया और इधर जगधर सूरदास के घर पहुँचा। उसे सुभागी और थैली के बारे में पहले से मालूम था। दोनों रूपये वापस पाने और सुभागी के काम की बातें कर रहे थे। सुभागी भी इसी समय आगयी। तीनों खूब प्रसन्न होकर हँसने लगे। लौटते समय भैरों ने हुँसी की आवाज सुनकर सूर की झोपड़ी में प्रवेश किया। सुभागी को असमय वहाँ देखकर वह आपे में न रहा। उसने सुभागी को सैकड़ों गालियाँ दी, सूरदास और जगधर को भी, बुरा-भला कह कर और सुभागी को घर लाकर पीटा। सूरदास को बड़ा दुख हुआ। दूसरे दिन सबेरे ही वह भैरों के घर जा पहुँचा। उसने उसे रुपयों की थैली वापस कर दी। सरल-हृदय से उसने भैरों

को यह भी बता दिया कि सुभागी ने वह थैली लाकर दी थी। भैरों ने इस बात को लेकर सुभागी को बुरी तरह मारा और मोहल्ले भर में यह प्रचार किया कि सूरदास का सुभागी से अवैध सम्बंध है। सूरदास को इतना कष्ट हुआ कि उसने मोहल्ला छोड़ देने का निश्चय किया।

परिच्छेद २४—यद्यपि क्लार्क ने सोफिया को हर प्रकार आकर्षित करने का प्रयत्न किया पर वह उसकी ओर ध्यान न देती थी। उसे ईसाई धर्म से चिढ़ होने लगी। प्रेम के आदर्श ने उसके मन के सबल बना दिया था। क्लार्क से वह खिची रहती जिसके लिए उसे घर वालों की फटकार सुननी पड़ती थी। क्लार्क ने एक दिन सोफिया को बताया कि राजा महेन्द्र सिंह की अपील पर गवर्नर ने जनमत के भय से मेरे फैसले को रद कर दिया है अर्थात् सूरदास की जमीन कारखाने के लिए लेने के लिए सरकार कटिबद्ध है। यही नहीं क्लार्क को दंड स्वरूप इस जिले से हटा कर किसी रियासत का पोलिटिकल एजेन्ट बनाने का निश्चय किया गया। उसने यह भी बताया कि एजेन्ट बन जाने से मेरी सुख-सुविधाओं में वृद्धि होगी। सोफिया उन पर व्यंग्य करती रही। इसी बीच माँ के आ जाने से, वह क्लार्क को छोड़ कर घर के भीतर गयी। प्रभु सेवक से बात करने पर उसे ज्ञात हुआ कि उसका प्रियतम विनय उदयपुर में जेल की सड़ रहा है। प्रभु सेवक भी क्लार्क से घृणा करता था। उसने विनय की प्रशंसा की। सोफिया विनय की सहायता के लिए तुरन्त उदयपुर जाना चाहती थी। उसे एक तरकीब सूझ गयी। उसने क्लार्क को फिर अपनी स्वार्थपूर्ति का साधन बनाना उचित समझा। उसको उसने समझाया कि वह गवर्नर से याचना करे कि उसे उदयपुर का पालीटिकल एजेन्ट बना दिया जाय। क्लार्क सोफिया को प्रसन्न करने के लिए राजी हो गया, और विवाह का प्रस्ताव रक्खा। सोफिया ने चतुरता पूर्वक प्रस्ताव को यह कह कर टाल दिया कि विवाह बन्धन है और वह कुछ निर्णय करने में असमर्थ है।

परिच्छेद २५—विनयसिंह के जेल में बन्द होने का समाचार कुँवर भरतसिंह को मिला। आगे का कार्यक्रम बनाने के लिए, उनके घर पर

डाक्टर गाँगुली, प्रभु सेवक, जॉन सेवक, राजा महेन्द्रसिंह, जान्हवी देवी स्वयं भरतसिंह, इन्दु तथा नायकराम पंडा आदि एकत्र हुए। जान्हवी देवी और प्रभु सेवक उग्र विचारों के थे। वे चाहते थे कि सरकार से टक्कर ली जाय। दूसरी ओर जॉन सेवक और गाँगुली नरम दल के थे। वे सरकार से शान्तिपूर्ण समझौते का मार्ग खुला रखना चाहते थे। जॉन सेवक ने तो जनवाद की कटु आलोचना कर डाली। रानी जान्हवी अपने पुत्र के लिए झुकने को तैयार न थी। उसी समय क्लार्क की बदली की सूचना आयी। यह इन लोगों की विजय थी। सब लोग प्रसन्न हो उठे। हर एक अपनी प्रशंसा करने लगा और विजय का श्रेय अपने को ही देने लगा। इन्दु अत्यधिक प्रसन्न थी और सोफिया को दावत देकर उसका अपमान करना चाहती थी। उसकी माता जान्हवी ने उसका समर्थन नहीं किया। वे सोफिया की हृदय से प्रशंसा करती रहीं। सबके चले जाने पर कुँवर भरतसिंह ने पुत्र स्नेह से विह्वल होकर नायकराम को रोक लिया। उन्होंने उसे रुपया देकर विनय को कारागार से छुड़ाने के लिए उदयपुर भेजा।

परिच्छेद २६—सोफिया क्लार्क के साथ उदयपुर जा पहुँची। विनय की जेलबन्दी से उसे अपार व्यथा थी। वह उससे जेल में मिल कर अपने प्रेम का परिचय देना चाहती थी। उदयपुर में क्लार्क को प्रसन्न करने के लिए उसका और सोफिया का अभूतपूर्व स्वागत किया गया। सोफिया ने जाते ही अस्पतालों, स्कूलों और जेलों का निरीक्षण प्रारम्भ किया। रियासत में सुधार होने लगे और जनता में सोफिया का आदर बढ़ने लगा। दीवान साहब चाहते थे कि यह लोग हट जाँय परन्तु सोफिया डटी रही। उसने जेल में जाकर विनय से मुलाकात की। प्रेमाग्नि भड़क उठी। विनय सोफिया को देखते ही बेहोश हो गये। सोफिया ने इन्हें एक कमरे में ले जाकर अपनी जाँघों पर लिटाया और उन पर अश्रु बिन्दु बरसाये। प्रेम का रोगी होश में आया। सोफिया और विनय जी भर कर मिले। घर लौट कर, प्रेम का नाटक रचकर उसने क्लार्क से एक पत्र लिखवाया कि विनय को उदयपुर से बाहर जाने की इजाजत दे दी जाय। विनय को बड़े आदर से जेल में रक्खा

गया ताकि मेम साहब प्रसन्न हों। सोफिया दुबारा विनय से एकान्त में मिली। विनय सोफिया के प्रेम में इतना निमग्न हो गये थे कि वे सब कुछ छोड़ कर सोफिया को अपनाना चाहते थे। वे एक सुखद जीवन की कल्पना करने लगे थे। दुबारा सोफिया के मिलने पर उसके सामने यह समस्या आयी कि वे कैसे उदयपुर से चले जाँय। सोफिया की योजना यह थी कि वे दिल्ली चले जाँय और फिर वह क्लार्क को धता बता कर उनसे आ मिलें और फिर दोनों सदा के लिए मिल जाँय। विनय ने जेल से इस प्रकार भागने और कर्तव्य से मुँह मोड़ने से इनकार कर दिया। इन्हें सोफिया से शुद्ध आत्मिक प्रेम करने की याचना की। सोफिया विवश हो गयी। उसने उनके साथ छाया की भाँति बने रहने का निश्चय किया। यद्यपि विनय को क्लार्क के साथ सोफिया का रहना खलता था परन्तु उन्होंने यही कहा कि मुझे तुम पर विश्वास है।

परिच्छेद २७—कुँवर भरतसिंह की इच्छानुसार पंडा नायकराम विनय को छुड़ाने के लिए उदयपुर रवाना हुए। उदयपुर पहुँच कर वे जेल के दारोगा से मिले। उनके लड़के का विवाह कराने का प्रलोभन देने से दारोगा ने उनका बड़ा आदर सत्कार किया। अपनी लच्छेदार बातों में फँसा कर उन्होंने जेल में प्रवेश पाने का प्रबन्ध कर लिया। दारोगा ने उन्हें विनय के बारे में सारे समाचार बता दिये।

परिच्छेद २८—जेल में पड़े हुए विनय तर्क वितर्क में पड़े थे। सोफिया की प्रार्थना ठुकराने से उन्हें पश्चात्ताप हो रहा था। उनकी नजरों में सोफिया देवी थी और उन्होंने उस देवी का अपमान किया था। दारोगा से उन्हें मालूम हुआ कि सोफिया उदयपुर से जाने वाली हैं। इससे इनका क्लेश और भी अधिक बढ़ गया। एक रात के अंधेरे में दारोगा ने नायकराम को जेल के भीतर प्रवेश करा दिया। नायकराम ने विनय को उसकी माता की बीमारी का झूठा समाचार देकर किंकर्तव्यविमूढ़ बना दिया। उसने विनय को जेल से निकालने की योजना पहले से बना ली थी। माता की बीमारी के नाम पर वे जेल से भागने के लिये तैयार हो गये। नायकराम ने उन्हें दीवार

पर चढ़ाकर जेल के बाहर निकाला। दोनों जेल से भागे जा रहे थे कि मार्ग ने मालूम हुआ कि क्लार्क और सोफी की मोटर के नीचे एक व्यक्ति दब कर मर गया और जनता ने बदला लेने के लिए उन्हें घेर लिया है। सोफी को इस दशा में छोड़ कर जाना असम्भव था। वे सोफी के निवास स्थान पर पहुँचे। वहाँ वह भीड़ से घिरी खड़ी थी और उत्तेजित जनता को समझाने का प्रयत्न कर रही थी। वीरपालसिंह डाकू उनका नेतृत्व कर रहा था। इसी बीच में भीड़ के किसी व्यक्ति ने सोफिया पर पत्थर चला दिया। उसके मस्तक पर चोट आ गयी। विनय के पास पिस्तौल था, जिसे नायकराम ने उन्हें आत्मरक्षार्थ दिया था। वे सोफिया पर होने वाले आक्रमण को सहन न कर सके और पिस्तौल चला दिया। वीरपाल बच गया। मारपीट शुरू हो गयी। वीरपाल के साथी के प्रहार से विनय बुरी तरह घायल हो गये। नायकराम को चोटें आयीं वीरपाल बेहोश सोफी को उठा ले जाने में सफल हुआ, इतना झगड़ा हुआ पर क्लार्क बाहर न निकला। वह नशे में चूर बेहोश पड़ा था।

परिच्छेद २९—कार की दुर्घटना का मूल कारण यह था कि सोफी ने क्लार्क को हद से ज्यादा शराब पिला दी थी। वह चाहती थी कि यह बेहोश होकर रात भर पड़ा रहे और स्वयं जेल जाकर विनय को भागने के लिये एक बार फिर समझाये। अब स्थिति बदल गयी। उदयपुर में दमन चक्र चला। सोफिया का पता न था। विनय ने रियासत की सहायता करनी प्रारम्भ की क्योंकि वे सोफिया को किसी प्रकार भी प्राप्त करना चाहते थे। उनकी बदनामी होने लगी। जनता उन पर अविश्वास करती पर वे रियासत के विश्वास पात्र बन गये। एक दिन वे अकेले नायक राम को लेकर सोफी की खोज में रवाना हुए। वे कई दिनों जंगलों और पहाड़ों में मारे-मारे घूमते रहे। संयोग से उनकी मुलाकात उनके पुराने सहयोगी कार्यकर्त्ता इद्रदत्त से हो गयी। वह विनय से असंतुष्ट था। उससे उन्हें पता चला कि सोफिया वीरपाल के दल के साथ है और इन्द्रदत्त भी उस दल का सदस्य था। इन्द्रदत्त ने यह भी बताया कि सोफिया अब विनय से घृणा करने लगी है क्योंकि इस

दमन नीति का समर्थन विनय से मिल रहा था। बहुत प्रार्थना करने पर इन्द्रदत्त उन दोनों को सोफिया के पास अत्यन्त दुर्गम स्थान पर ले गया।

परिच्छेद ३०—इद्रदत्त की सहायता से नायक राम सहित विनय सोफी के पास पहुँच गये। वहाँ वीरपाल ने उनका स्वागत किया। सोफिया ने आकर हिन्दू रीति से उन्हें तिलक लगाया। दोनों में बातें होने लगीं। विनय ने अपना प्रेम प्रकट किया परन्तु सोफिया ने उन्हें अपना मार्ग बदलने और राज्य की जनता पर अत्याचार करने के लिए बुरी तरह फटकारा। वास्तव में सोफिया विनय पर उसके त्याग, सेवा, संयम और देश प्रेम आदि आदर्शों के कारण रीझी थी पर अब वह विनय की ओर से निराश हो गयी थी। उसे दुख था कि उसका प्रेमी इतना पतित और कायर निकला। सोफिया के कटु वचनों से विनय को बड़ा कष्ट पहुँचा। उन्हें अपनी भूल ज्ञात हो गयी। अब वे सोफिया को अपना मुँह दिखाना उचित न समझते थे। उन्होंने वहाँ से तुरन्त वापस लौटने का निश्चय किया। वीरपाल ने उनसे रात भर ठहरने की प्रार्थना की पर उन्हें चैन कहाँ। वीरपाल उन्हें लेकर चल पड़ा। रास्ते में उसने बताया कि घायल दशा में सोफिया विनय का नाम लिया करती थी। इससे विनय को और भी ज्यादा पीड़ा हुई। वे किसी प्रकार भी सोफिया से दूर हट जाना चाहते थे। मार्ग में नायक राम उनसे विनोद करता रहा पर वे आधे पागल हो रहे थे। वीरपाल उन्हें छोड़ कर वापस चला गया।

परिच्छेद ३१—सूरदास अपने मोहल्ले में सबका प्रेमभाव खो चुका था। उसने दयागिरि के साथ तीर्थ यात्रा करने का निश्चय किया पर एक दिन सुभागी ने भैरों के द्वारा पीटे जाने पर उसके घर फिर शरण ली। उसकी रक्षा करने के लिए सूरदास ने यात्रा स्थगित कर दी। सारे मोहल्ले में सूरदास की बदनामी होने लगी। वास्तव में सूर सुभागी को अपनी बहन मानता था। सुभागी ने सूरदास की गृहस्थी सँभाल ली। भैरों चुप न बैठा वह, राजा महेन्द्र सिंह से मिला और उनकी सलाह पर उसने सूरदास पर मुकदमा चलाने का निश्चय किया। पहले मुहल्ले के बजरंगी और ठाकुरदीन उसके गवाह बनने को तैयार हो गये पर जगधर ने सबको भड़काया। निराश भैरों चुप

हो गया। दूसरी ओर चमड़े के कारखाने के कुछ मजदूर जो मुफ्त में भैरों की ताड़ी पीते थे उसके गवाह बन गये। मुकदमा दायर हो गया। सुभागी ने सूरदास को समझाया कि मेरा साथ छोड़ दो, विपत्ति टल जायगी परन्तु सूरदास न्याय का पक्ष छोड़ने को तैयार न था। मुकदमा चलने लगा। राजा साहब मजिस्ट्रेट थे। उन्होंने सूर को अपराधी घोषित कर दिया। सूरदास ने भरी अदालत में उपस्थित जनता को पंच मान कर न्याय करने के लिए कहा। सूर के तर्क सुनकर सबने यही कहा कि वह निर्दोष है। फिर भी भैरों प्रसन्न था। उसी रात को भैरों के आदमियों ने सूर की झोपड़ी जला दी। सूरदास के भतीजे मिठुआ ने यह देखा और उसी क्षण उसने भैरों की दूकान में आग लगा दी। भैरों का बहुत नुकसान हुआ और मुहल्ले के लोग भी उसके विरुद्ध हो गये। इस प्रकार सूरदास का बदला पूरा हो गया।

परिच्छेद ३२—जनता की आँखों में सूरदास निर्दोष था। राजा साहब के फैसले के अनुसार सूरदास और सुभागी को जेल में रख दिया गया था। जुर्माना अलग से हुआ। विनय का साथी इन्द्रदत्त जो उदयपुर से वापस आ गया था, इस घटना को देख कर चुप न बैठा। उसने सूरदास को जेल से छुड़ाने के लिए चंदा एकत्र करना प्रारम्भ किया। उसने प्रभुसेवक से ५०) लिए। वह इन्दु से मिला और समझा-बुझाकर उससे भी चंदा ले लिया। घर आकर इन्दु और उसके पति राजा महेन्द्र सिंह में इस विषय पर बहस हो गयी। इन्दु का चन्दा देना राजा साहब के निर्णय का खुला विरोध था। इससे इन्दु को बड़ा दुख हुआ। इन्द्रदत्त ने अब तक ५००) जमा कर लिए थे। उसने सूरदास पर किया गया २००) जुर्माना अदा कर दिया और शहर भर में उसका जुलूस निकालने का निश्चय किया। राजा साहब ने सूर को जेल से मुक्त करने की आज्ञा दे दी पर उसे चुपचाप मोटर में बिठाकर घर भेज दिया ताकि जुलूस न निकले। इन्द्रदत्त ने शेष ३००) सूरदास को दे दिये और कहा कि वह अपनी झोपड़ी बना ले। सूरदास ने इस रुपये से भैरों की दूकान बनवाने का निश्चय किया। वह भैरों से मिला और सुभागी के संबंध में सारी स्थिति स्पष्ट कर दी। भैरों के दिल का मैल साफ हो गया

और वह सूर की सज्जनता का कायल हो गया। सूर के प्रेम, न्याय और अहिंसा ने भैरों का मन जीत लिया, उसने सुभागी को घर रखने और ताड़ी की दूकान के स्थान पर लकड़ी का काम करने का निश्चय किया।

परिच्छेद ३३—पांडेपुर में सेगरेट की फैक्ट्री तैयार हो गयी। वहाँ के लोगों के जीवन में सबसे बड़ा परिवर्तन यह आया कि धन की भूख बढ़ गयी। अपने मकान किराये पर लोगों ने उठा दिये। सूरदास की जमीन छिन गयी। जॉन सेवक पहले उसे पाँच हजार दे रहे थे पर सरकार ने उसे केवल एक हजार देने का निश्चय किया। सूरदास ने मुआवजा लेने से इनकार कर दिया। प्रभुसेवक के समझाने से भी वह न माना। एक दिन इंद्रदत्त से सूर को मालूम हुआ कि सेवा-समिति बड़े उपयोगी कार्य कर रही है। वह अपनी सारी जमा पूँजी इस समिति को देने के लिए तैयार हो गया। प्रभु सेवक और इंद्रदत्त उसकी महानता से बड़े प्रभावित हुए। सूरदास ने प्रभुसेवक को समझाया कि वे मजदूरों के लिए मकान बनवादें ताकि बस्ती में भ्रष्टाचार न फैलने पाये।

परिच्छेद ३४—प्रभुसेवक ने पिता से मजदूरों के लिए मकान बनवाने का आग्रह किया। जॉनसेवक समझे कि बेटा व्यवसाय में दिलचस्पी रखने लगा है। उसकी माँ ने इस बात का समर्थन करते हुए कहा कि ईसाई धर्म-प्रचार के लिए वहाँ एक चर्च बनवाया जाए। रात में प्रभुसेवक ने एक कविता लिखी और उसे सुनाने के लिए सवेरे ही भरतसिंह के पास जाने लगे। तभी जॉन सेवक ने कहा कि मजदूरों के लिए मकान बनवाने का नक्शा उन्होंने तैयार कर लिया है। वे पांडेपुर को खाली कराकर वहीं पर मकान बनवायेंगे। प्रभुसेवक आश्चर्य और दुख से अभिभूत हो उठे। एक शुभ कार्य के लिए गरीबों पर इतना बड़ा अन्याय। उन्होंने पिता का विरोध किया। जॉनसेवक ने प्रभु को ऐसा आदर्शवादी बताया जो बातें ऊँची करता हो पर विलासमय जीवन बतात हो। प्रभुसेवक ने घर का त्याग करके स्वतंत्र और सादगी का जीवन बिताने का निश्चय किया। वे कुँवर भरतसिंह के पास गये और सारा हाल कहा। कुँवर साहब से उन्होंने अनुरोध किया कि वे जॉनसेवक का विरोध करें और पाँडेपुर खाली कराने का प्रस्ताव कौंसिल में न पास होने दें।

कुँवर साहब कंपनी के शेयर होल्डर थे इसलिए उन्होंने जॉनसेवक की योजना का विरोध करने से इनकार कर दिया। हाँ, उन्हें प्रभुसेवक के देश सेवा व्रत लेने का समर्थन किया, चूँकि डॉ० गाँगुली बूढ़े हो चले थे, इसलिए उन्होंने प्रभु को सेवा-समिति का अध्यक्ष बनने का निश्चय किया। डाक्टर गाँगुली भी आ पहुँचे और उन्होंने भी प्रभुसेवक को यह भार संभालने के लिए कहा। प्रभु के सामने एक नया काम आ गया था।

परिच्छेद ३५—जसवंत नगर लौट कर विनय को मालूम हुआ कि वहाँ की प्रजा उनसे घृणा करने लगी है। एक बुढ़िया जिसके पुत्र को रियासत ने जेल में डाल दिया था, उन्हें कोस रही थी और एक पंडित जी उनको नष्ट करने के लिए मरण-जाप कर रहे थे। उन्हें बड़ी आत्मग्लानि हो रही थी। वह चलते गये। मार्ग में नायकराम सोफिया की बुराई करता, तो विनय उसे डाँटते और सोफी के व्यक्तित्व की प्रशंसा करते। वे अपने पापों का प्रायश्चित करना चाहते थे। अतः वे दीवान सरदार नीलकंठ से मिले। उन्होंने सोफिया से मिलने की बात छिपायी पर इंद्रदत के पत्र से उन्हें पहले ज्ञात हो गया था कि विनय उससे मिल चुके हैं, सरदार साहब ने विनय पर विश्वास नहीं किया और कैदियों को मुक्त करने की उनकी प्रार्थना को ठुकरा दिया। तब वे क्लार्क के पास गये। क्लार्क के पास भी सोफिया का पत्र आया हुआ था। वह सोफिया पर इतना क्रुद्ध था कि उसे गोली मार देना उचित समझता था। वह उसे बोल्शेविक पार्टी का जासूस मानने लगा था। उसने भी विनय की बात नहीं मानी तब वे राजा साहब से मिले। उनसे भी वह कोई काम न करा सका। इसी समय उसे अपनी माता का पत्र मिला जिससे उसे धिक्कार पूर्ण शब्दों में फटकारा गया था। उसे दुख हुआ पर उसे अपनी माता पर गर्व हो आया। उसने काशी लौट कर माँ से मिलने का निश्चय किया। वह नायकराम के साथ लौट पड़ा। ट्रेन पर वह एक बुढ़िया से मिला जिसके पुत्र को विद्रोहियों ने मार डाला था। इन हत्याओं के लिए विनय अपने को ही जिम्मेदार मानता था। ट्रेन पर ही संयोग से सोफिया से मुलाकात हो गयी। वे विद्रोहियों का त्याग करके इसलिए चली आयी थी कि वे निरपराध लोगों

को बदले की भावना से मार रहे थे। दोनों प्रेमियों के दिल बदल चुके थे; वे एक दूसरे के निकट आ गये। सोफिया ने उनकी माता का पत्र पढ़ा उसने कहा कि मैं भी तुम्हारे साथ काशी चलूंगी और पहले मैं रानी साहब से मिलकर उनके हृदय का मैल दूर करूँगी। इसलिए गुप्तरूप से काशी पहुँचने की योजना दोनों ने बनायी। वे एक स्टेशन पर नायकराम को ट्रेन में छोड़कर उतर गये।

परिच्छेद ३६—ताहिर अली के काम से प्रसन्न होकर जॉनसेवक ने उनके लिए कमीशन बाँध दिया। आमदनी बढ़ने से ताहिर का सम्मान बढ़ गया और साथ में खर्चे भी। उनकी आमदनी से उनकी पत्नी और बच्चे को लाभ न पहुँचा कर उनकी विमाताएँ खूब गुलछर्रे उड़ाने लगीं। उनका सौतेला भाई पढ़-लिख कर थानेदारी पाने की कोशिश में था। उसके लिए नौकरी दिलाने के लिए ताहिर को मालिक की रोकड़ से कुछ रुपया लेना पड़ा क्योंकि विमाताएँ उन पर व्यंग्य कसा करती थीं। थोड़े दिनों में गबन करने की आदत उनमें पैदा हो गई। एक बार एक चमार की रकम न अदा करने पर जॉन-सेवक ने उनका हिसाब जाँचा। रोकड़ कम होने पर उन्होंने ताहिर को पुलिस में दे दिया। अंत में उन्हें सजा हो गई। उनका भाई माहिर थानेदार बन गया। जेल जाते समय ताहिर ने उसे देखा पर वह उनसे नहीं बोला। उनकी विमाताएँ बड़ी दुष्टा थीं। उन्होंने उनकी पत्नी कुलसुम को हर तरह कष्ट पहुँचाया। उसे और उनके बच्चों को वे दो रोटी भी न देती थीं। गोदाम के मजदूर ताहिर का आदर करते थे। वहाँ के मिस्त्री ने मजदूरों से चंदे से धन एकत्र किया और जॉनसेवक को गबन की रकम चुका कर ताहिर को छुड़ाने की चेष्टा की पर साहब न माने। मिस्त्री उस धन से ताहिर के परिवार की सहायता करना चाहता था। पांडेपुर के लोग भी उनकी ईमानदारी की प्रशंसा करते थे। कुलसुम को विपत्ति में पड़ा देख कर वे उसके साहस की सराहना करने लगे। कुलसुम को यह बातें बजरंगी से मालूम हुईं। वह पति से नाराज थी पर आज उसकी छाती गर्व से फूल उठी। माहिर कुलसुम के नाम से मिस्त्री के पास जमा धन उड़ाना चाहता था पर मिस्त्री ने वह धन

कुलसुम को दिया पर उस ईमानदार स्त्री ने कोई सहायता नहीं स्वीकार की ।

परिच्छेद ३७—प्रभु सेवक के नेतृत्व में सेवक दल ने बड़े उत्साह से कार्य प्रारम्भ किया । अभी तक इस दल का काम जनता की सेवा करना था परन्तु प्रभु सेवक ने अधिकारियों से टक्कर लेनी प्रारम्भ की । वे जनता की कठिनाइयों का प्रश्न लेकर सरकार से भिड़ने लगे । कुंवर भरत सिंह को इससे भय होता क्योंकि वे सरकार का कोपभाजन नहीं बनना चाहते थे । इससे उनकी जायदाद के छिन जाने की आशंका थी । प्रभुसेवक और इंद्रदत्त ने उनकी उपेक्षा करना प्रारम्भ कर दिया । प्रभु सेवक ने काव्य रचना का क्रम जारी रक्खा । उनकी कविताओं की धाक जमने लगी । पूना में राष्ट्रीय-सभा के उत्सव में वे बुलाये गये । उन्होंने वहाँ राजनीति पर बड़ा क्रान्तिकारी भाषण दिया । योरोपियन लोग इस भाषण से असन्तुष्ट हो गये । वे सभा छोड़कर चले गये और एक ने तो उन पर गोली चला दी । उनका व्याख्यान पत्रों में छपा । फल यह हुआ कि सेवकदल से वे अलग कर दिये । दूसरी ओर विलसन जैसे गर्वनर ने इस व्याख्यान की प्रशंसा स्वयं प्रभु सेवक से एक व्यक्तिगत पत्र लिख कर की । यह है अंग्रेजों की गुणग्राहकता और भारतीयों की कायरता ।

परिच्छेद ३८—सोफिया और विनय काशी न जाकर, भीलों की एक बस्ती में रहने लगे । यहाँ के निवासी उन्हें पति-पत्नी समझते और उनका बड़ा आदर करते । यह दोनों एक-दूसरे से अलग सोते और किसी प्रकार की वासना के चंगुल से मुक्त रहते । सोफिया अपेक्षाकृत अधिक संयमी थी । विनय अब सोफिया के आकर्षण से इतना विवश हो गये थे कि वे उसे हर प्रकार पाना चाहते थे । एक दिन उन्होंने सोफिया से अपनी इच्छा प्रकट की परन्तु उसने उनकी माता का भय दिखाकर विवाह से पहले शारीरिक संबंध न रखने का आग्रह किया । विनय को चोट लगी । एक भीलनी यह समझ रही थी कि पति पत्नी में अनबन है और इसी से दोनों एक दूसरे से खिंचे रहते हैं । उसने विनय को एक जड़ी दी जिसके प्रयोग से वे सोफिया को वश में कर सकते थे । विनय इस प्रकार के तांत्रिक उपायों पर न तो विश्वास करते थे और न सोफिया पर इसका प्रयोग करना उचित समझते थे पर उनका हृदय उनके वश में न था ।

उन्होंने कई दिनों तक सोफिया पर उसका प्रयोग रात में किया। उस जड़ी का प्रभाव सोफ़िया पर पड़ा और वह अब विनय से शारीरिक मिलन के लिये आतुर हो उठी। फिर भी विनय की माता का भय उसे स्वप्न में सताया करता था क्योंकि उन्होंने विनय को एक शुभ कार्य के लिये संकल्प कर दिया था। अतः उसने काशी जाकर रानी साहब (विनय की माता) को मनाने और विनय को पति रूप में पाने का निश्चय किया। यह तय हुआ कि दोनों साथ जायें और सोफिया पहले रानी साहब के पास जाकर उनके मन की बात जान ले। विनय नायकराम के घर ठहरें। दोनों चले। भीलों ने उन्हें अनेक उपहार दिये। मार्ग में विनय ने सोफिया को बता दिया कि उन्होंने रात में उस पर जड़ी का प्रयोग वशीकरण के लिये किया था।

परिच्छेद ३९—सोफिया ने काशी पहुंचते ही रानी साहब से मुलाकात की। वे विनय का कोई समाचार एक वर्ष से न पाकर पुत्र शोक में पागल बन गयी थीं। सोफिया से वे बड़े प्रेम से मिलीं और अपनी निष्ठुरता की बातें करने लगी। विनय के बारे में वे अनेक प्रश्न करने लगीं। उन्होंनें यहां तक कह डाला कि अगर विनय होता तो तेरी शादी उससे कर डालती। उन्होंने सोफिया को पुत्रवत् घर में रखने की इच्छा प्रकट की। तभी विनय माँ के पास पहुंच गये। शोर मच गया और सब प्रसन्न हो गये। कुंवर भरत सिंह ने सोफिया और विनय को गले लगा लिया। वे भी सोफिया के साथ विनय का विवाह करने को तैयार हो गये। सोफिया और विनय की प्रसन्नता की सीमा न थी।

परिच्छेद ४०—जॉन सेवक बड़े पक्के व्यवसायी थी। उन्हें धन से अगाध प्रेम था। प्रभु सेवक के चले जाने से वे जरा भी न घबराये ओर दुगने उत्साह से कारखाने का काम करने लगा। गर्वनर ने उस तम्बाकू की मिल का उद्घाटन करना स्वीकार कर लिया। मिल चलने से पाँडेपुर के नवयुवकों का नैतिक पतन होने लगा। शराब, जुआ और व्यभिचार की प्रवृत्ति बढ़ी। सूर का भतीजा मिट्ठू, बजरंगी का पुत्र घीसू और जगधर का पुत्र विद्याधर इन कुव्यसनों के शिकार हो गये। उनके माता-पिता इनके विषय में चिंतित थे

एक दिन इन लौंडों ने रात में सुभागी को छेड़ने की योजना बनायी यद्यपि वह आयु में इनकी माताओं के बराबर थी। तीनों सूर की झोपड़ी की ओर चले। चालाक मिठुआ बाहर रहा और विद्याधर तथा घीसू भीतर घुसे। सुभागी की बाँह पकड़ते ही, वह चिल्ला उठी। एक को सुभागी और दूसरे को सूरदास ने पकड़ लिया। चोर-चोर की आवाज सुनकर मोहल्ले के लोग आ गये। प्रकाश में देखा गया कि घीसू और विद्याधर यह कुकर्म करने आये हैं। जगधर और बजरंगी की बदनामी हो गयी। घटना स्थल पर पुलिस के सिपाही पहुंच गये थे। नायकराम कुछ ले देकर इस मामले को खत्म करना चाहते थे पर सूरदास ने रिपोर्ट करने की जिद की क्योंकि एक नारी के साथ यह दुर्व्यवहार उसे असह्य था। लाख समझाने पर भी सूरदास न माना। सारा मोहल्ला उसका शत्रु बन गया। दरोगा जाँच के लिये आया। आशा थी कि कोई गवाही न देगा और मामला यहीं खत्म हो जायगा पर सूरदास के तर्कों से पराजित होकर सबने सच्ची घटना बता दी। बजरंगी, जगधर और नायक राम सूरदास के घोर विरोधी बन गये।

परिच्छेद ४१—जॉन सेवक धुन के पक्के थे। वे अपनी योजना के अनुसार चल रहे थे। मिल चलने लगी थी और वे मजदूरों के लिये मकान बनवाने के लिये पांडेपुर खाली कराने का कुचक्र रच रहे थे। उधर सोफिया और विनय ने सेवक दल की कमान सँभाल ली। उनके पिता कुंवर भरत सिंह सार्वजनिक कार्यों में पड़कर अपनी जायदाद से हाथ धोना नहीं चाहते थे। उनका तर्क था कि वे केवल इस जायदाद के संरक्षक हैं और विनय की संतति का उस पर हक है। वे चाहते थे कि विनय और सोफिया का विवाह हो जाय तो यह जायदाद बच जाय। वे सोफी के पिता जॉन सेवक के पास प्रस्ताव लेकर गये। सोफी की माँ ने इस विवाह का विरोध किया। जॉन सेवक ने उन्हें यह सलाह दी कि वे अपनी जायदाद कोर्ट आफ वार्ड्स में दे दें। कुंवर साहब ने विनय को बताये बिना ऐसा ही कर दिया। अब सेवक दल को जो आर्थिक सहायता कुंवर भरत सिंह से मिलती थी, बन्द हो गयी। धन एकत्र करने के लिये सोफिया ने एक नाटक खेलने का निश्चय किया। विनय को

सोफिया का मंच पर आना पसंद न था। सौभाग्य से इसी समय उन्हें लंदन से प्रभुदत्त द्वारा भेजा गया दस हजार रुपये का बीमा मिला। प्रभु ने विनय को एक पत्र लिखकर बताया कि वे अब विश्वबंधुता के हामी है। उन्होंने अंग्रेजों की गुणग्राहकता की प्रशंसा की थी और लिखा था कि अंग्रेज प्रशासकों ने उनके कविता संग्रह को छापने से पहले ४० हजार रुपये पेशगी दे दिये। सेवक दल की धन की समस्या हल हो गयी। विनय को इन्द्रदत्त से मालूम हुआ कि सोफिया उसके पैरों की बेड़ी नहीं बनना चाहती। इन्दु ने भी विनय को यही बात बतायी। उसने यह भी बताया कि सरकार ने मजदूरों के मकान बनाने के लिये जॉन सेवक को आज्ञा दे दी है और पांडेपुर खाली करने का प्रस्ताव बोर्ड में पास हो गया क्योंकि बोर्ड के सदस्य मिल के शेयर होल्डर बन चुके थे।

परिच्छेद ४२—अदालत ने विद्याधर और घीसू को कठिन दंड दिया। परिणाम यह हुआ कि पांडेपुर के सभी लोग सूरदास के शत्रु हो गये। मिठुआ ने भी सूरदास का साथ छोड़ दिया। सोफिया प्रायः सूरदास से आकर मिलती और इन्दु भी उसे सहायता करती रहती। एक दिन मजदूर एक स्त्री को छेड़ रहे थे। सूरदास ने उनका विरोध किया। उन्होंने उसे गिरा दिया, जिससे उसके गहरी चोट आयी। एक बार फिर मोहल्ले की सहानुभूति सूर के प्रति जाग उठी। वह रोग शय्या पर पड़ा था पर मिठुआ उसे देखने तक न आया। इसी बीच पांडेपुर खाली करने का हुक्म हो गया। राजा महेन्द्र सिंह स्वयं पांडेपुर खाली कराने आये। उन्होंने सबसे मुआवजा ले लेने की सलाह दी। कोई भी उनका विरोध न कर सका। नायकराम तो राजा साहब के साथ हो गये और मुआवजा बँटवाने लगे। सूरदास को अपनी झोपड़ी के लिये १) मुआवजा मिला जिसे उसने लेना अस्वीकार कर दिया। अन्य लोग मुआवजा लेने लगे। सूर ने जान रहते झोपड़ी से न निकलने की घोषणा की। पांडेपुर खाली कराने के लिये पुलिस आ गयी। माहिर अली दरोगा बनकर आये। बजरंगी से पुलिस की मारपीट हो गयी। दंगा होने की संभावना पैदा हो गयी। घटना स्थल पर राजा महेन्द्र सिंह आये। विनय और इन्द्रदत्त भी आ पहुँचे। विनय

ने राजा साहब से फिलहाल यह काम स्थगित करने को कहा। राजा साहब ने बात न मानी। उन्होंने जिलाधीश की सहायता ली। एक दिन बलपूर्वक पांडेपुर खाली कराने का आदेश हुआ। सूरदास ने निर्भीकता से अपनी झोपड़ी खाली करने से इनकार कर दिया। पुलिस ने झोपड़ी गिराने का प्रयत्न किया। काफी भीड़ एकत्र थी और धीरे-धीरे वह नियंत्रण से बाहर हो गयी। इन्द्रदत्त वहाँ आ गया और सबको शांत कराने लगा पर स्थिति बिगड़ चुकी थी। पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट ने गोली चलाने का आदेश दिया। कई लोग मारे गये। इन्द्रदत्त भी गोली खाकर मरा। इस हत्याकाँड से प्रभावित हो पुलिस ने और गोली चलाने से इनकार कर दिया। सब लोग हतप्रभ थे। राजा साहब भाग गये। मृत लोगों की अर्थियाँ निकाली गयीं। विशाल जन समूह उमड़ पड़ा। चारों ओर एक विचित्र अनुभूति लोगों को हो रही थी। इस घटना ने राष्ट्रीय भावनाओं को उभार दिया।

परिच्छेद ४३—सोफिया थी तो ईसाई पर उसमें हिन्दुत्व की भावना ही प्रबल थी। इसलिए रानी जान्हवी विनय के साथ उसका विवाह कराने को तैयार हो गयीं। इधर विवाह की तैयारी हो रही थीं और उधर पांडेपुर का आन्दोलन तेजी पकड़ रहा था। विनय का सेवक-दल वहाँ हर समय मौजूद रहता। विनय इस आन्दोलन का सूत्रधार बन गया और राजा महेन्द्रसिंह दमन के सूत्रधार बने। उन्होंने गोरखों का रेजिमेंट वहाँ बुला लिया। सोफिया की मनोदशा विचित्र थी। उसका विनय के प्रति प्रेम था पर वह उनकी अस्थिरता के कारण उन पर पूरा विश्वास न करती थी। वह बीमार पड़ गयी। इस बीमारी में उसकी आसक्ति विनय पर पड़ गयी। रानी साहब और कुँवर भरतसिंह विनय को सेवक-दल से दूर रखना चाहने लगे। पुत्र-प्रेम कर्तव्य-पथ में बाधक बनने लगा। कुँवर साहब तो जायदाद की रक्षा के लिए बार बार विनय को समझाते। विनय सिद्धान्तप्रेमी थे पर सोफिया का प्रेम उनमें निर्बलता पैदा कर रहा था। वे पांडेपुर एक सप्ताह न गये। इन्दु ने आकर सोफिया से कहा कि विनय उसके कारण पांडेपुर नहीं जाते। सोफिया को इससे चोट लगी। पांडेपुर के आन्दोलन को दबाने के

लिए क्लार्क वापस बुला लिया गया था। सोफिया को आशंका हुई कि वह वहाँ अवश्य खून-खराबा कर देगा। इस लिए वह पांडेपुर जा पहुँची। विनय उसे मना न कर सके, अब विनय को भी वहाँ जाना पड़ा, पांडेपुर में हजारों आदमी जमा थे, सभी मकान गिरा दिये गये थे; केवल सूर अपनी झोपड़ी में डटा था, उस दिन तोपों द्वारा सूर की झोपड़ी को उड़ा देने की योजना थी, सूर ने नायकराम के कन्धे पर बैठ कर नेतृत्व किया, क्लार्क ने उस पर गोली चला दी, यह देख कर सोफिया सूर की ओर दौड़ पड़ी, उत्तेजना इतनी बढ़ी कि विनय को भीषण हत्याकांड होने का भय मालूम होने लगा, वे सोफिया की रक्षा के लिए आगे बढ़े और जनता को समझाने लगे, उपस्थित जन उन पर व्यग्य कसने लगे, उन्हें जोश आ गया और उन्होंने स्वयं अपने ऊपर पिस्तौल चला दी, तत्क्षण उनकी मृत्यु हो गयी, सारा जन-समूह स्तब्ध था, घायल सूरदास को कुछ लोग अस्पताल ले गये थे, यहाँ विनय की मृत्यु ने जनता की उत्तेजना को शान्त कर दिया था, रानी जान्हवी घटना स्थल पर आ गयीं, अपने पुत्र की वीरता से वह गर्वोन्नत हो रही थीं, कुँवर भरतसिंह शोकवश वहाँ न आये। विनय का दाहकर्म जान्हवी ने किया।

परिच्छेद ४४—सूरदास अस्पताल में मृत्यु शय्या पर पड़ा था, उसे देखने के लिए रानी जान्हवी, राजा महेन्द्रसिंह, जॉन सेवक और अन्य सभी जन जाते, सोफिया तो उसकी सेवा में हर समय तत्पर रहती, सूरदास अपने दार्शनिक विचारों से सबके मन को शान्त रखता, वे इस जीवन की तुलना खेल से करता जिसमें मनुष्य को तटस्थ रह कर अपना पार्ट अदा करना चाहिये, सभी उसकी बातों से प्रभावित होते पर एक मिठुआ ही सूर की उपेक्षा करता था, उसने अस्पताल आकर सूरदास को बुरा-भला कहा और जॉन सेवक सूरदास से मिलने आये, तो उसने साहब से मिठुआ से होशियार रहने की सलाह दी, साथ ही उसने यह भी कहा कि मिठुआ पर वे दया बनाये रक्खें। यद्यपि जॉन सेवक ने इस सारे हत्याकांड की जड़ थे पर सूर को उनसे घृणा न थी, उसने साहब को अपना कर्तव्य पालन करने के लिए कहा, यही नहीं उसने ताहिर अली को दुबारा नौकर रखने की प्रार्थना की

जिसे जॉन सेवक ने स्वीकार नहीं किया पर उनके बच्चों की देख रेख करने का वायदा किया।

परिच्छेद ४५—विनय की मृत्यु ने पांडेपुर को तपोवन बना दिया। वहाँ दर्शनार्थियों की भीड़ बनी रहती। पांडेपुर खाली हो गया था पर वहाँ के पूर्व-निवासी अपने स्मृति चिन्हों की खोज में प्रायः आ जाते। जगधर, बजरंगी नायकराम और ठाकुर दीन सभी के सामने घर की समस्या थी। उन्हें यह दुख था कि सूरदास की बात न मानने और जॉन सेवक के कहने में आकर उनके कारखाना बन जाने का परिणाम बुरा हुआ। अब वे सूरदास की दिल खोलकर प्रशंसा करते थे।

परिच्छेद ४६—सूरदास अस्पताल में मृत्यु शैय्या पर पड़ा था। उसकी सेवा में सभी जीजान से जुटे थे। फिर भी वह बच न सका। असहाय होते हुये भी अपने चारित्रिक गुणों के कारण वह न केवल पांडेपुर वरन् बनारस के उच्चवर्गीय जनों के मन पर भी अमिट छाप छोड़ गया। क्लार्क को बड़ा पश्चात्ताप था कि उसके हाथों सूरदास की मृत्यु हुई।

परिच्छेद ४७—पांडेपुर में मजदूरों के मकान बनने लगे। केवल एक कोने पर ताहिर अली का झोपड़ा खड़ा था। सूरदास के अनुरोध पर जॉन सेवक ने उसे छोड़ दिया था। ताहिर अली जेल से छूट कर आये। पतिपरायणा कुलसुम और बच्चों को अपार हर्ष हुआ। ताहिर को माहिर पर बड़ा क्रोध था; मन में प्रतिहिंसा की आग जल रही थी; माहिर इतना कृतघ्न निक कि उनके बच्चों की स्त्री पर परवाह उसने न की थी। उन्होंने भोजन नहीं किया और सीधे माहिर के निवास स्थान पर जा पहुँचे, जहाँ वह पुलिस दरोगा बना हुआ बैठा था। मित्र मंडली के बीच उसके मुँह पर स्याही पोतकर ताहिर ने बदला लिया। सैकड़ों बातें भी उन्होंने सुनायीं। घर लौटने पर कुलसुम ने उन्हें बुरा भला कहा क्योंकि उन्होंने कर्त्तव्य वश माहिर का लालन पालन किया था। इससे ताहिर को ग्लानि हुई। वे जिल्दसाजी का धंधा करने लगे जिससे वे पहले की अपेक्षा अधिक सुखी हुए।

परिच्छेद ४८—पांडेपुर की घटना से राजा साहब इतने बदनाम हो गये

कि लाख प्रयत्न करने पर भी म्यूनिसिपल कमेटी में उनके विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पास हो गया। वे प्रधान के पद से अलग हो गये। मर कर भी सूरदास उनसे बदला ले रहा था। उधर जनता ने सूरदास का स्मारक बनाने का निश्चय किया। इसके लिए धन एकत्र होने लगा, इंदु ने मुक्तहस्त होकर उस कोष में धन दान दिया। राजा महेन्द्र सिंह सूरदास के नाम से चिढ़ने लगे थे, अतः वे इंदु से अप्रसन्न हो गये। इंदु का मन भी विद्रोह से भर उठा, वह राजा साहब से लड़कर माता के पास लौट आयी, रानी ने लाख समझाया पर वह पति से अलग रहने लगी, इंदु और सोफिया के प्रयत्नों से एक लाख रुपया इकट्ठा हुआ और पांडेपुर में सूर की प्रतिमा प्रतिष्ठित कर दी गयी। राजा महेन्द्र को यह सब असह्य था, उन्होंने रात में उस मूर्ति को गिरा दिया परन्तु वे स्वयं उसी के नीचे दबकर मर गये। लोगों ने उस भग्न मूर्ति को दुबारा स्थापित कर दिया।

परिच्छेद ४९—जॉनसेवक ने मजदूरों के लिए मकान तैयार कराना शुरू किया, इस मोहल्ले का शिलान्यास गवर्नर द्वारा कराना निश्चय हुआ, उनके स्वागत-सत्कार में धन पानी तरह बहाया जा रहा था, ईश्वर सेवक को यह बात असह्य थी। उत्तेजना वश वे दीवार से टकरा गये, इस चोट से उनकी मृत्यु हो गयी। मिसेज सेवक अपनी योजना अलग बना रही थी, विनय की मृत्यु से उनका मार्ग साफ हो गया था, वह चाहती थी कि अब सोफिया क्लार्क से विवाह कर ले। वे सोफी को घर बुला लायी और उसे समझाने लगी, सोफिया ने उनका मन रखने के लिए हाँ कर ली पर उसी दिन वह घर से निकल गयी। उसनें रानी जाह्नवी को पत्र लिख कर स्पष्ट कर दिया कि विनय के बिना उसका जिन्दा रहना असंभव है, इसलिए वह गंगा माँ की गोद में विश्राम लेने जा रही है, सोफिया के अन्त से मिसेज जॉनसेवक की योजना धूल में मिल गयी, और मानसिक आघात से उनका दिमाग खराब हो गया। जॉनसेवक पूर्ववत् अपने व्यवसाय की उन्नति में लगे रहे, उन्होंने पटने में भी सिगरेट का कारखाना खोल दिया।

परिच्छेद ५०—विनय और सोफिया की मृत्यु के बाद रानी जाह्नवी ने

सेवक दल का नेतृत्व अपने हाथ में ले लिया। डा० गांगुली ने कौंसिल का पद त्याग दिया और वे भी सेवक-दल का काम चलाने लगे, कुँवर भरत सिंह की मनोदशा का वर्णन करना असंभव है। वे इतने निराश हो गये कि वे दुबारा फिर से अपने पुराने मार्ग पर लौट गये। पुत्रशोक ने उनके स्वप्नों को चकनाचूर कर दिया था, भोग-विलास द्वारा वे अपने दुख को भुलाने की चेष्टा करने लगे, इंदु अपनी मां के साथ सेवक-दल का काम करने लगी।

रंगभूमि के कथानक की आलोचना

कथानक का प्रकार :—

प्राचीन कथाकारों की मान्यता यह थी कि जहाँ तक सम्भव हो कथा को बड़ा बनाया जाय, इसके लिए वे अनेक स्वतंत्र कथाओं को एक कथा के सूत्र में पिरोने का यत्न करते थे। इस बात की चिन्ता वे कम करते थे कि उन कथाओं की बीच की कड़ियां मजबूत हैं अथवा नहीं। उदाहरण के लिए, संस्कृत की कादंबरी या दशकुमारचरित्र लें, अंग्रेजी में आर्थर की कथा या अरब साहित्य की अरैबियन नाइट्स् लें, उन सब में एक कथानक के "फ्रेम" में अनेक कथाओं को बाँधा गया है। यह प्रणाली कथा को अधिकाधिक लंबा बनाने के प्रयास में अपनायी जाती थी। नाटकों में भी दो-तीन कथानकों का समावेश कर दिया जाता था, इसका उद्देश्य रोचकता की वृद्धि था। एक कथा को पाठक या दर्शक के आगे कुछ देर रख कर लेखक उसका मनोरंजन करता था और यह सोचकर कि अब पाठक का मन ऊबने लगा है, वह दूसरी कथा बीच में ला देता था। इन दो कथाओं में से एक मन पर बोझ डालने वाली होती थी, तो दूसरी मन को हलका करने वाली। इस प्रकार कई कथानकों का एक साथ प्रयोग कथा-लेखन-कला का मुख्य अंग था। इस कला का चरम विकास देवकीनन्दन खत्री के उपन्यासों में देखने को मिलता है। उनकी प्रसिद्ध "चन्द्रकांता" की मूल-कथा के जुड़े हुये कई कथानक हैं जितना विस्तार "चन्द्रकांता संतति" "भूतनाथ" और रोहतासमठ" में देखने को मिलता है। इसी प्रकार की परम्परा "लालपंजा", "रक्तमंडल" और "सुफेद शैतान" की कथाओं को एक कड़ी के

रूप में जोड़ने के लिए अपनायी गयी है। इन उपन्यासों के कथानकों में जोड़ लगाने के पीछे कुछ व्यावसायिक दृष्टिकोण अवश्य है पर कथा में रोचकता लगने और उत्सुकता जगाने की एक कला भी दिखायी देती है।

वर्तमान काल में इस प्रकार की कला को सदोष माना जाता है। किसी उपन्यास में कई कथानकों का एक साथ चलना, उसकी विशृंखलता (Looseness) का प्रमाण है। कई कथानकों को एक उपन्यास में एक कमजोर धागे में पिरोकर रखने की अपेक्षा, उस सब पर अलग-अलग लघु उपन्यास लिखना अधिक उपयुक्त समझा जाता है। इस दृष्टि से देखा जाय तो प्रमचन्द जी पुरानी पीढ़ी के लेखकों में गिने जायंगे। उपन्यासों में कई कथानक एक साथ चलते हैं, वे कभी एक का सूत्र पकड़ते हैं, तो कभी दूसरे का। यही बात "रंगभूमि" में भी देखने को मिलती है, उसका कथानक विश्रृंखल प्रकार है। रंगभूमि में तीन कथाएँ, एक विनय और सोफिया के प्रणय की कथा, दूसरी पांडेपुर में सिगरेट के कारखाने के खुलने की कथा, और तीसरी ताहिर अली के परिवार की कथा, इन कथाओं को एक मूल कथानक के प्रेम में लेखक ने बाँधा है, यह मूल कथानक दो रूपों में देखा जा सकता है।

कुछ आलोचकों का रंगभूमि की मूल कथा के बारे में विचार यह है कि प्रेमचन्द जी ने अपने इस उपन्यास में औद्योगिक क्रान्ति की कथा लिखी है, इसी मशीनी-युग में शहरों का विकास हो रहा है क्योंकि कल कारखानों के बनने से हजारों आदमी एक स्थान पर रहने लगते हैं। इन हजारों आदमियों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए ही शहर बसते हैं, मकान दूकान और सड़क उसी के परिणाम हैं, इस औद्योगिक क्रान्ति के दौरान में शहर पैदा होकर एक विशालकाय दानव का स्वरूप ग्रहण करता है। वह निरीह ग्रामों पर आक्रमण करता है, ग्राम उसका प्रतिरोध करता है पर अंत में वह गाँव को उदरस्थ कर जाता है, यह रंगभूमि की मूल कथा है।

रंगभूमि को पढ़ने पर उसकी मूल कथा का एक दूसरा रूप हमारे आगे उभर आता है। स्वयं "रंगभूमि" का शीर्षक इस बात का प्रमाण है कि मूल कथा दार्शनिक हैं, यह संसार "रंगभूमि" है और प्रत्येक मनुष्य का जीवन

इस रंगभूमि में एक ऐसे संघर्ष का प्रयत्न है जिसमें वह हारता है या जीतता है, यह बात कई बार सूरदास के मुँह से कहलायी गयी है। उपन्यास के अंत में सूरदास कहता है कि साहब (जॉनसेवक) आप जीते और मैं हारा, उधर जॉनसेवक कहते हैं कि सूरदास तुम जीते और मैं हारा, इस जीवन युद्ध में हार-जीत का निश्चय करना कठिन है, यदि नैतिक दृष्टि से देखा जाय, तो सूरदास जीता परन्तु यदि लौकिक दृष्टि से देखा जाय, तो जॉनसेवक जीते। आदि से अंत तक रंगभूमि "सूरदास" और "जॉनसेवक" के बीच एक प्रबल संघर्ष की कथा है।

अब पाठक जो भी दृष्टिकोण अपना ले, चाहे वह ग्राम-नगर के संघर्ष को अथवा सूरदास और प्रभुसेवक के संघर्ष को मूल कथा माने, उसे यह ज्ञात होगा कि तीनों कथाएँ इस मूल कथा के धागे में बाँधी हुई हैं। विनय और सोफिया की प्रणय कथा में लौकिक और आध्यात्मिक प्रेम, देश सेवा और व्यक्तिगत जीवन, हिन्दू और ईसाई संस्कारों के बीच द्वन्द्वों का समावेश है, जिसका अंत विनय और सोफिया की मृत्यु से होता है। पांडेपुर की कारखाने वाली कथा में जॉनसेवक द्वारा चुनी गयी सूरदास की भूमि को हस्तगत करने में भीषण उपद्रव, गोलीकांड, और मृत्यु की छाया के नीचे सूर जैसी विशाल आत्मा का तिरोहित होना हमारी भावनाओं को भारी आघात पहुँचाता है। ताहिर अली की कथा में उनकी विमाताओं के षडयंत्र के कारण उनकी धर्म भीरुता और नैतिक बल की पराजय अंकित है। इस कथा का सबसे अधिक हृदयस्पर्शी अंश वह है जिसमें ताहिर की कुलसुभ अपने अबोध बच्चों के साथ दर-दर की ठोकरें खाती हुई भी अपने आत्म सम्मान की रक्षा करती है। इन तीनों कथाओं की अपनी-अपनी अलग सत्ता है। अब देखना है कि लेखक ने किस प्रकार तीनों कथाओं में एक सूत्रता स्थापित की है।

जॉनसेवक धनाभिलाषी हैं, वे अपने पुत्र प्रभुसेवक के लिए पांडेपुर में कारखाना खोलना चाहते हैं, धन की यह भूख प्रभुसेवक जैसे कवि हृदय व्यक्ति के लिए असह्य है, फिर भी जॉनसेवक कारखाना खोलने के लिए तुल जाते हैं। इस जमीन को पाने के लिए पहले वे अपने गुमाश्ते ताहिर अली की सहायता

लेना चाहते हैं। इस प्रकार कथा नं० २ का सम्बन्ध कथा नं० ३ से जुड़ता है, ताहिर अली के परिवार का भरण पोषण जॉनसेवक पर निर्भर है, उनको जेल भी जॉनसेवक की रकम को गबन करने के कारण जेल जाना पड़ता है। यह दो बातें, इन दूसरी और तीसरी कथाओं के बीच सम्बन्ध स्थापित करती हैं।

पहली और दूसरी कथा के बीच प्रेमचन्द जी ने कई प्रकार से सम्बन्ध स्थापित किया है। जॉन सेवक की पुत्री सोफिया स्वतन्त्र विचारों की नवयुवती है। वह धर्म पर अन्ध श्रद्धा नहीं रखती, इस लिये उसकी माता उससे रुष्ट हो जाती है। सोफिया अपना घर छोड़ती है। वह एक दुर्घटना वश विनय के परिवार में पहुँच जाती है, इस प्रकार दूसरी ओर पहली कथा के बीच सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। कुछ समय तक यह दोनों कथायें साथ-साथ चलती हैं क्योंकि विनय और सोफिया एक ही स्थान पर रहते हैं, बाद में इन दोनों कथाओं का सम्बन्ध काफी देर के लिए टूट जाता है। विनय राजस्थान चले जाते हैं और सोफिया भी उन्हीं के पीछे वहाँ जा पहुंचती है। फिर प्रेमचन्द जी की कथा विश्रृंखलित होती हुई जान पड़ती है, इसलिए वे फिर विनय और सोफिया को काशी ले आते हैं। दूसरी कथा से पहली कथा का घनिष्ट सम्बन्ध रंगभूमि के अन्तिम भाग में होता है, जहाँ विनय सूरदास, और जॉन सेवक के बीच होने वाले संघर्ष में कूद पड़ता है। सोफिया भी विनय का अनुसरण करती है, अब यह दोनों कथायें एकाकार हो जाती हैं, पहली ओर तीसरी कथा का सम्बन्ध कहीं नहीं होता। तीसरी कथा (ताहिर अली की) अगर उपन्यास से निकाल दी जाय, तो कथानक के विकास पर न तो कोई प्रभाव पड़ेगा और न कथानक खंडित मालूम पड़ेगा, इस तीसरी कथा का महत्व केवल मानवीय चरित्र के विश्लेषण की दृष्टि से ही है।

इस प्रकार ताहिर अली की कथा और उदयपुर में विनय और सोफिया के निवास का प्रसंग रंगभूमि में कथानक को विश्रृंखल बना देते हैं। कथानक को संघटित बनाने की चेष्टा प्रेमचन्द क्रम से करते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि कथा का प्रवाह कई धाराओं में बँट जाता है। यदि उपन्यास के

कथानक में कई नदियों की भाँति कई कथाओं का उद्गम भिन्न भिन्न स्थानों से हो और वे बहती हुई एक स्थान पर आ मिलें, फिर सबका सम्मिलित प्रवाह मंथर गति से होता हुआ अन्त तक चला जाय, तो कोई हर्ज नहीं परन्तु यदि एक कथा मूलतत्व से भिन्न अस्तित्व रखते हुए चलती रहे तो उपन्यासकार की कला सटीक हो जाती है। रंगभूमि में यह दोष अवश्य आ गया है।

रंगभूमि की कथा-सामग्री का चयन—

उपन्यास मानव-जीवन का जीता जागता चित्र है। मानव जीवन की विशेषता यह है कि वह नाना प्रकार की घटनाओं से परिपूर्ण होता है। पशुओं के जीवन में पैदा होना, दिन रात पेट भरना सोना, फिर मर जाना, यह मुख्य घटनाएँ होती हैं। परन्तु मानव जीवन में विविध प्रकार की घटनाएँ घटित होती रहती हैं। यह घटनायें दो प्रकार की होती हैं, एक वे जो भौतिक जगत् से सम्बन्ध रखती हैं और दूसरी वे जिनका सम्बन्ध मानसिक जगत् से होता है। भौतिक जगत् में जन्म-मृत्यु, युद्ध-सन्धि, मैत्री-शत्रुता, क्रय-विक्रय गमन-आगमन, उत्थान-पतन, हानि-लाभ आदि की अनेकानेक घटनायें प्रतिक्षण होती रहती हैं। मनुष्य के मन में भावों और विचारों के उदय और अवसान की घटनाएँ घटित होती हैं। यह दोनों प्रकार की घटनाएँ एक दूसरे से सम्बन्धित हैं, कभी भौतिक जगत् की घटनाएँ मन में अनेक घटनाओं को जन्म देती हैं, तो कभी इसका उल्टा होता है अर्थात् मनुष्य के मन के भीतर की घटना अनेक वाह्य घटनाओं को जन्म देती है। इन सभी घटनाओं की सहायता से उपन्यास का महल खड़ा होता है, जिस प्रकार महल बनाने के लिए ईंट-चूने आदि की आवश्यकता है, उसी प्रकार उपन्यास की रचना के लिए घटनाओं का मसाला होना चाहिये। प्रेमचन्द जी ने इस मसाले को इकट्ठा करने में काफी श्रम किया है।

प्रेमचन्द ने 'रंगभूमि' का भवन खड़ा करने के लिए विविध प्रकार का घटना रूपी मसाला एकत्र किया है। भौतिक घटनाएँ हैं—जॉन सेवक का पाँडेपुर में एक गोदाम और कारखाना खोलना, उसके लिए सूरदास की जमीन

चुनना, उसे पाने के लिए अधिकारियों के पास दौड़ धूप करना, अपने कारखाने के शेयर बेच कर कुँवर भरतसिंह, राजा महेन्द्रसिंह तथा अन्य प्रभावशाली व्यक्तियों को पक्ष में कर लेना, पांडेपुर वालों का संगठित विरोध करना, जॉन सेवक का चतुरता पूर्वक उनमें फूट पैदा करना, सूरदास का सुभागी को आश्रय देना, इससे गाँव में सूरदास की बदनामी और उस पर मुकदमा चलाना, उसकी जमीन पर जॉन सेवक का कब्जा, पांडेपुर की बस्ती का मजदूरों के मकान बनाने के लिए खाली कराया जाना, आन्दोलन में इंद्रदत्त, विनय और सूरदास का मारा जाना, विनय और सोफिया का प्रेम होना, रानी जान्हवी का विनय को राजस्थान भेजना, उदयपुर में विनय का सेवा कार्य, विनय को जेल होना, सोफिया का विनय के पास पहुँचना और विनय का पतन, सोफिया का डाकुओं के साथ रहना, फिर विनय और सोफिया का भीलों की बस्ती में रहना, प्रभु सेवक का सेवकदल का नेतृत्व करना और विदेश जाना, सूरदास की प्रतिमा का बनना, राजा महेन्द्रसिंह की प्रतिमा को गिराना, इन्दु का पति से अलग होना, ताहिर अली का घूस लेना आदि। मानसिक जगत् की घटनाएँ भी कम नहीं हैं, यथा सोफिया को विचार स्वातन्त्र्य के कारण ईसामसीह के देवत्व पर निरन्तर अविश्वास करना, उसका विनय से प्रेम होना, पर उसे पतन से बचाने के लिए कटिबद्ध होना पर उससे चित्त का बार-बार चंचल होना, विनय को पाने की आतुरता, पर विनय के कृत्यों से घृणा करना, रानी जान्हवी का पुत्र प्रेम पर साथ ही उसके बलिदान की कामना, विनय का सोफिया के प्रति वासनायुक्त प्रेम पर साथ ही माता से भय, ताहिर अली की कर्तव्य के प्रति आस्था पर आवश्यकता वश गबन करने के लिए तैयार होना, इन्दु की पतिभक्ति पर विचार स्वतन्त्रता के कारण परेशानी आदि, मानसिक और भौतिक इन दोनों प्रकारों की घटनाओं की रंगभूमि में प्रचुरता है।

घटनाओं की सामग्री का चयन करना सरल काम नहीं है। हर एक लेखक यह काम नहीं कर सकता। जिसे जीवन की विशालता और विविधता का अनुभव नहीं है, वह घटनाओं को चुनकर एक उपन्यास में कैसे प्रस्तुत कर

सकता है। मानव जीवन का क्षेत्र बड़ा व्यापक है, एक ओर वह शरीर के तंग दायरे में बंद है, तो दूसरी ओर विश्व की विशालता पर भी वह छाया हुआ है। एक ओर जीवन पेट भरने तक ही सीमित है, दूसरी ओर वही जीवन राज-नीति, दर्शन, धर्म, साहित्य, विज्ञान और कला की गहराइयों में भी प्रवेश करता है। अस्तु, लेखक को जब तक जीवन के इन विविध पक्षों का ज्ञान न हो प्रत्यक्ष अनुभव न हो और जब तक उसकी कल्पना में इन पक्षों तक पहुँचने की शक्ति न हो, वह उपन्यास के लिए उत्तम कथा-सामग्री नहीं एकत्रित कर सकता। प्रेमचन्द जी एक प्रतिभावान लेखक हैं, स्वयं उन्होंने अपने जीवन में अनेक कठिनाइयाँ झेलीं; भिन्न-भिन्न प्रकार के व्यक्तियों और समाजों का अनुभव प्राप्त किया। उनके अनुभव की व्यापकता और विविधता का प्रमाण ऊपर दी गई रंगभूमि की घटनाओं की वृहद् सूची से मिल सकता है, गांवों के झोपड़ों; कुली और मजदूरों की गंदी कोठरियों से लेकर ऊँची अट्टालिकाओं और राजभवन में रहनेवाले प्राणियों तक उनकी पहुँच है। इस सम्बन्ध में जगन्नाथ प्रसाद द्विज ("प्रेमचन्द की उपन्यास कला") का कथन अत्यन्त सटीक है:—

"वे केवल पारिवारिक जीवन का चित्र या किसी सम्प्रदाय विशेष की दुरवस्थाओं का वर्णन उपस्थित करके ही अपना काम नहीं पूरा कर लेते, अपने विस्तृत समाज और विशाल राष्ट्र की व्यापक एवं गंभीर समस्याओं पर पूरा पूरा प्रकाश डालते हुए, भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में विभक्त सांसारिक जीवन की विशद व्याख्या करना भी उनका उद्देश्य रहता है। अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए ये जीवन के प्रायः सभी क्षेत्रों से कथा-सामग्री का संचय करते हैं। किसान, मजदूर, जमींदार, राजा, रंक, साधु, चोर, पुलिस, हाकिम, वकील, विद्यार्थी, अध्यापक, राजनीतिज्ञ, सुधारक, प्रचारक, देशसेवक, पंडे, गुंडे आदि सभी प्रकार के लोगों की जीवन-घटना के रंग-बिरंगे चित्र खींचकर रख देते हैं।"

रंगभूमि में कथा सामग्री का प्रयोग:—

ईंटा-चूना-लकड़ी मात्र इकट्ठा कर देने से ही मकान नहीं तैयार हो जाता। कारीगर लोग इन चीजों का प्रयोग अपने-अपने स्थान पर करते हैं।

नींव और दीवार में ईंटा-चूना लगता है तो दरवाजों और खिड़कियों में लकड़ी। इसी प्रकार उपन्यासकार भी हर घटना को उसके उचित स्थान पर ही सजाता है। जरा-सा हेर-फेर होने पर उपन्यासकार का कथानक खराब हो जाता है। उपन्यासकार की कला कथा-सामग्री के उपयोग और उसके सँजोने में देखने को मिलती है। प्रेमचंद जी की यह कला अपना अलग महत्व रखती है और उसकी अपनी निजी विशेषतायें हैं। हम क्रमशः उन पर विचार प्रकट करेंगे।

घटनाओं का उपयोग करने में प्रेमचन्द ने उन घटनाओं का चयन किया है जिनका सम्बन्ध किसी सिद्धान्त विशेष से हो। रंगभूमि में कारखाना चालू करने की घटना का सम्बन्ध देश में होने वाले औद्योगीकरण से है। जान सेवक इस विचारधारा का प्रतिनिधित्व करते हैं कि देश का लाभ कल कारखानों के चलाने और देश की आय बढ़ाने में है। सूरदास कल-कारखाने का विरोध करने वाले लोगों का प्रतिनिधि है। इन दोनों परस्पर विरोधी विचार धाराओं के चारों ओर घटनाएँ सजायी गयी हैं। दूसरी प्रमुख घटना है, विनय और सोफिया का प्रेम, इसके मूल में भी दो विचार हैं, एक संयमपूर्ण आदर्शोन्मुख प्रेम का महत्व लेकर चला है, तो दूसरा वासना प्रधान प्रेम का पक्ष प्रस्तुत करता है। बहुत सी घटनाओं को इन विचारों के सूत्र में पिरोया गया है, तीसरी प्रमुख घटना है, ताहिर अली के जेल की। मनुष्य पर गृहस्थी का भारी बोझा नीयत को दुरुस्त नहीं रहने देता। इस विचार को लेकर सारी घटनाएं प्रस्तुत की गयी हैं। स्पष्ट है, कि प्रेमचन्द जी यों ही बिना किसी उद्देश्य के घटनाओं का वर्णन नहीं करते।

घटनाओं के उपयोग में दूसरा सिद्धान्त जो प्रेमचन्द जी ने अपनाया है, वह यह है कि घटनाओं का उपयोग ऐसे ढंग से किया जाय कि उनमें शिक्षाप्रद प्रवृत्ति पैदा हो जाय, पाठक उन घटनाओं से कुछ सीख सके। उदाहरण के लिए, सोफिया और विनय के प्रेम की घटना लें। इस प्रसंग में कहीं भी अश्लीलता नहीं आने पायी है। साथ ही प्रेमचन्द जी ने वासना की मौजूदगी सांकेतिक ढंग से प्रकट कर दी है। विनय और सोफिया भीलों की

बस्ती में एक साथ रहते हैं। दोनों के मन में वासना का उदय क्रम से होता है परन्तु ऐसा अवसर कभी नहीं आता कि दोनों संयम खो बैठें। जब विनय कहता है कि मैं तुमको सम्पूर्ण रूप से पाना चाहता हूँ, तो सोफिया उसे रोक देती है। इसके बाद जड़ी के प्रयोग से सोफिया जब संयम खो देती है, तो विनय उसे रोक देता है। घटनाओं पर आदर्श का रंग चढ़ाने में प्रेमचन्द जी सिद्धहस्त हैं। कारखाने के चलने पर पांडेपुर में पाप कर्म बढ़ जाते हैं पर उनका नग्न रूप कभी देखने को नहीं मिलता। मजदूर एक स्त्री को छेड़ते हैं, तो सूरदास उन्हें रोक देता है, मनचले नवयुवक सुभागी को रात में पकड़ना चाहते हैं पर वे पकड़ लिये जाते हैं। सूरदास अपनी जमीन इसलिए नहीं बेचता कि इसमे पूरे पांडेपुर की हानि होगी। सामाजिक हित के लिए वह अपने व्यक्तिगत स्वार्थ का बलिदान कर देता है।

साथ ही प्रेमचंद जी घटनाओं को स्वाभाविक रूप में प्रस्तुत करते हैं। वे उन्हें काट छाँट करके अपना रंग भले ही भरते हों पर उनमें कोई अनहोनापन नहीं आने पाता। उदाहरण के लिए सूरदास के अपनी जमीन बचाने के प्रयत्नों को लीजिए। सूरदास जिस तरह सत्याग्रह द्वारा जॉनसेवक की योजनाओं का विरोध करता है, वह हमें चमत्कृत अवश्य करता है पर उस पर हमें अविश्वास नहीं होता क्योंकि गाँधी-युग में ऐसा होना असंभव नहीं कहा जा सकता था। रंगभूमि में कहीं भी तिलिस्मी या जादूगरी की घटनाओं का वर्णन नहीं है।

श्री विनोद शंकर व्यास ने अपनी पुस्तक 'उपन्यास-कला' में घटनाओं के उपयोग की कला के सम्बन्ध में लिखते हुए कहा है कि उपन्यास में तीन प्रकार से घटनाओं का उपयोग किया जा सकता है। (१) उपन्यास के प्रधान पात्र के चारों ओर घटनायें केन्द्रित कर दी जाती हैं अर्थात् पात्र के व्यवहार के आधार पर घटनाएँ चुनी जाती हैं। (२) किसी-किसी उपन्यास में कई कथाएँ एक साथ एक सूत्र में आबद्ध कर दी जाती हैं। (३) कुछ उपन्यासों में घटनाओं में कार्य-कारण का सम्बन्ध जोड़ दिया जाता है।

हम 'रंगभूमि' में तीन कथाओं के समावेश के बारे में लिख चुके हैं।

गरीबी और उनकी विमाताओं के दुष्कृत्यों से ही उनके पतन का आभास हमें होने लगता है। विनय और सोफिया के प्रेम के अंतिम परिणाम का संकेत पहले ही मिल जाता है। विनय की निर्बलता, सोफी का आदर्शवाद, जाह्नवी की योजना, धर्म का भेद आदि उस अंत का संकेत करते हैं। जिसे हम आगे चलकर देखते हैं। सुभागी को भैरों घर से निकाल देता है पर सूरदास का विश्वास है कि वह उसी घर की रानी बन कर रहेगी और अंत में ऐसा ही होता है। इंदु और राजा महेन्द्रसिंह के संबंध विच्छेद का संकेत तभी मिल जाता है, जब वे इंदु के कहने पर भी सोफिया को नहीं ले जाते और इंदु मन ही मन विद्रोह करती रहती है।

भावी घटनाओं का पूर्व संकेत देने की विधि अपनाने से रंगभूमि में औत्सुक्यवृद्धि की योजना पर आघात पहुँचता है। उपन्यास आदि मनोरंजन के लिए लिखा जाय, तो उपन्यासकार के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह पाठकों का मन चित्रकथा में रमाने की पूरी चेष्टा करे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए घटनाओं के क्रम में हेर-फेर करना पड़ता है, या अवरोध पैदा करना होता है। कभी लेखक एक ऐसी घटना प्रस्तुत करता है जिसके कारण जानने को पाठक उत्सुक हो। कभी वह ऐसी घटना प्रस्तुत करता है जिसके कई परिणाम होने की संभावना हो, पाठक अनुमान नहीं लगा पाता और उत्सुकतापूर्वक परिणाम की प्रतीक्षा करता है। कभी-कभी लेखक एक ऐसी घटना प्रस्तुत करता है जिसके परिणाम का अनुमान पाठकों को सहज हो जाता है परन्तु अप्रत्याशित ढंग से परिणाम उल्टा हो जाता है, इससे कुतूहल जाग्रत होता है। प्रेमचंद जी यद्यपि भावी घटना का संकेत दे देते हैं तथापि वे पाठक की जिज्ञासा बनाये रखने की व्यवस्था अवश्य रखते हैं। कुतूहल बनाये रखने के लिए वे पात्रों के मन में विचार-परिवर्तन कराते रहते हैं। सूरदास अपनी जमीन बेचने से इनकार कर देता है परन्तु जब मिठुआ और सूरदास को मोहल्ले वाले परेशान करते हैं, तो वह उसी जमीन को बेचने के लिए तैयार हो जाता है। पाठक को तुरंत यह जिज्ञासा होती है कि देखें, परिणाम क्या होता है। इसी प्रकार सोफिया पहले विनय का पत्र न पढ़ने का निश्चय

सोफिया और विनय के परिवारों को एक निकट लाने में संयोग का बहुत बड़ा हाथ है। ताहिर एक चमार को पैसा दे सकने में असमर्थ हैं क्योंकि उन्होंने रोकड़ का धन खर्च कर लिया है। इसी अवसर पर उनके मालिक अकस्मात् आ धमकते हैं और ताहिर अली गबन के जुर्म में पकड़ लिये जाते हैं। विनय सोफिया की खोज में पहाड़ों और जंगलों की खाक छानते फिरते हैं पर उसे नहीं खोज पाते, सहसा इंद्रदत्त उन्हें मिल जाता है। विनय सोफिया द्वारा प्रताड़ित होकर लौट आते हैं और नायकराम के साथ काशी लौटते हैं। एकाएक उसका मिलन सोफिया से ट्रेन पर हो जाता है। 'असंभावित' का प्रयोग भी प्रेमचंन्द जी ने किया है। सोफिया विनय से शारीरिक संबंध स्थापित करने में हिचकती है। एक भीलनी विनय को अद्‌भुत जड़ी देती है जिसके तांत्रिक प्रयोग से उस पर विचित्र असर होता है। उसमें संयोग की इच्छा जाग्रत हो जाती हैं। 'अप्रत्याशित का प्रयोग भी रंगभूमि में हुआ है। मनुष्य सोचता कुछ है घटित कुछ होता है। इसे 'अप्रत्याशित' कहें, या भाग्य कहें पर मानव जीवन में प्रायः इच्छा और प्रयत्न के प्रतिकूल घटनाएँ घटित होती दिखायी देती हैं। मिसेज सेवक लाख चाहती हैं कि उनकी संतानें धर्माचरण करें पर सोफिया और प्रभुसेवक दोनों धर्म पर अंधश्रद्धा नहीं रखते। वे सोफिया का विवाह क्लार्क से कराना चाहती हैं पर वह उससे घृणा करने लगती है। मिस्टर जॉनसेवक अपने पुत्र के लिए कारखाना खोलते है, व्यवसाय में निपुण बनाने के लिए उसे विदेश भेजते हैं पर प्रभुसेवक कविता करने लगता है और माता-पिता को छोड़ कर विदेश में जा बसता है। रानी जाह्नवी विनय को आदर्श देशसेवक बनाने का भरसक प्रयत्न करती हैं पर वह सोफिया के प्रेम-प्रवाह में डूबकर कुछ का कुछ बन जाता है। राजा महेन्द्रसिंह सूरदास को नीचा दिखाने का पूरा प्रयत्न करते हैं पर परिणाम स्वरूप अपनी ही प्रतिष्ठा गँवा बैठते हैं। इंदु अपने पति की पूजा करना चाहती है पर अंत में उसे पति का त्याग करना पड़ता है, ऐसी घटनाएँ कार्य-कारण के सिद्धांत का अतिक्रमरण करती हैं और प्रेमचंद जी ने उनका खुल कर प्रयोग किया है।

घटनाओं के उपयोग में प्रेमचंद जी एक और सिद्धान्त का पालन करते

दिखाई देते हैं। वह यह है कि कभी-कभी एक घटना इतनी शक्तिशाली होती है कि मनुष्य उसके वेग के आगे ठहर नहीं पाता; वह उसे बहा ले जाती है। एक घटना ईमानदार को चोर और सज्जन को दुर्जन बनने से लिए मजबूर करती है, दूसरी ओर मनुष्य में भी इतनी शक्ति होती है कि वह घटना के प्रवाह को अपनी इच्छानुसार दूसरी दिशा में मोड़ देता है। प्रेमचन्द जी जीवन के इस सत्य को पहचानते हैं, वे भाग्यवाद और प्रयत्नवाद का संतुलित प्रयोग करते हैं। रंगभूमि में घटनाओं की सबलता और निर्बलता दोनों दर्शनीय है। सोफिया और विनय का मिलन एक ऐसी घटना है, जो विनय के जीवन की दिशा को सर्वथा बदल देती है। विनय की मृत्यु कुँवरभरतसिंह को फिर से भोगी और विलासी बना देती है। सोफिया की मृत्यु के आघात से मिसेज सेवक पागल हो जाती हैं। कारखाने के बनने से पाँडेपुर के नवयुवक पतन के गर्त में गिर जाते हैं, दूसरी ओर जॉनसेवक की दृढ़ता के आगे परिस्थितियों को झुकना पड़ता है और वे कारखाने को चलाने में सफल हो जाते हैं। जाह्नवी की दृढ़ता के आगे विनय को पराजित होना पड़ता है और अंत में वे वीरमाता कहलाने का गौरव प्राप्त ही कर लेती हैं। सूरदास के आगे राज्य की शक्ति भी माथा टेक देती है। कुलसुभ की दृढ़ता के आगे संकट छिन्न भिन्न हो जाते हैं।

घटनाओं के उपयोग में प्रेमचंद जी एक 'टेकनीक' यह अपनाते हैं कि वे भावी घटना का संकेत पाठकों को दे देते हैं। रंगभूमि में जॉन सेवक और सूरदास के बीच निरंतर संघर्ष चलता है और अंत में दोनों की हार-जीत का निर्णय नहीं हो पाता। यह संघर्ष कितना कठिन होगा, इस बात का आभास हमें पहले परिच्छेद में ही मिल जाता है। प्रभुसेवक सूरदास पर प्रभाव डालने के लिए भिक्षा के रूप में उसे पाँच रुपये देते हैं। सूरदास उनकी चाल को समझ जाता है। यह रुपये वह नहीं लेता क्योंकि भिक्षा के साथ स्वार्थ मिला था। वह जहर मिली मिठाई को पहचान लेता है। तभी जॉन-सेवक कहते हैं—जितना आसान समझता था, उतना आसान नहीं है। यहीं से पाठक को संघर्ष की तीव्रता का अनुमान हो जाता है। ताहिर अली की

पाठक उसके आधार पर निर्णय कर सकता है कि इस उपन्यास में दूसरी शैली का प्रयोग हुआ है। साथ ही प्रेमचंद जी ने कुछ घटनाएँ एक पात्र के चारों ओर तथा कुछ घटनाएँ दूसरे पात्र के चारों ओर एकत्रित की हैं। रंगभूमि की तीन कथाओं की घटनाएँ तीन पात्रों विनय, सूरदास और ताहिर अली के चारों ओर केन्द्रित हैं। अस्तु, यह कहना उचित है कि रंगभूमि में दोनों शैलियों का मिश्रण है। कार्य-कारण के सम्बन्ध के आधार पर घटनाओं का उपयोग करने की चेष्टा शुद्धरूप से प्रेमचंद जी ने कभी नहीं की। उन्होंने बहुत सी घटनाओं के बीच कार्य-कारण का वैज्ञानिक सम्बन्ध स्थापित किया है। उदाहरण के लिए ताहिरअली गबन करते हैं। इसका कारण पहले ही बता दिया जाता है; उन पर एक बड़ी गृहस्थी का भार है। विमाताओं के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करना वे चाहते हैं। भाइयों की पढ़ाई का उत्तरदायित्व वे टालना नहीं चाहते। प्रदर्शन की भावना उनमें थी ही। इस कारण से गबन की घटना सम्भव हुई। इसी प्रकार जॉनसेवक सिगरेट का कारखाना चलाने की योजना बनाते हैं, उसके लिए सूर की जमीन लेना आवश्यक है। सूरदास वह जमीन नहीं देना चाहता, यह पाँडेपुर में होने वाले रक्तपात का कारण बनता है।

घटनाओं के बीच कार्य-कारण के सम्बन्ध में प्रेमचंद जी की मान्यता भिन्न है। उनका विचार है कि मानव जीवन कार्य और कारण के दो किनारों के बीच बँधी हुई सरिता के समान नहीं चल सकता। जीवन को गणित या विज्ञान के द्वारा पूर्ण रूपेण हल नहीं किया जा सकता। अनेक घटनाएँ असंभावित, और आकस्मिक भी होती हैं। अतः प्रेमचंद जी निःसंकोचभाव से ऐसी घटनाओं का उपयोग करते हैं, क्योंकि जीवन में ऐसी घटनाएँ घटित होती रहती हैं। रंगभूमि में ऐसी कई घटनाएँ देखने को मिलती हैं। सोफिया अपने विचारों की स्वतंत्रता को खोना नहीं चाहती। इसलिए वह माता से लड़कर अपने घर से निकल आती है। संयोगवश वह उस ओर जा निकलती है, जिधर उसकी एक सखी इन्दु का घर है। यह भी संयोग ही है कि उसी समय विनय दुर्घटनाग्रस्त हो जाता है और सोफिया उसे बचाने के प्रयत्न में जल जाती है।

करती है, वह पत्र बिना खोले हुए जाह्नवी को देती है। फिर वह विनय के बारे में जानने के लिए चोरी से रानी साहब का बटुवा खोलती है, इस तरह के कई उदाहरण ढूंढ़े जा सकते हैं। उत्सुकता वृद्धि के लिए संघर्ष का उपयोग भी किया गया है। दो शक्तियाँ टकराती हैं, एक शक्ति जिसके प्रति हमें सहानुभूति होतीहै, नष्ट होती प्रतीत होती है और हमारे मन में परिणाम जानने की उत्सुकता स्वाभाविक रूप से पैदा हो जाती है। सूरदास अपनी झोपड़ी में बने रहने का अटल निश्चय करता है। दूसरी ओर राजा महेन्द्रसिंह पुलिस दल के साथ आ जमते हैं। उस समय सूरदास के प्रति हमारी घनी सहानुभूति उस सनसनीपूर्ण वातारण को कुतूहल से भर देती है। इसी प्रकार सुभागी के मामले में जब सारा मोहल्ला एक हो जाता है तो हम सूरदास की भावी दशा जानने को उत्सुक हो जाते हैं।

प्रेमचन्द घटनाओं की योजना कुछ इस प्रकार भी करते हैं कि उनके द्वारा पात्रों के स्वभाव और चरित्र पर प्रकाश पड़े। विनय और सोफिया को वे भीलों के गांव में एकान्तवास कराते हैं। दोनों में प्रगाढ़ प्रेम और उन्मुक्त स्वतन्त्र परिस्थिति उनके लिये एक अग्नि-परीक्षा उपस्थित करते हैं। यह घटना सिद्ध करती है कि उनमें पर्याप्त संयम है। भैंरों सुभागी को घर से निकाल देता है। अबला की रक्षा करना धर्म है। सूरदास उसे शरण देता है यद्यपि उसकी बदनामी होती है। सूरदास स्वयं कहता है कि घोर संकट में ही मनुष्य की न्याय-बुद्धि की परीक्षा होती है। ताहिर अली के ईमान का पता तभी चलता है, जब उनके पास धन तो नहीं होता पर विमाताएँ उन्हें पैसे के लिये तंग करती रहती हैं।

घटनाओं के उपयोग में प्रेमचन्द जी कलात्मक दृष्टि से कुछ भूलें भी करते हैं। एक तो वे कुछ अस्वाभाविक और परस्पर विरोधी बातों का समावेश कर देते हैं जैसे, एक जगह वे सूरदास को अत्यन्त निर्बल बनाते हैं, कुछ मजदूर उसकी टांग पकड़ कर गिरा देते हैं, दूसरे स्थल पर प्रेमचन्द उसमें इतनी शक्ति दिखा देते हैं कि वह मल्लयुद्ध में जगधर को दो बार पछाड़ता है। लोगों को संदेह होता है कि उसको किसी देवता का इष्ट है। इसी

प्रकार प्रभु सेवक दुबला-पतला निस्तेज युवक है जो कविता के प्रेम में सारी दुनिया को भूला बैठा है परन्तु पाँडेपुर पहुँचकर जरा-सी बात पर नायकराम जैसे गुंडे की बुरी खबर लेता है—वह नायकराम साधारण व्यक्ति नहीं वरन् शहर का मशहूर गुंडा, जो जेल की दीवार तक फाँद जाता है। विनय जेल से नहीं भागता, यद्यपि वीरपालसिंह उसे आसानी से निकाल ले जाना चाहता है। दूसरे अवसर पर वही विनय बिना किसी आपत्ति के नायकराम के साथ निकल भागता है। यह घटनाएँ बड़ी अस्वाभाविक जान पड़ती हैं।

प्रेमचन्द जी घटनाओं के प्रयोग में संयम से काम नहीं लेते। वे बहुत कुछ लिखना और कहना चाहते हैं, इसलिये तमाम अनावश्यक बातें वे लिख जाते हैं। "इसका कारण यह है कि इनकी अद्भुत वर्णन शक्ति कल्पना के विस्तृत प्राँगण में पहुँचते ही बहुत अधिक उत्तेजित हो उठती है।" वर्णनों के प्रलोभन को वे रोक नहीं पाते। शरत् चन्द्र की भाँति वे थोड़े में सब कुछ कहने के आदी नहीं हैं। 'रंगभूमि' में ऐसी कई घटनाएँ आ गयी हैं, जो अनावश्यक हैं और जिनके निकाल देने से कथानक संघटित बन सकता है। उदाहरण के लिए ताहिर अली को यदि गुमाश्ते के रूप में दिखाकर उनके परिवार के सम्बन्ध में भी न लिखा जाय, तो काम चल जायगा और कथा प्रवाह में सुधार हो जायगा। सोफिया विनय के घर रहती है; वहां प्रभु सेवक की कविता पर एक गोष्ठी का आयोजन अनावश्यक है। जगधर और सूरदास का मल्लयुद्ध दिखाने की क्या आवश्यकता थी? इसी प्रकार नायकराम का काशी से उदयपुर ले जाना और फिर उन्हें अकेले लौटाना कोई महत्व नहीं रखता। नायकराम का कुंवर भरत सिंह के मुनीम से २५) ऐंठ लेने की घटना मनोरंजक होते हुए भी भर्ती की घटना है। इन्दु और सोफिया के बीच तनाव दिखाने के लिये जो परिच्छेद लिखा गया है, उसे बिना किसी बाधा के निकाला जा सकता है। इसी प्रकार राजा महेन्द्र सिंह को नीचा दिखाने के बाद उन पर 'मुछेन्द्र सिंह' के नाम से एक प्रहसन लिखना, फिर प्रभु के साथ मिलकर पढ़ना, हंसना और बाद में सूरदास की बातों से प्रभावित होकर उसे फाड़ डालना ऐसी घटना है, जो व्यर्थ में उपस्थित की गयी है। नायकराम को

उदयपुर भेजकर दरोगा के घर ठहराना और दरोगा के परिवार का वर्णन भी एक प्रकार से अनावश्यक घटना है।

मृत्यु जैसी घटना को प्रेमचन्द जी कभी-कभी जान बूझकर ले आते हैं। स्पष्ट पता चल जाता है कि वे अब कथा को आगे बढ़ाने में असमर्थ हैं। इससे 'मृत्यु' को प्रवेश कराकर किसी न किसी पात्र को कथा से बाहर करा देते हैं। रंगभूमि में 'विनय' को पाँडेपुर के झगड़े में पहुँचाकर और पिस्तौल द्वारा एक आदर्श के लिए मरवाकर उचित कार्य नहीं किया। वास्तव में वे सोफी और विनय की प्रेम कथा को आगे बढ़ाने में असमर्थ थे। इस बात का पता इन्दु के मुख से चल जाता है। रानी जान्हवी, इन्दु के विचार में, हृदय से विवाह का समर्थन नहीं करतीं। सोफी को यह सह्य नहीं। प्रणय का अन्त उन्होंने मृत्यु द्वारा करा दिया है। इसी प्रकार राजा महेन्द्रसिंह का अन्त भी अस्वाभाविक है। सूरदास की प्रतिमा के नीचे दबकर मर जाने की घटना से प्रकट होता है कि प्रेमचन्द जी ने स्वयं ही उनका गला घोट दिया हैं।

रंगभूमि की कथा का विकास—

रंगभूमि की मूल कथा का सूत्रपात प्रथम तीन परिच्छेदों में हुआ है। जॉन सेवक सूरदास की जमीन लेने का निश्चय करते हैं और सूरदास अपनी जमीन बचाने के लिये प्राणों की बाजी लगाने की प्रतिज्ञा करता है। सोफिया विनय के घर पहुँचकर रहने लगती है और दोनों के बीच प्रणय की संभावनाएं पैदा हो जाती हैं। ताहिर की पारिवारिक कठिनाइयों का अनुमान यहीं से हो जाता है। चौथे परिच्छेद से कथा का विकास प्रारम्भ होता है। जॉन सेवक की शक्ति बढ़ने लगती है। उनके पक्ष में कुंवर भरतसिंह और राजा महेन्द्र सिंह जैसे प्रभावशाली लोग काम करने लगते हैं। क्लार्क जैसा जिलाधीश उनकी पुत्री को पाना चाहता है और हर प्रकार की सहायता करने को तैयार हो जाता है। दूसरी ओर सूरदास का पक्ष भी सबल हो जाता है। उसका समर्थन पांडेपुर के लोग करने लगते हैं। विनय और सोफिया की प्रेम-कथा में विकास होता है। दोनों एक दूसरे से प्रगाढ़ प्रेम करने लगते हैं परन्तु विनय की माता जान्हवी इस प्रेम में एक बहुत बड़ी बाधा बनकर खड़ी हो

जाती है। ताहिर अली की कथा में उनकी ईमानदारी को नष्ट करने के लिये उनकी विमाताएं पूरी शक्ति का प्रयोग करती हैं। सूरदास के प्रसंग में सूर की शक्ति धीरे-धीरे घटती जाती है। चतुर जॉन सेवक पाँडेपुर वालों को परिच्छेद १२ में अपनी ओर तोड़ लेते हैं। यहां से सूरदास की हार निश्चित हो जाती है। सूरदास की नैतिक शान्ति को सुभागी के कारण धक्का लगता है। उधर सोफिया के दृढ़ निश्चय को डिगाने का सामान उनकी माता इकट्ठा करती है; क्लार्क सोफिया को पाने के लिये तैयार हो जाता है। सोफिया अपने प्रेम की रक्षा करती रहती है। वह विनय के लिये उदयपुर तक पहुँच जाती है। इसी प्रकार एक बार फिर से सूरदास की शक्ति बढ़ती है क्योंकि सोफिया के कहने से क्लार्क राजा महेन्द्रसिंह को जमीन न लेने का आदेश देता है। कथानक का विकास होता जाता है। सूरदास टिक नहीं पाता। क्लार्क की बदली हो जाती है और जमीन पर जॉन सेवक का अधिकार हो जाता है।

सूरदास की जमीन का हस्तगत होना कथानक की चरमसीमा है। उधर विनय और सोफिया का एक साथ भीलों के गांव में पति-पत्नी वत् रहना उनकी प्रणय कथा की चरम सीमा है। ताहिर अली के लिये कमीशन का बँधना पर उनके खर्च का बढ़ना उनकी कथा का चरमोत्कर्ष है। इसके बाद रंगभूमि की कथा उतार की ओर चलती है। यह निश्चय सा हो जाता है कि पांडेपुर भी खाली होगा; शहर देहात को निगल जायगा। ग्राम की पराजय के साथ-साथ विनय और सोफिया के प्रेम का अन्त और सूरदास का अन्त मृत्यु द्वारा तथा ताहिर की कथा का अन्त उनके जेल जाने से होता है। रंग-भूमि का कथानक कई मोड़ लेता हुआ अन्त में दुखद वातावरण प्रस्तुत करके समाप्त होता है।

रंगभूमि के पात्र और पात्रियाँ

(१) **सूरदास** :—रंगभूमि का प्रधानपात्र सूरदास बनारस शहर की एक बाहरी बस्ती पाँडेपुर का निवासी है, शरीर से निर्बल, (क्योंकि वह नेत्रहीन है) पर आत्मा में सबलतम; तुच्छ प्राणी होते हुए भी प्रभाव में राजा-महाराजों

और विद्वानों से श्रेष्ठ वह सबके हृदय पर राज्य करता है, इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि उसके विरोधी जिलाधीश मि० क्लार्क, म्यूनिसिपल कमेटी के प्रधान राजा महेन्द्र सिंह, मिल मालिक जॉनसेवक, उसके पड़ोसी नायकराम, बजरंगी, जगधर और भैंरों आदि सभी उसकी महानता के कायल हैं। विरोधी भी जिनके प्रशंसक हों और उसकी न्यायबुद्धि पर विश्वास करते हों, वह व्यक्ति कितना महान हो सकता है, उसकी सहज ही कल्पना की जा सकती है। अतः उपर्युक्त लोगों के उद्‌गारों का उल्लेख करना आवश्यक है :—

क्लार्क :—मुझे इसका अफसोस है कि मेरे हाथों ऐसे अच्छे आदमी (सूरदास) की हत्या हुई।............भय ऐसे ही मनुष्यों से है, जो जनता के हृदय पर शासन करते हैं। यह राज्य करने का प्रायश्चित है कि इस देश में हम ऐसे आदमियों का वध करते हैं, जिन्हें इंगलैंड में हम देव तुल्य समझते हैं—पृ० ५२३।

मि० जॉनसेवक :—तुम इस संग्राम में निपुण हो सूरदास, मैं तुम्हारे आगे निरा बालक हूँ। लोकमत के अनुसार मैं जीता और तुम हारे पर जीत कर मैं दुखी हूँ, तुम हारकर भी सुखी हो। तुम्हारे नाम की पूजा हो रही है, मेरी प्रतिमा बनाकर लोग जला रहे हैं। पृ० ५१२

नायकराम :—"ऐसे वीर विरले होते हैं। आदमी नहीं था देवता था।" पृ० ५१७

बजरंगी :—"सच कहते हो भैया, आदमी नहीं था, देवता था। ऐसा शेर आदमी कहीं नहीं देखा। सच्चाई के सामने किसी की परवा नहीं की, चाहे कोई घर का लाट क्यों न हो।" पृ० ५१७

जगधर :—"अरे, मैं सूरे की निंदा थोड़े ही कर रहा हूँ। दिल दुखता है तो बात मुँह से निकल आती है ....नहीं तो सूरदास का-सा आदमी कोई क्या होगा। पृ० ५१८

भैरों :—वह आदमी नहीं, साधु है। पृ० ३६३

महेन्द्र सिंह :—"सूरदास, मैं तुमसे अपनी भूलों की क्षमा माँगने आया हूँ। अगर मेरे वश की बात होती तो मैं आज अपने जीवन को तुम्हारे जीवन

से बदल लेता ।" पृ० ५०६

यह उद्गार हैं, उन लोगों के जो सूरदास से किसी न किसी कारण से वैर-विरोध रखते थे । उनके प्रशंसकों के कथनों में अत्युक्ति हो सकती है परन्तु वे प्रशंसक असाधारण व्यक्ति हैं और उन्हें मानव चरित्र को परखने की शक्ति है । उदाहरण के लिए सोफिया को ले लीजिए । सोफिया धर्म परायणा विदुषी और निर्भीक स्त्री है और वह प्रारम्भ से ही सूर की महत्ता स्वीकार करने लगती है । प्रथम साक्षात्कार में ही सूरदास के प्रति जो धारणा बना ली, कह अंत में सच्ची उतरी और हर एक व्यक्ति उसके मत को स्वीकार करता है । थोड़ी देर बात करने के बाद ही वह प्रभु से कहती है—"प्रभु, यह अंधा आदमी तो कोई ज्ञानी पुरुष जान पड़ता है, पूरा फिलासफर है ।" पृ ७५

सूरदास के व्यक्तित्व की यह एक सार्वजनिक कल्पना (Public image) है । इसका मूल्यांकन हम उसके विचारों और कार्यों की कसौटी के आधार पर क्रमशः करेंगे ।

प्रेमचन्द जी के शब्दों में, "सूरदास एक गरीब अन्धा चमार" है । भारतीय अन्धों की मुख्य विशेषताएँ, जैसे गाने-बजाने में रुचि, हृदय में विशेष अनुराग, अध्यात्म और भक्ति में विशेष प्रेम, वाह्य दृष्टि बन्द और अन्तर्दृष्टि खुली, रंगभूमि के सूरदास में मौजूद हैं । वह क्षीणकाय, दुर्बल और सरल व्यक्ति है । जैसा जीर्ण-शीर्ण उसका शरीर है, वैसे ही उसके वस्त्र और झोपड़ी भी । "उसमें न खाट, न बिस्तर, न बरतन, न भाँड़े । एक कोने में मिट्टी का घड़ा पड़ा था, जिसकी आयु का अनुमान उस पर जमी हुई काई से हो सकता था । चूल्हे के पास हाँडी थी । एक पुराना, चलनी की भाँति छिद्रों से भरा हुआ तवा, एक छोटी सी कठौत और एक लोटा । बस, यही उस घर की सारी सम्पत्ति थी ।" इन परिस्थितियों में रहने वाले सूरदास की आत्मा कितनी विशाल है, इसका अनुमान उन लोगों को नहीं हो सकता, जो दीनहीन भिखारियों को उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं । रंगभूमि के मि० जॉन सेवक उनकी पत्नी, और जिलाधीश मि० क्लार्क ऐसे ही लोग हैं, जिनकी दृष्टि सूरदास के वाहय जीवन रूपी गुदड़ी को भेद कर उसमें छिपे हुए रत्न को

नहीं पहचान पाती। यह लोग उन करोड़ों लोगों के प्रतिनिधि हैं, जो बाहरी चकाचौंध को देख कर मनुष्य का मूल्य पहचान सकते हैं; असली मनुष्य को पहचानने की शक्ति उनमें नहीं होती।

रंगभूमि में प्रेमचन्द जी ने कितने ही प्राणियों को जन्म दिया है परन्तु उनमें से केवल दो ही व्यक्ति ऐसे हैं, जो जीवन के मर्म को पहचानने की चेष्टा करते हैं। उनमें से एक है, सूरदास और दूसरी सोफिया। सूरदास ने जीवन के रहस्य को समझा परन्तु सोफिया अपने चिन्तन और अध्ययन के बावजूद अनिश्चय की स्थिति में पड़ी रह गयी। सूरदास ने जिस रहस्य को पकड़ा, उसका सार उसके गीत में निहित है, जिसे वह प्रायः गाया करता है—

भई क्यों रन से मुँह मोड़ै ?
वीरों का काम है लड़ना, कुछ नाम जगत में करना,
क्यों निज मरजादा छोड़ै ?
भई क्यों रन से मुँह मोड़ै ?
क्यों जीत की तुझको इच्छा, क्यों हार की तुझको चिंता,
क्यों दुख से नाता जोड़ै ?
भई क्यों रन से मुँह मोड़ै ?
तू रंगभूमि में आया, दिखलाने अपनी माया,
क्यों धरम नीति को तोड़ै ?
भई क्यों रन से मुँह मोड़ै ?

संक्षेप में सूरदास ने उस सत्य को पहचान लिया था और उस जीवन दर्शन को समझ लिया था, जिसकी व्याख्या भगवान कृष्ण ने की है। जीवन एक युद्ध है या खेल है। इस संसाररूपी रंगभूमि में हर मनुष्य यही खेल खेलने आया है। सुख-दुख की परवाह न करके, हार-जीत की चिन्ता न करके, हर मनुष्य को यह खेल निस्वार्थ भाव से खेलना चाहिए और यहाँ अपना नाम छोड़ जाना चाहिए। इस जीवन-दर्शन की व्याख्या सूर ने वार्तालाप में कई लोगों से की है। वह अपने अन्तिम समय में राजा महेन्द्रसिंह से कहता

है—"हानि, लाभ, जीवन, जस, अपजस विधि के हाथ है हम तो खाली मैदान में खेलने के लिए बनाये गये हैं। सभी खिलाड़ी मन लगा कर खेलते हैं, सभी चाहते हैं कि हमारी जीत हो, लेकिन जीत एक ही की होती है, तो क्या हारने वाले हिम्म्मत हार जाते हैं ? वे फिर खेलते हैं; फिर हार जाते हैं तो फिर खेलते हैं। कभी-न-कभी उनकी जीत होती ही है।.........हाँ, नियत ठीक रहनी चाहिए।"—पृ० ५०६

सूरदास पश्चात्ताप से पीड़ित जॉन सेवक को समझाते हुए कहता है—"मेरा तो आपने कोई अहित नहीं किया, मुझसे और आपसे दुश्मनी ही कौन सी थी। हम और आप आमने-सामने पालियों में खेले। आपने भरसक जोर लगाया, मैंने भी भरसक जोर लगाया। जिसको जीतना था जीता, जिसको हारना था हारा। खिलाड़ियों में बैर नहीं होता। खेल में रोते तो लड़कों को भी लाज आती है। खेल में चोट लग जाय, चाहे जान निकल जाय; पर बैरभाव नहीं आना चाहिये। मुझे आपसे कोई शिकायत नहीं है।" पृ० ५१२

जीवन को खेल समझ कर खेलने वाला माया-ममत्व ईर्ष्या द्वेष से मुक्त रहता है। सूरदास में यह दुर्गुण कभी भी प्रकट नहीं होते। वह निर्लिप्त और निर्विकार भाव से अपना कर्तव्य पालन करता है। उसने जो बातें सोचीं और कहीं, उन सबका पालन और उन पर आचरण किया है। उदाहरण के लिए, उसके मोहल्ले की स्त्री पर अत्याचार होता है। वह है भैरों ताड़ी-वाले की पत्नी सुभागी। भैरों के हाथों अपमानित सुभागी को सूरदास अपने घर में शरण देता है। वह उसे अपनी बहन समझता है। उसकी रक्षा वह इसलिए करता है कि वह अबला है और यदि वह निराश्रित रहे, तो पुतलीघर वाले मजदूरों के हाथों उसका सतीत्व नष्ट होगा। सुभागी को घर रखने में उसे बदनाम होना पड़ा। उस पर भरों ने मुकदमा भी चलाया। उसे सजा हुई और बाद में जनमत से उसकी विजय हुई। फिर भी न मोहल्ले वालों से और न स्वयं भैरों से उसकी शत्रुता हुई। उसकी मन रूपी चादर पर एक भी धब्बा न आया। भैरों ने उसका धन चुराया, उस पर मुकदमा चलाया और

कलंक लगाया, फिर भी सूरदास को इन्द्रदत्त आदि ने जो धन झोपड़ी बनाने के लिए दिया, उसे उसने भैरों को दे दिया ताकि उसकी दूकान बन जाय। वह भैरों से कहता है—"भैरों? हमारी तुम्हारी दुश्मनी कैसी? मैं तो किसी को अपना दुश्मन नहीं देखता। चार दिन की जिन्दगानी के लिए क्या किसी से दुश्मनी की जाय। तुमने मेरे साथ कोई बुराई नहीं की। तुम्हारी जगह मैं होता और समझता कि तुम मेरी घरवाली को बहकाये हुए हो तो मैं भी वही करता जो तुमने किया है।" पृ० ३६२।

सूर न्याय-पथ से विचलित नहीं होना जानता। कर्तव्य-पालन में जैसी तत्परता उसमें है, वैसी दूसरे व्यक्ति में पाना कठिन है। सुभागी के सम्बन्ध में उसका व्यवहार इन्हीं गुणों का द्योतक है। बदनामी का भय दिखा कर मोहल्लेवाले उसे कर्तव्यच्युत करना चाहते हैं परन्तु सूरदास स्पष्ट कहता है—"मैं परायी स्त्री को अपनी माता, बेटी, बहन समझता हूँ। जिस दिन मेरा मन इतना चंचल हो जायगा, तुम मुझे जीता न देखोगे............भैरों उसे रोज मारता है। बिचारी कभी-कभी मेरे पास आकर बैठ जाती है। मेरा अपराध इतना ही है कि मैं उसे दुत्कार नहीं देता। इसके लिए चाहे कोई बदनाम करे, चाहे जो इलजाम लगाये, मेरा जो धरम था वह मैंने किया। बदनामी के डर से जो आदमी धरम से मुँह फेर ले, वह आदमी नहीं है।"

पृ० ११४

सूरदास के उपर्युक्त विचारों से उसकी दृढ़ता प्रकट होती है। वह अपने निश्चय से अडिग रहता है। बड़ी से बड़ी शक्ति के सामने वह सर नहीं झुकाता। उसकी जमीन पर जॉनसेवक किसी न किसी प्रकार से अधिकार करना चाहते हैं। उसके लिए वे भारी रकम मुआवजे के रूप में देने का वायदा करते हैं। सूरदास इस प्रलोभन के फंदे में नहीं पड़ता। वह जानता है कि कारखाने के बनने से क्या क्या हानियां होंगी। इसलिए वह जमीन बेचने से इनकार कर देता है। अपने व्यक्तिगत स्वार्थ का बलिदान वह सार्वजनिक हित के लिए करता है। ऐसे लोग बिरले होंगे। पांडेपुर के अन्य लोग स्वार्थवश या मूर्खतावश पूंजीवाद के शिकार हो जाते हैं पर सूरदास

इन चालों को पहचानता है और दृढ़तापूर्वक पूंजीवाद का सामना अकेले करने के लिए कटिबद्ध हो जाता है। जॉनसेवक अपनी चतुरता से पांडेपुर वालों को अपनी ओर मिला लेते हैं और पुतलीघर का संघटित विरोध करने की सूरदास की योजना धूल में मिल जाती है। वह अकेले रह जाता है। पाँडेपुर के लोग पुतलीघर के समर्थक बन जाते हैं क्योंकि एक का-दूध बिकेगा; तो दूसरे की बिक्री होगी। सूरदास विरोध करने पर उठा रहता है क्योंकि वह निश्चय कर चुका है वह कहता है—

"तो अब तुम लोग मेरा साथ न दोगे ? मत दो। जिधर न्याय है, उधर किसी की मदद की जरूरत नहीं। मेरी चीज है, बाप-दादों की कमाई है, किसी दूसरे का उस पर अख्तियार नहीं है। अगर जमीन गयी तो उसके साथ मेरी जान भी जायगी।" पृ० १४२

जॉनसेवक प्रभावशाली आदमी थे। वे सरकार को सहायता के लिए राजी कर लेते हैं। महेन्द्रसिंह, अधिकारी और पुलिस सभी उनका साथ देते हैं पर सूरदास अकेले अपनी झोपड़ी की रक्षा के लिए डटा रहता है। उसकी झोपड़ी पर प्रभुसेवक का तभी अधिकार हो पाता है, जब उसे गोली लगती है।

सूर के निष्कपट हृदय और प्रेम का वर्णन करना कठिन है। इन गुणों के बल पर वह हर एक के हृदय पर विजय पाता है। भैरों जैसा कट्टर शत्रु उसका स्थायी मित्र बन जाता है। वह भैरों को ताड़ी का धंधा बंद करने के लिए राजी कर लेता है प्रभुसेवक से वह मजदूरों के लिए मकान बनवाने का आग्रह करता है। मरते समय वह जॉनसेवक से पुतलीघर को उड़ा देने की मिठुआ की योजना बता देता है। वह ताहिर अली के बच्चों के लिए व्यवस्था करने का आग्रह भी कर देता है। सुभागी, मिठुआ और अन्य पड़ोसियों के लिए उनके मन में अगाध प्रेम है। उसके प्रभाव से सबके मन का मैल साफ हो जाता है, सूरदास की रिपोर्ट पर जब बजरंगी और जगधर के पुत्रों को सुभागी के छेड़ने और रात में सूर की झोपड़ी में घुसने पर सजा हो जाती है, तो यह लोग सूर के शत्रु हो जाते हैं, पर सूर की निष्कपटता अंत में अपना

रंग जमाती है। घीसू, की जो सजा पाया था, माँ जमनी कहती है—"बिपत में बैरी पर भी न हँसना चाहिए, वह हमारा बैरी नहीं है। सच बात के पीछे जान दे देगा, चाहे किसी को अच्छा लगे या बुरा। आज हममें से कोई बीमार पड़ जाय, तो देखो रात-रात बैठा रहता है कि नहीं। ऐसे आदमी से क्या वैर।" पृ० ४६१

बजरंगी भी कहता है कि मैं घीसू के कारण सूर का शत्रु हो गया था पर अब जो सोचता हूँ, तो मालूम होता है कि सूरदास ने कोई अन्याय नहीं किया। अंत में सभी पाँडेपुर के निवासी सूर के महत्व को समझने लगते हैं। वे सभी उसकी सेवा करते हैं और उसके शवदाह में भाग लेते हैं। यह सूरदास के प्रेम की विजय है।

निरक्षर और अविद्वान होते हुए भी सूरदास अत्यन्त दूरदर्शी है। वह आगे आनेवाली घटनाओं का अनुमान कर लेता है और जो कुछ वह कहता है, आगे वही घटित होता है। रंगभूमि के अंत में, जब सूरदास अपना खेल पूरा करके रंगमंच से हटनेवाला होता है, तब ठाकुरदीन कहता है—"अन्धा आगम-ज्ञानी था। जानता था कि एक दिन यह पुतलीघर हम लोगों को बनवास देगा, जान तक गंवायी, पर अपनी जमीन न दी। हम लोग इस किरंटे के चकमों में न आकर उसका साथ न छोड़ते, तो साहब लाख सर पटक कर मर जाते, एक न चलती।" (पृ० ५१७) कल-कारखानों से होने वाली हानियों का कितना सुन्दर विवेचन सूरदास राजा महेन्द्रसिंह से करता है—"सरकार बहुत ठीक कहते हैं, मुहल्ले की रौनक जरूर बढ़ जायगी, रोजगारी से लोगों को फायदा भी खूब होगा। लेकिन जहाँ यह रौनक बढ़ेगी, वहाँ ताड़ी-शराब का भी तो परचार बढ़ जायगा, बस्तियाँ तो आकर बस जायँगी, परदेसी आदमी हमारी बहू-बेटियों को घूरेंगे, कितना अधरम होगा। दिहात के किसान अपना काम छोड़कर मजूरी के लालच से दौड़ेंगे, यहाँ बुरी-बुरी बातें सीखेंगे और अपने बुरे आचरन अपने गाँव में फैलावेंगे। दिहातों की लड़कियाँ-बहुयें मजदूरी करने जायेंगी और यहाँ पैसे के लोभ में अपना धरम बिगाड़ेंगी। पृ० ७७

सूरदास की यह भविष्यवाणी सही उतरती है। सिगरेट का कारखाना

चालू होते ही, मजदूर आ बसते हैं। पांडेपुर को शहर उदरस्थ कर जाता है। शराब और ताड़ी का चलन बढ़ता है। जुआ और व्यभिचार पनपने लगते हैं। जगधर, और बजरंगी के पुत्र और स्वयं सूरदास का मिठुआ पतन के गर्त में गिर जाते हैं। वे सुभागी को छेड़ते हैं जिसके लिए दो को जेल की हवा खानी पड़ती है। मजदूर अन्य स्त्रियों को छेड़ते हैं और सूर के मना करने पर उसे चोट पहुँचा देते हैं। इस प्रकार सूरदास का कथन आगे सही उतरता है।

क्षमा करने में सूर-सा व्यक्ति शायद ही देखने में आये। भैरो उसे नाना प्रकार के कष्ट देता है परन्तु वह उसे हर बार क्षमा कर देता है। जॉनसेवक को वह क्षमा प्रदान करता है मिठुआ ने आड़े वक्त उसका साथ छोड़ दिया परन्तु उसके लिए भी उसके मन में क्षमा भाव वर्तमान है। शत्रु से वह बदला नहीं लेता। गांधी जी का यह कथन कि पाप से घृणा करो, पापी से नहीं सूर पर पूर्ण तौर से घटित होता है। जॉनसेवक का गोदाम जलाने के लिए उत्तेजित भीड़ तैयार है। उससे सूरदास का बदला पूरा हो जाता परन्तु वह सबको समझा बुझाकर शांत कर देता है। उसकी झोपड़ी गिराने के लिए जब पुलिस तैयार होती है और जनता उत्तेजित हो जाती है, तो वह जनता को हिंसा से विमुख करता है और क्लार्क की गोली का शिकार बन जाता है। उस समय सूरदास के मुख पर वही क्षमा का भाव था, जो सूली पर चढ़े हुए ईसा के मुख पर था या गोडसे द्वारा वध किये गये गांधी के मुख पर था। "सूरदास के कंधे से रक्त प्रवाहित हो रहा था, अंग शिथिल पड़ गये थे, मुख विवर्ण हो रहा था पर आँखें खुली हुई थीं और उनमें से पूर्ण शांति, संतोष और धैर्य की ज्योति निकल रही थी, क्षमा थी, क्रोध या भय का नाम न था।" पृ० ४९७

सूरदास के मन में लोभ लेशमात्र न था। यदि वह चाहता तो जमीन बेच कर पाँच हजार आसानी से बटोर लेता और पांडेपुर गाँव का सबसे धनी व्यक्ति बन जाता पर उसने जनहित की भावना से जमीन नहीं वेची। उसने जो कुछ मुआवजा पाया भी, उसे उसने सेवक-दल के लिए इंद्रदत्त को सौंप दिया। उसकी जन्म भर की कमाई, पाँच सौ, रुपये भैरों चुरा ले गया और सुभागी वे रुपये फिर उसे वापस ला देती है परन्तु सूरदास वे रुपये भैरों को

जाकर सौंप देता है। यही नहीं, इन्द्रदत्त ने जनता से चंदा करके जो भी रुपया एकत्र किया था, उसे वह भैरों को दूकान बनाने के लिए दे देता है। अपरिग्रह का यह नमूना शायद ही कहीं देखने को मिले। इतना होते हुए भी सूरदास नाम नहीं चाहता। वह उन दानियों से कितना श्रेष्ट हैं, जो सौ-पचास रुपये देकर अखबारों में अपना नाम छपा देखना चाहते हैं। इन्द्रदत्त ने ठीक ही कहा है—"कितना भोला आदमी है। त्याग और सेवा की सदेह मूर्ति होने पर भी गरूर छू तक नहीं गया, अपने सत्कार्य का कुछ मूल्य नहीं समझता। परोपकार इसके लिए इच्छित कर्म नहीं रहा, इसके चरित्र में मिल गया।" पृ० ३६६

सूरदास के उपर्युक्त गुणों को देखते हुए, उसके सम्बन्ध में दिये गये प्रेमचन्द्र जी के कथन को पूर्णतया सटीक समझा जाना चाहिए। उपन्यासकार का अन्तिम विश्लेषण सूर के चरित्र का सच्चा चित्र है। देखिए :—

"सबके सब इस खिलाड़ी को एक आँख देखना चाहते थे, जिसकी हार में भी जीत का गौरव था। कोई कहता था सिद्ध था, कोई कहता था, बली था, कोई देवता कहता था, पर वह यथार्थ में खिलाड़ी था—वह खिलाड़ी, जिनके माथे पर कभी मैल नहीं आया, जिसने कभी हिम्मत नहीं हारी, जिसने कभी कदम पीछे नहीं हटाये। जीता, तो प्रसन्नचित रहा, हारा तो प्रसन्नचित रहा, हारा तो जीतने वाले से कीना नहीं रखा, जीता तो हारने वाले पर तालियाँ नहीं बजायी। जिसने खेल में सदैव नीति का पालन किया, कभी धाँधली नहीं की, कभी द्वंद्वी पर छिप कर चोट नहीं की। भिखारी था, अपंग था, दीन था, अंधा था, कभी भर पेट दाना नहीं नसीब हुआ, कभी तन पर वस्त्र पहनने को नहीं मिला; पर हृदय धैर्य और क्षमा, सत्य और साहस का अगाध भांडार था। देह पर मांस न था, पर हृदय में विनय, शील और सहानुभूति भरी हुई थी।

"हाँ, वह साधु न था, महात्मा न था, देवता न था, फरिश्ता न था। एक क्षुद्र शक्तिहीन प्राणी था, चिंताओं और बाधाओं से घिरा हुआ, जिसमें अवगुण भी थे और गुण भी। गुण कम थे, अवगुण बहुत। क्रोध, मोह, लोभ,

अहंकार, ये सभी दुर्गुण उसके चरित्र में भरे हुये थे, गुण केवल एक था। किन्तु ये सभी दुर्गुण उस पर गुण के सम्पर्क से नमक की खान में जाकर नमक हो जाने वाली वस्तुओं की भाँति देवगुणों का रूप धारण कर लेते थे—क्रोध सत्क्रोध हो जाता था, लोभ सदनुराग, मोह, सदुत्साह के रूप में प्रकट होता था और अहंकार आत्माभिमान के वेष में ! और वह गुण क्या था ? न्याय-प्रेम, सत्य-भक्ति, परोपकार, दर्द या उसका जो नाम चाहे रख लीजिये। अन्याय देखकर उससे न रहा जाता था, अनीति उसके लिए असह्य थी।"

पृ० ५२२

(२) **विनय सिंह—**

सूरदास के बाद रंगभूमि का दूसरा प्रभावशाली पात्र विनयसिंह है। वह बनारस के प्रसिद्ध रईस कुँवर भरतसिंह का इकलौता पुत्र है। उसके चरित्र की प्रमुख विशेषता यह है कि उसकी माता ने उसे हर प्रकार से आदर्श नवयुवक बनाने की चेष्टा की है, परन्तु उसका आदर्श-प्रेम ऊपर से लादी हुई वस्तु है। जैसा कि प्रायः माता-पिता अपनी सन्तान में दिव्य गुण देखना चाहते हैं, रानी जान्हवी ने भी विनय को देव तुल्य बनाना चाहा परन्तु बीजरूप में वे गुण उसमें पाये नहीं जाते। यौवन काल में जितने त्याग की कल्पना उसकी माँ ने की है, उसकी पूर्ति विनय कर नहीं पाया है। यह उसकी कमजोरी भी न मानी जानी चाहिए क्योंकि यौवन-काल में कोई भी नवयुवक विनय के समान ही आचरण करेगा।

वास्तव में विनय का चरित्र कुछ विशेष परिस्थितियों की देन है। जब मनुष्य को बाल्यकाल से ही दमन प्रधान वातावरण में रक्खा जाता है, तो यौवनकाल में उसकी प्रतिक्रिया होती है। साधु-संयमी व्यक्ति भी वासनाओं का शिकार हो जाता है क्योंकि प्रारम्भिक संयम केवल वाह्य होता है। जिस प्रकार विनय का लालन-पालन हुआ और जो भी महत्वाकांक्षा जान्हवी ने उसके सम्बन्ध में की, उसका वर्णन रानी साहब के मुँह से ही सुनिये—

"मैंने बाल्यावस्था से ही उसे कठिनाइयों का अभ्यास कराना शुरू किया। न कभी गद्दों पर सुलाती, न कभी महरियों और दाइयों की गोद में

जाने देती, न कभी मेवे खाने को देती। दस वर्ष की अवस्था तक केवल धार्मिक कथाओं द्वारा उसकी शिक्षा हुई।........विनय पृथ्वी के अधिकांश प्रान्तों का पर्यटन कर चुका है। संस्कृत और भारतीय भाषाओं के अतिरिक्त योरोप की प्रधान भाषाओं का भी उसे अच्छा ज्ञान है। संगीत का उसे इतना अभ्यास है कि अच्छे, अच्छे कलावन्त उसके सामने मुँह खोलने का साहस नहीं कर सकते। नित्य कम्बल बिछाकर जमीन पर सोता है और कम्बल ही ओढ़ता है। पैदल चलने में कई बार इनाम पा चुका है। जलपान के लिए मुट्ठी भर चने, भोजन के लिए रोटी और साग, बस इसके सिवा संसार के सभी भोज्य पदार्थ उसके लिए वर्जित से हैं। बेटी, मैं तुझसे कहाँ तक कहूँ, पूरा त्यागी है।...........अगर कोई ऐसा अवसर आ पड़े कि जाति रक्षा के लिए उसे प्राण भी देना पड़ें, तो मुझे जरा भी शोक न होगा। शोक तब होगा जब मैं उसे ऐश्वर्य के सामने सिर झुकाते या कर्तव्य के क्षेत्र से हटते देखूंगी। ईश्वर न करे, मैं वह दिन देखने के लिए जीवित रहूँ।"

पृ० ८७

विनय के जिन गुणों की चर्चा रानी जान्हवी करती हैं, उनमें से कुछ को क्रियात्मक रूप से विनय के व्यवहार में प्रकट होते हुये हम नहीं देखते। उदाहरण के लिये उनके संगीत-कौशल से दर्शन कहीं भी उपन्यास भर में नहीं मिलते। उनके भाषा-ज्ञान का परिचय भी कहीं नहीं मिलता। हाँ, उनकी काव्य-मर्मज्ञता का प्रमाण अवश्य दो-एक प्रसंगों में मिलता है। प्रभु सेवक उनकी काव्य मर्मज्ञता पर मुग्ध हैं और वह अपनी रचनाएँ उन्हीं को सुनाता है। वह सोफी से भी बार-बार विनय के इस गुण का उल्लेख करता है। एक स्थान पर (पृ० ९०) वे प्रभु सेवक की प्रेम प्रधान कविता की आलोचना करते हैं और राष्ट्रीय भावों के प्रतिकूल बताकर असामयिक ठहराते हैं। जान्हवी द्वारा वर्णित कुछ गुणों का प्रमाण उनके व्यवहार में दृष्टिगोचर होता है। उदाहरण के लिये उनका दैनिक जीवन कितना संयमपूर्ण है :—

"कमरे में कोई सामान न था। केवल एक कंबल बिछा हुआ था और जमीन ही पर दस-पाँच पुस्तकें रखी हुई थीं। न पंखा, न ख़स की टट्टी, न

परदे, न तसवीरें। पछुवा सीधे कमरे में आती हैं। कमरे की दीवारें जलते तवे की भाँति तप रही थीं।" पृ० ८८

उनके पर्यटन और पैदल चलने की शक्ति के दर्शन हमें उस समय होते हैं, जब वे सोफी की खोज में भटकते फिरते हैं और सोफी द्वारा तिरस्कृत होने पर जब वे उदयपुर रातों-रात वापस लौटते हैं। नायकराम तो प्राय: उनके साथ दौड़ते नजर आते हैं। उनके सेवा भाव, कर्त्तव्य में तत्परता और लगन आदि का प्रमाण हमें तब मिलता है, जब वे अरावली की पहाड़ियों में प्रवेश करते हे। चिंता और चित्र की अस्थिरता की दशा में भी वे यथासाध्य अपना कर्त्तव्य पालन करते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि जसवंतनगर की रियासत में वे अत्यन्त लोकप्रिय हो जाते हैं। देखिए—

"जसवंतनगर के प्रांत में एक बच्चा भी नहीं है, जो उन्हें न पहचानता हो। देहात के लोग उनके इतने भक्त हो गये हैं कि ज्यों ही वह किसी गांव में जा पहुँचते हैं, सारा गाँव उनके दर्शनों के लिये एकत्र हो जाता है। उन्होंने उन्हें अपनी अपनी मदद आप करना सिखाया है।..........अन्य पशुओं को भगाने के लिये, लोग पुलिस के यहाँ नहीं दौड़े जाते, स्वयं संगठित होकर उन्हें भगाते हैं, जरा-जरा सी बात पर अदालतों के द्वार नहीं खटखटाये जाते, पंचायतों में समझौता कर लेते हैं; जहाँ कभी कुएँ न थे वहाँ अब पक्के कुएँ तैयार हो गये हैं; सफाई की ओर भी लोग ध्यान देने लगे हैं, दरवाजों पर कूड़े-करकट के ढेर नहीं जमा किये जाते।.....

"विनय को चिकित्सा का भी अच्छा ज्ञान है। उनके हाथों सैकड़ों रोगी आरोग्य लाभ कर चुके हैं। कितने ही घर, जो परस्पर कलह से बिगड़ गये थे आबाद हो गये हैं।.....विनय को रूखी रोटियों और वृक्ष की छाया के अतिरिक्त और किसी वस्तु से प्रयोजन नहीं। इस त्याग और विरक्ति ने उन्हें उस प्रांत में सर्वमान्य और सर्वप्रिय बना दिया है।.....विनय के पाँव में बेवाय फटी थीं; चलने में कष्ट होता था। आदि" पृ० १७९–१८०

यह है विनय के चरित्र का उज्ज्वल पक्ष। सम्पूर्ण उपन्यास में उनका यह चरित्र इसी प्रकार चमकता नहीं रहता। उनमें कुछ ऐसी कमजोरियाँ हैं

जिन पर उनका संयमपूर्ण जीवन पर्दा नहीं डाल पाता। धीरे-धीरे वे पाठकों के आगे प्रकट हो जाती हैं। उनकी सबसे बड़ी कमजोरी है, चित्त की चंचलता। उनका संयम योगियों का दृढ़ संयम नहीं है, जो किसी भी दशा में डिगता नहीं। यह संयम आत्म दमन का परिणाम है। मनुष्य की सहज वृत्तियाँ जब धर्म, और उपदेशों के प्रभाव से दब जाती हैं, तो उसे हम संयम कहने लगते हैं पर वास्तव में यह संयम क्षणिक होता है और प्रलोभन के एक प्रहार से ध्वस्त हो जाता है। इस तथ्य का बड़ा स्वाभाविक चित्र भगवती चरण वर्मा की चित्रलेखा के एक पात्र कुमार गिरि योगी के चरित्र में देखने को मिलता है। चित्रलेखा के सौन्दर्य ने उसकी तपस्या को नष्ट कर दिया और वह वासना का कीट बन गया। सोफिया के आकर्षण से विनय की ऐसी ही दशा हुई परन्तु प्रेमचन्द जी ने विनय को पशुवत् आचरण करने से बचा लिया है और उसको मृत्यु के द्वार में ढकेल कर एक बार फिर पूज्य बना दिया है।

सोफिया के प्रथम दर्शन से ही विनय का चित्त चंचल हो उठता है। उनके हृदय में, जो देशानुराग और सेवा की तरंगें उठा करती हैं। वे शान्त हो जाती हैं। वे सोफी की ओर बड़ी तेजी से दौड़ने लगते हैं। उनका हृदय भीषण अन्तर्द्वन्द्व से पीड़ित हो जाता है। एक ओर उनका आदर्श है और दूसरी ओर उनका प्रेम। इस भीषण संघर्ष से उनका तेज नष्ट हो जाता है। सोफिया उनके घर रहने लगती है और वे उससे बचने की चेष्टा करते हैं ताकि यह आग आगे बढ़ने न पाये। यह बात उनकी बहन इन्दु की समझ में आ जाती है। वह उनसे कहती है—"तुम अपने को धोखा दे रहे हो।......... क्या तुम समझते हो कि तुम्हारा कई कई दिनों तक घर में न आना, नित्य सेवा-समिति के कामों में व्यस्त रहना, सिर सोफिया की ओर आँख उठाकर न देखना, उसके साये से भागना, उस अन्तर्द्वन्द्व को छिपा सकता है, जो तुम्हारे हृदयतल में विकराल रूप से छिड़ा हुआ है?" पृ० ८२-८३

सोफिया के प्रति यह आकर्षण भोग की लालसा में बदल जाता है। उनकी माता उन्हें राजपूताने भेजना चाहती हैं पर वे अपने प्रस्थान को टालते

रहते हैं। वे निर्णय करते हैं, "मैं दूर देश में बैठा हुआ इस विद्या, विवेक और पवित्रता की देवी की उपासना किया करूँगा। मैं.........सच कहता हूँ, मेरे प्रेम में वासना का लेश भी नहीं है। मेरे जीवन को सार्थक बनाने के लिए यह अनुराग काफी है।" पृ० ९२ में अपने प्रेम को वासना रहित रखना चाहते हैं पर ऐसा हो नहीं पाता। वे हर प्रकार सोफी के निकट रहने की चेष्टा करते हैं। जहाँ वह बाग में बैठती, उससे कुछ दूर हट कर स्वयं आ बैठते, कुछ लिखते पढ़ते, कुत्ते से खेलते या किसी मित्र से बातें करते। दोनों एक दूसरे की ओर देख लेते। एक बार रानी जान्हवी की उपस्थिति में उनकी प्रेमभरी नजरें सोफी के मुख पर पड़ती हैं और रहस्य प्रकट हो जाता है। उन्हें राजपूताने जाने की आज्ञा मिलती है। अरावली की पहाड़ियों में भी सोफी से अलग रह कर उनके चित्त को शान्ति नहीं मिलती। उनकी दशा देखिए—

".........वह चिन्ता की उस दशा में है, जब आँखें खुली रहती हैं और कुछ नहीं सूझता, कान खुले रहते हैं और कुछ सुनायी नहीं देता; वाह्य चेतना शून्य हो गयी है। उनका मुख निस्तेज हो गया है, शरीर इतना दुर्बल है कि पसलियों की एक-एक हड्डी गिनी जा सकती है।" पृ० १७९

विनय का मानसिक जीवन भीषण उथल पुथल से भरा है। "उनके अन्तस्तल में निरन्तर भीषण संग्राम होता रहता है। सेवा-मार्ग उनका ध्येय था। प्रेम के काँटे उसमें बाधक हो रहे थे। उन्हें अपने मार्ग से हटाने के लिए वह सदैव यत्न करते रहते हैं। कभी-कभी वह आतमग्लानि से विकल होकर सोचते हैं, सोफी ने मुझे उस अग्निकुंड से निकाला ही क्यों। बाहर की आग केवल देह का नाश करती है, जो स्वयं नश्वर है, भीतर की आग अनन्त आत्मा का सर्वनाश कर देती है।" अन्त में विनय प्रेम के अध्यात्मिक आदर्श पर स्थिर न रह सके। वे एक प्रकार से इतना प्रेमान्ध हो जाते हैं, कि उदयपुर में सोफी की खोज मे मारे-मारे फिरते हैं। जिस प्रजा के लिए वे अधिकारियों से संघर्ष करते रहते हैं, उसी पर वे अत्याचार करवाते हैं। कितने ही घर उजड़ जाते हैं। माताएँ उन्हें कोसती हैं और जनता उनके

नाश के लिए प्रार्थना करती है। उनका पतन इस सीमा तक हो जाता है कि वे अपने इन दुष्कृत्यों को उचित बताने लगते हैं। सोफिया तक पहुँचने के लिए वे इन्द्रदत्त के पैर तक पकड़ लेते हैं। उनकी दशा मजनूँ से मिलती जुलती है। उनकी दशा का विश्लेषण सोफिया इस प्रकार करती है—

"काल गति के एक पलटे ने ही तुम्हारा यथार्थ रूप प्रकट कर दिया। ....तुम अपने आदर्श से उसी समय पतित हुए, जब तुमने विद्रोह को शान्त करने के लिए शान्त उपायों की अपेक्षा क्रूरता और दमन से काम लेना उपयुक्त समझा। शैतान ने पहली बार तुम पर वार किया और तुम फिर न सँभले, गिरते ही चले गये। ठोकरों पर ठोकरें खाते-खाते अब तुम्हारा इतना पतन हो गया है कि तुम में सज्जनता, विवेक और पुरुषार्थ का लेशांश भी शेष नहीं रहा।" पृ० ३११

विनय अपने प्रेम को आध्यात्मिक बनाने में सफल न हो सके। वे सोफी के शरीर पर अधिकार पाने का हर सम्भव प्रयत्न करते हैं। एक भील स्त्री द्वारा बताये गये तान्त्रिक उपाय का प्रयोग करके वे सोफी को अपने वश में करते हैं यद्यपि ऐसा करना उचित न था। प्रेम की दशा में वे इन उपायों पर अन्ध विश्वास करने लगते हैं। वे प्रेम के वासनामय रूप तक सीमित हैं और स्वयं सोफी से कहते हैं..........."अगर मैं देवता होता, तो तुम्हारी प्रेमोपासना से सन्तुष्ट हो जाता; लेकिन मैं भी तो इच्छाओं का दास क्षुद्र मनुष्य हूँ। मैंने जो कुछ पाया है, उससे सन्तुष्ट नहीं हूँ। मैं और चाहता हूँ, सब चाहता हूँ। क्या अब भी तुम मेरा आशय नहीं समझीं? मैं पक्षी को अपनी मुंडेर पर बैठे देखकर सन्तुष्ट नहीं, उसे अपने पिंजड़े में जाते देखना चाहता हूँ। क्या और भी स्पष्ट रूप से कहूँ? मैं सर्व भोगी हूँ, केवल सुगन्ध से मेरी तृप्ति नहीं होती।" पृ० ४२३।

विनय के चरित्र का सौन्दर्य उनके हृदय का अन्तर्द्वन्द्व है। यह मानना पड़ेगा कि उनमें मानवोचित कमजोरी है, प्रेम-पिपासा है और भोगेच्छा है पर विनय अपनी कमजोरी के प्रति जागरूक हैं, वे उस कमजोरी को दूर

करने के लिए प्रयत्नशील हैं और अपने पतन पर लज्जित हैं। कमजोरियों से ऊपर उठने की दृढ़ इच्छा उनमें सदा सजग रहती है। उनके पतन में भी त्याग के कण वर्तमान हैं। जब इन्दु उन्हें सोफिया के प्रति आकर्षण के विरुद्ध सचेत करती है, तो वे कहते हैं:—

"......अब मैं सचेत नहीं हो सकता। इन चार-पाँच महीनों में मैंने जो मानसिक ताप सहन किया है, उसे मेरा हृदय ही जानता है। मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी है, मैं आँखें खोल कर गड़े में गिर रहा हूँ। ...... कोई बाधा कोई कठिनाई कोई शंका मुझे सर्वनाश से नहीं बचा सकती। हाँ, मैं इसका विश्वास दिलाता हूँ कि इस आग की एक चिनगारी या एक लपट भी सोफी तक न पहुँचेगी। मेरा सारा शरीर भस्म हो जाय हड्डियाँ तक राख हो जाँय; पर सोफी को उस ज्वाला की झलक तक न दिखायी देगी।......बस, अब मेरे लिए मुँह में कालिख लगा कर कहीं डूब मरने के सिवा और कोई उपाय नहीं है।"

पृ० ८३

प्रभु सेवक से वे सोफिया के संबंध में कहते हैं ...."प्रभु ! मुझे स्वप्न में भी यह आशा न थी कि मैं इतनी आसानी से लालसा का दास हो जाऊँगा। मैं भी मार्ग से विचलित होगया, मेरा संयम कपटी मित्र की भाँति परीक्षा के पहले ही अवसर पर मेरा साथ छोड़ गया। मैं भली भाँति जानता हूँ कि मैं आकाश के तारे तोड़ने जा रहा हूँ ...... वह फल खाने जा रहा हूँ जो मेरे लिए वर्जित है। ...... अपनी पूज्य माता के हृदय पर कुठाराघात कर रहा हूँ, अपनी मर्यादा की नौका को कलंक के सागर में डुबा रहा हूँ, अपनी महत्वाकांक्षाओं को विसर्जित कर रहा हूँ ...... आदि।" पृ० ९२

सोफी विनय को जेल से भगाने का प्रबन्ध कर लेती है और उस पर अपना प्रेम प्रकट करती है। उस समय विनय उसके आगे अपने हृदय-दौर्बल्य को स्पष्ट कर देता है——"......सोफी, तुम मेरा यथार्थ रूप नहीं देख रही हो। कहीं उस पर निगाह पड़ जाय, तो तुम मेरी तरफ ताकना भी पसंन्द न करोगी। तुम मेरे पैरों की जंजीर चाहे न बन सको पर मेरी दबी हुई आग को जगाने वाली हवा अवश्य बन जाओगी।.........एक बार मैं

इस बन्धन से मुक्त हुआ, तो वासना मुझे इतने वेग से बहा ले जायगी कि फिर शायद मेरे अस्तित्व का पता ही न चले।.....मैं यथार्थ में बहुत दुर्बल-चरित्र विषयसेवी प्राणी हूँ.....आदि।" पृ० २८६-२८७।

विनय को अपनी निर्बलता का ज्ञान है। इसीलिए वे परिस्थितियों से ऊपर उठ सकने में समर्थ हो जाते हैं। सोफिया द्वारा अपमानित होने पर उनके मन में प्रतिहिंसा का भाव नहीं पैदा होता। वे अपने अत्याचारों का प्रतिकार करने के लिए सरदार नीलकण्ठ और राजा साहब से पास जाते हैं और दमन बन्द करने का आग्रह करते हैं। सोफी के प्रति उनका प्रेम कभी भी नष्ट नहीं होता। पांडेपुर में जब जनता नियन्त्रण से बाहर होने लगती है और लोग उन पर व्यंग्यवर्षा करते हैं, तो वे उन्हें रोकने के लिए पिस्तौल से अपने ऊपर वार करके शहीद हो जाते हैं।

प्रेम के उच्चादर्शों से विनय भले ही च्युत हुए हों परन्तु उन्होंने कहीं भी पशुवत् आचरण नहीं किया। वासना मनुष्य में स्वाभाविक तौर से होती ही है, विनय में भी थी पर उन्होंने कभी भी सोफिया के शरीर पर बलपूर्वक अधिकार करने की चेष्टा नहीं की। अन्य क्षेत्रों में वे अडिग रहे। उनमें गाँधी की विचार धारा की प्रेरणा काम कर रही थी। जनहित के लिए कारागार के कष्ट वे सहते रहे पर एक बार भी उनका मन विचलित नहीं हुआ। वीरपाल सिंह एक बार सेंध लगाकर उन्हें बचाना चाहता है, सोफिया उन्हें जेल से भगाने का पूरा प्रबन्ध कर देती है पर वे चोरों की तरह निकल भागने से इनकार कर देते हैं। इतना तो अवश्य है कि उनमें कुछ उतावलापन है जो युवावस्था में प्रायः हर एक व्यक्ति में पाया जाता है। यही कारण है कि वे सोफी के प्रति शंकालु हो उठते हैं, वीरपाल सिंह पर गोली चला देते हैं और भावुकतावश स्वयं भी आत्महत्या कर लेते हैं यद्यपि इसे आत्महत्या न कहकर शहीद होना कहा जा सकता है। विनय का चरित्र ऐसा है कि पाठक के हृदय पर उसकी महानता अंकित नहीं करता पर हमें उन पर अश्रद्धा नहीं होती। वे क्षणभर के लिए भी पाठक की सहानुभूति नहीं खोते। हम जानते हैं कि उनकी निर्बलता में विवशता है। इतनी बड़ी रियासत को ठुकरा देना, सुखों

से मुँह मोड़ जाना, क्या साधारण बात है। उनकी मृत्यु के बाद लोग ठीक सोचते हैं—

"हाय ! कितनी वीर आत्मा, कितना धैर्यशील, कितना गम्भीर, कितना उन्नत हृदय, कितना लज्जाशील, कितना आत्माभिमानी, दीनों का कितना सच्चा सेवक और न्याय का कितना सच्चा उपासक था जिसने अपनी रियासत को तृणवत् समझा और हम पामरों ने उसकी हत्या कर डाली, उसे न पहचाना।" पृ० ४९९

३. कुंवर भरतसिंह :—

विनय के पिता कुँवर भरतसिंह काशी के माने जाने रईस हैं। उनके पास करोड़ों की सम्पत्ति है। उनके राजभवन का चित्र देखने योग्य है। "भवन क्या था, आमोद-प्रमोद, विलास, रसज्ञता और वैभव का क्रीड़ा-स्थल था। संगमरमर के फर्श पर बहुमूल्य कालीन बिछे थे। चलते समय उनमें पैर धंस जाते थे। दीवारों पर मनोहर पच्चीकारी, कमरों की दीवारों में बड़े-बड़े आदमकद आईने, गुलकारी इतनी सुन्दर कि आँखें मुग्ध हो जायें, शीशे की अमूल्य अलभ्य वस्तुएँ, प्राचीन चित्रकारों की विभूतियाँ, चीनी के विलक्षण गुलदान, जापान, चीन, यूनान, और ईरान की कला निपुणता के उत्तम नमूने, सोने के गमले, लखनऊ की बोलती हुई मूर्तियाँ, इटाली के बने हुए हाथी दाँत के पलंग, लकड़ी के नफीस ताक, दीवार गीरें, किश्तियाँ, आँखों को लुभाने वाली, पिंजड़ों में चहकती हुई, भाँति-भाँति की चिड़ियाँ, आँगन में संगमरमर का हौज और उनके किनारे संगमरमर की अप्सराएँ सभी दर्शनीय हैं।" कुंवर साहब का यौवन काल बड़ी रंगीनियों में बीता है। इस सम्बन्ध में उनकी पत्नी रानी जाह्नवी कहती हैं :—

"आज के तीन साल पहले इनका-सा विलासी सारे नगर में न था। दिन में दो बार हजामत बमती थी। दरजनों धोबी और दरजी कपड़े धोने और सीने के लिए नौकर थे। पेरिस से एक कुशल धोबी कपड़े सँवारने के लिए आया था। कश्मीर और इटली के बाबरची खाना पकाते थे। तसवीरों का इतना व्यसन था कि कई बार अच्छे चित्र लेने के लिए इटली तक की यात्रा की।

............सैर करने निकलते, तो सशस्त्र सवारों का एक दल साथ चलता। शिकार खेलने की लत थी, महीनों शिकार खेलते रहते। कभी कश्मीर, कभी बीकानेर, कभी नैपाल केवल शिकार खेलने जाते थे।" पृ० ८५

भरत सिंह का मानसिक कायाकल्प उनकी वृद्धावस्था में होता है। त्यागी पुत्र के पिता होने के नाते वे अपने जीवन में परिवर्तन कर लेते हैं। विलास पूर्ण जीवन का त्याग करके, वे एक सेवक दल जैसी संस्था का निर्माण करते हैं। यह सब उनके हृदय परिवर्तन का इतना अच्छा प्रमाण नहीं है, जितना उनके पुत्र-प्रेम का। यह सब वे विनय की तुष्टि के लिए करते हैं। यही कारण है कि विनय के मरते ही, वे अपने पुराने मार्ग पर लौट जाते हैं। धन प्रेम से वे कभी विमुख नहीं होते। वे तम्बाकू की खेती से होने वाली हानियों से परिचित हैं परन्तु लोभवश वे जॉनसेवक की कम्पनी के हिस्से खरीद लेते हैं। उन्हें सांसारिक जीवन का ज्ञान नहीं, इसलिए जॉनसेवक जैसे चतुर व्यवसायी के फंदे में फँस जाते हैं।

कुँवर भरत सिंह उन लोगों का प्रतिनिधित्व करते हैं जो महाकवि अकबर के शब्दों में, कौम के रहबर बने रहना चाहते हैं परन्तु हुक्काम के साथ डिनर खाते हैं। उनकी लीडरी भी आराम की है यह बात दूसरी है कि भरत सिंह में मानवोचित गुण हैं। "इसमें संदेह नहीं कि कुँवर सहब निर्भीक पुरुष थे, जाति प्रेम में पगे हुए, स्वच्छन्द, निस्पृह और विचारशील। उनका जीवन इतना सरल और सात्विक था कि उन्हें लोग त्यागमूर्ति कहा करते थे। उनको भोग-विलास के लिए किसी बड़ी जायदाद की बिल्कुल जरूरत न थी। किन्तु प्रत्यक्ष-रूप से अधिकारियों के कोपभाजन बनने के लिए तैयार न थे। अपना सर्वस्व जातिहित के लिए दे सकते थे, किन्तु इस तरह कि हित का साधन उनके हाथ में रहे। इनमें वह आत्मसमर्पण की क्षमता न थी, जो निष्काम और निस्वार्थ भाव से अपने को मिटा देती है। उन्हें विश्वास था कि हम आड़ में रह कर उससे कहीं अधिक उपयोगी बन सकते हैं जितने सामने आकर नहीं।" पृ० ४४९

वे अधिकारियों की खुशामद तो न करते थे पर उनके साथ संघर्ष करते

से बचते भी थे। वे वास्तव में गाँधीवादी युग के उन पूँजीवादी देशभक्तों में से हैं, जो देशहित के लिए अप्रत्यक्षरूप से धन दान करते थे परन्तु सरकार की कोप दृष्टि से उतरे थे। वे अपनी जायदाद की रक्षा हर प्रकार से करना चाहते हैं। इसके लिए वे विनय की शादी सोफिया से करने को राजी हो जाते हैं। इससे लाभ यह होता कि विनय की सन्तान को उनकी पैतृक सम्पति में हक मिल जाता और सरकार उसे जब्त न कर पाती। कोई उपाय न देख कर उन्होंने सम्पत्ति को कोर्ट आफ वार्डस् को सौंप दिया।

भरत सिंह का चरित्र पुत्र-प्रेम के कारण एक विशेष महत्व रखता है। विनय के कारण उन्होंने अपने जीवन की धारा बदल दी। वे विलासी से सन्यासी बन गये। जब विनय उदयपुर जाकर जेल में फँस जाता है, तो इन्हें घोर कष्ट होता है। वे इस समस्या को हल करने के लिए एक बैठक करते हैं। विनय का कोई अनिष्ट न हो जाय, इसके लिए वे नायकराम को काफी धन देकर उदयपुर भेजते हैं। विनय की मृत्यु का आघात इनके लिए इतना असह्य होता है कि वे त्यागमय जीवन के प्रति सारी आस्था खोकर अपने पुराने मार्ग पर चल पड़ते हैं। पिता का वात्सल्य भरत सिंह के व्यक्तित्व में देख कर पाठक उनसे सहानुभूति करता है, घृणा नहीं।

४ राजा महेन्द्रसिंह :—

चतारी के राजा महेन्द्र सिंह, कुँवर भरत सिंह के दामाद और विनय के बहनोई हैं। विपुल सम्पत्ति के स्वामी होते हुए भी, वे जन-सेवा में रह-रह कर जीवन व्यतीत करते हैं। उनके चरित्र के सम्बन्ध में प्रेम चन्द जी की टिप्पणी विचारणीय है :—

"चतारी के राजा महेन्द्रकुमार सिंह यौवनावस्था में ही अपनी कार्यदक्षता और वंश प्रतिष्ठा के कारण म्यूनिसिपैलिटी के प्रधान निर्वाचित हो गये थे। विचारशीलता उनके चरित्र का दिव्य गुण था। रईसों की विलास लोलुपता और सम्मान प्रेम का उनके स्वभाव में लेश भी न था। बहुत ही सादे वस्त्र पहनते, ठाट बाट से घृणा थी और व्यसन तो उन्हें छू तक न गया था। घुड़दौड़, सिनेमा, थिएटर, रागरंग, सैर और शिकार शतरंज या ताशबाजी से

उन्हें कोई प्रयोजन न था। हाँ अगर कुछ प्रेम था, तो उद्यान से।............ बस शेष समय नगर के निरीक्षण और नगर संस्था के संचालन में व्यतीत करते थे। राज्यधिकारियों से वे विला जरूरत बहुत कम मिलते थे। उनके प्रधानत्व में शहर के केवल उन्हीं भागों को सबसे अधिक महत्व न दिया जाता था, जहाँ हाकिमों के बँगले थे............। इसी कारण हुक्काम उनसे खिचे रहते थे, उन्हें दम्भी और अभिमानी समझते थे। किन्तु नगर के छोटे से छोटे मनुष्य को भी उनसे अभिमान या अविनय की शिकायत न थी। हर एक प्राणी से प्रसन्न-मुख मिलते थे।............ वह अत्यंत मितभाषी थे। वृद्धावस्था में मौन-विचार प्रौढ़ता का द्योतक होता है और युवावस्था में विचार-दारिद्रय का, लेकिन राजा साहब का वाक्-संयम इस धारणा को असत्य सिद्ध करता था। उनके मुँह से जो बात निकलती थीं, विवेक और विचार से परिष्कृत होती थी। एक ऐश्वर्यशाली ताल्लुकेदार होने पर भी उनकी प्रवृत्ति साम्यवाद की ओर थी। सम्भव है कि यह उनके राजनीतिक सिद्धान्तों का प्रतिफल हो, क्योंकि उनकी शिक्षा, उनका प्रभुत्व, उनकी परिस्थिति, उनका स्वार्थ, सब इस प्रवृत्ति के प्रतिकूल था। पर संयम और अभ्यास ने अब इसे उनके विचार-क्षेत्र से निकाल कर उनके स्वभाव के अन्तर्गत कर दिया था।" आदि। पृ० ६४

राजा साहब के स्वभाव, उनकी विचारधारा, उनके दैनिक और सार्वजनिक जीवन आदि के बारे में यह विस्तृत टिप्पणी उनके चरित्र पर अच्छा प्रकाश डालती है। इसे पढ़ कर प्रारम्भ में उनके प्रति हमारा हृदय श्रद्धा से भर जाता है। पर, जैसे-जैसे हम उपन्यास पढ़ते चलते हैं, यह श्रद्धा घटती जाती है। उनमें यह गुण भले ही रहे हों पर उनमें एक ऐसा अवगुण है, जो सभी गुणों पर पानी फेर देता है। वे यश की कामना से प्रेरित होकर देश और जनता की सेवा में लगते हैं। अधिकार की भावना उनमें प्रबल है। अपने प्रतिद्वन्द्वी को वे हर प्रकार से गिराना चाहते हैं। उनके प्रति विद्वेष, क्रोध और हिंसा की भावना उनके चरित्र को मलिन कर देती है। उनकी यह कमजोरी सूरदास के सम्बन्ध में प्रकट हो जाती है। पहले वे सूरदास के विचारों से प्रभावित होकर उसी का समर्थन करती हैं। वे उसकी जमीन जॉनसेवक को

दिलाने में सहायता देने से इनकार कर देते हैं। उसके बाद ही जॉनसेवक द्वारा ताहिर अली की चोट दिखाये जाने पर, वे पांडेपुर वालों के विरुद्ध हो जाते हैं। उनमें इतनी बुद्धि भी नहीं आती कि वे जाँच पड़ताल करके वास्तविकता को समझ लें। पर सूरदास के विरुद्ध जॉनसेवक के समर्थन के पीछे एक रहस्य है जिसका स्पष्टीकरण प्रेमचन्द जी ने कर दिया है—

"राजा महेन्द्रकुमार सिंह यद्यपि सिद्धान्त के विषय में अधिकारियों से जौ भर भी न बदलते थे, पर गौण विषयों में वह अनायास उनसे विरोध करना व्यर्थ ही नहीं, जाति के लिए अनुपयुक्त भी समझते थे। …………उन्हें शांत नीति पर जितना विश्वास था, उतना उग्र नीति पर न था………… । उनमें यदि कोई कमजोरी थी, तो यह कि वह सम्मान-लोलुप थे, और ऐसे अन्य मनुष्यों की भाँति वह बहुधा औचित्य की दृष्टि से नहीं, ख्याति लाभ की दृष्टि से अपने आचरण का निश्चय करते थे। पहले उन्होंने न्याय-पक्ष लेकर जॉन-सेवक को सूरदास की जमीन दिलाने से इनकार कर दिया था…………पर यथार्थ में जॉनसेवक और मिस्टर क्लार्क की पारस्परिक मैत्री ने ही उन्हें अपना फैसला पलटने को प्रेरित किया था।" पृ० १६३

सूरदास की जमीन कारखाने के लिए दिलाने का प्रस्ताव राजा साहब ने क्लार्क को प्रसन्न करने के लिए किया। यह पढ़कर पाठक का मन उनकी ओर से हट जाता है। वे खुशामदी लोगों की श्रेणी में आ जाते हैं। इसलिए यह उचित ही था कि जनता की आँखों में वे गिर गये। नगर के दैनिक उनके बारे में पहले से ही टीका टिप्पणी किया करते थे, उनकी जन-सेवा को अपनी गद्दी बनाये रखने का साधन बताया करते थे। यह सत्य प्रकट हो जाता है। सूरदास का प्रचार आग में घी का काम करता है और वे चारों ओर बदनाम हो जाते हैं।

राजा साहब में मिथ्या आत्माभिमान भी है। इसने उनमें जिद की आदत पैदा करदी। जब क्लार्क ने सूर की जमीन न लेने की आज्ञा दी थी, तो राजा साहब को चुप होना चाहिए था पर वे सूरदास की जमीन जॉनसेवक को दिलाने के लिए तुल जाते हैं। जमीन सूरदास के हाथ से निकल जाती है।

अपनी बदनामी से दुखी होकर वे सूरदास के कट्टर शत्रु बन जाते हैं। भैरों द्वारा मुकदमा दायर किये जाने पर उन्हें सूरदास से बदला लेने का मौका मिलता है क्योंकि वह मुकदमा उन्हीं की अदालत में आता है। वे उसे सजा दे देते हैं यद्यपि जनता उसे निर्दोष बताकर फिर राजा साहब को नीचा दिखाती है। सूरदास को नीचा दिखाने का हर सम्भव प्रयत्न ये करते हैं पर उन्हें सफलता नहीं मिलती। स्थिति इतनी विगड़ जाती है कि उनकी पत्नी इंदु भी उनसे घृणा करने लगती है और उन्हें छोड़ कर पिता के घर चली जाती है। वे सूरदास को जेल भेजते हैं, तो इन्दु उसे छुड़ाने के लिए चन्दा देती है। वे सूरदास की झोपड़ी गिरवा देते हैं और उसके मरने का सामान इकट्ठा करते हैं परन्तु इन्दु उसकी मूर्ति स्थापित कराने में पूरा योग देती है। वे अपनी प्रतिष्ठा बनाये रखने का पूरा प्रयत्न करते हैं पर उन्हें सफलता नहीं मिलती। जनमत उनके विरुद्ध हो जाता है। नगरपालिका में उनके विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पास हो जाता है और उन्हें त्याग-पत्र देना पड़ता है। उनके सार्वजनिक जीवन का वीभत्स अन्त होता है। सूरदास ने मृत्यु के समय उन्हें क्षमा कर दिया था पर राजा साहब के हृदय की ईर्ष्याग्नि नहीं बुझती। जब जनता सूरदास की मूर्ति स्थापित करती है, तो राजा साहब उसे गिरा देते हैं और उसी के नीचे दब कर मर जाते हैं। उनका यह कृत्य उन्हें सदा के लिए जनता की दृष्टि से गिरा देता है।

दो शब्द राजा महेन्द्रसिंह के दाम्पत्य जीवन के सम्बन्ध में कहना आवश्यक है। राजा साहब उन लोगों में हैं, जो स्त्री को चरणों की धूल के बराबर भी नहीं समझते। वे इन्दु को अपनी इच्छाओं की गुलाम बनाकर रखते हैं। इन्दु सोफिया को अपने साथ ले जाना चाहती है, या स्टेशन पर जाकर सेवक दल को बिदा देना चाहती है; सूरदास को जेल से छुड़ाने के लिए चन्दा देना चाहती है; या उसकी मूर्ति स्थापित करने के लिए धन एकत्र करना चाहती है; राजा साहब उसकी हर इच्छा में अवरोध पैदा करते हैं। उनके आगे नारी का विचार-स्वातन्त्र्य असह्य है। "वास्तव में वे रूढ़िवादी व्यक्ति हैं। प्रगतिशील बनना उनकी स्वार्थ-सिद्धि का साधन-

मात्र है। वे किसी प्रकार भी हमारी श्रद्धा के पात्र नहीं हो सकते।

६. जॉन सेवक—मि० जॉन सेवक ईसाई हैं। बनारस के सिगरा नामक स्थान पर उनका बँगला है, जिसमें वे अपने वृद्ध पिता, पत्नी, एक पुत्र और एक पुत्री के साथ रहते हैं। किफायतशार पिता ने उनके लिए अच्छी गृहस्थी जुटा रक्खी है और वे धनार्जन के लिए कृतसंकल्प हैं। चमड़े के व्यापार के साथ-साथ वे तम्बाकू का कारखाना चलाना चाहते हैं। उनकी यह इच्छा रंगभूमि के कथानक का मूलाधार है। सच पूछिए, तो जॉन सेवक ही रंगभूमि के सूत्रधार हैं। सूरदास और जॉन सेवक दो खिलाड़ी हैं, जिनके बीच घात-प्रतिघात चलता है और यह कह सकना कठिन है कि कौन सफल हुआ। सूरदास यदि अपने बलिदान से जनता के मन पर एक स्थायी छाप छोड़ जाता है, तो जॉन सेवक अपनी दृढ़ता और संकल्पशक्ति से पांडेपुर को उदस्थ कर लेते हैं। वे शहर के प्रतीक हैं और सूरदास गाँव का। अन्त में शहर गाँव को हजम कर लेता है।" ऐसे व्यक्ति का प्रारम्भिक चित्र देखिए—

"जॉन सेवक दुहरे बदन के गोरे-चिट्टे आदमी थे। बुढ़ापे में भी चेहरा लाल था। सिर और दाढ़ी के बाल खिचड़ी हो गये थे। पहनावा अँगरेजी था जो इन पर खूब खिलता था। मुख की आकृति से गरूर और आत्म-विश्वास झलकता था।" पृ० २

जॉन सेवक के चरित्र में प्रमुख गुण है, उनकी व्यवहार कुशलता। अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए वे हर सम्भव उपाय काम में लाते हैं, जैसे तर्क करना, प्रलोभन देना, रोब जमाना, दबना और क्षमा-याचना करना, अपने सिद्धान्तों का त्याग करना, झिड़कना, समझाना और दंड देना आदि। साम, दाम, भय और दंड इनका उपयोग करना वे भली भाँति जानते हैं। वे अपने जीवन-दर्शन की व्याख्या कई स्थलों पर स्वयं करते हैं। उनकी विचार धारा के कुछ नमूने देखिए :—

"संसार में किसी काम का अच्छा या बुरा होना उसकी सफलता पर निर्भर है। एक व्यक्ति राजसत्ता का विरोध करता है। यदि अधिकारियों ने

उसका दमन कर दिया, तो वह राज द्रोही कहा जाता है और प्राण दण्ड पाता है। यदि उसका उद्योग पूरा हो गया, तो वह अपनी जाति का उद्धार-कर्त्ता और विजयी समझा जाता है, उसके स्मारक बनाये जाते हैं। सफलता में दोषों को मिटाने की विलक्षण शक्ति है।.........दो साल पहले मुस्तफा कमालपाशा क्या था?.........आज वह अपनी जाति का प्राण है।......... लेनिन कई साल पहले प्राण-भय से अमेरिका भागा था, आज वह रूस का प्रधान है।" पृ० १०७

"सदैव मार्मिक अवसर पर निगाह रखनी चाहिए। यही सफलता का मूलमन्त्र है। शिकारी जानता है, किस हिरन पर निशाना मारना चाहिए। वकील जानता है, अदालत पर कब उसकी युक्तियोंका सबसे अधिक प्रभाव पड़ सकता है।" पृ० १३९

जॉन सेवक में गजब की प्रत्युत्पन्नमति है और वे अवसर से लाभ उठाने में कभी नहीं चूकते। राजा महेन्द्रसिंह ने सूर के तर्कों से प्रभावित होकर उसकी जमीन कारखाने के लिए दिलाने से इनकार कर दिया है। इसी बीच में गोदाम पर उनके मुंशी ताहिर अली और पांडेपुर वालों से झगड़ा हो जाता है। ताहिर के चोट आ जाती है। जॉन सेवक तुरन्त ही उन्हें लेकर राजा महेन्द्रसिंह के पास जा पहुँचते हैं और उनसे घटना का वर्णन सप्रमाण ऐसे ढंग से बताते हैं कि राजा साहब उनके पक्ष में हो जाते हैं। प्रभु सेवक पांडेपुर के प्रसिद्ध गुंडे नायकराम को पीट देते हैं। वहाँ के लोग राजा महेन्द्रसिंह के पास शिकायत लेकर जाने वाले होते हैं। इसका परिणाम भयानक होता परन्तु जॉन सेवक स्थिति को सँभाल लेते हैं। वे तुरन्त पाँडेपुर जा पहुँचते हैं। वे सब लोगों से क्षमा याचना करते हैं; प्रभु को बुरा भला कह कर उनका मन जीत लेते हैं। यही नहीं, वे तर्क द्वारा उन सबको कारखाने के लाभ बताकर अपने पक्ष में कर लेते हैं। बनारस का जिलाधीश क्लार्क उनकी पुत्री सोफिया से प्रेम करता है। इस आत्मीयता से वे तुरन्त लाभ उठाते हैं। वे जानते हैं कि कब रोब डाला जाता है और कब दबाया जाता है। ताहिर अली को वे गबन के मामले में पकड़ लेते हैं। उन्हें छुड़ाने

के लिए गोदाम का मिस्त्री उतना धन देकर उन्हें सन्तुष्ट करना चाहता है पर वे स्पष्ट कह देते हैं कि अपराधी को दण्ड से बचाना पाप है। राजा महेन्द्रसिंह और कुँवर भरतसिंह को वे तर्कों द्वारा और सोफिया तथा प्रभु सेवक को झिड़क कर वे अपने वश में करते हैं। कुँवर भरतसिंह तथा म्यूनिसिपैलिटी के अन्य सदस्यों के हाथों कारखाने के शेयर बेच कर, वे प्रस्ताव पास करा लेते हैं। उनकी यह व्यवहार कुशलता देख कर हमें दंग रह जाना पड़ता है।

जॉन सेवक पूरे यथार्थवादी हैं। उनमें देश और काल को पहचानने की अद्भुत शक्ति है। भारत में राष्ट्रीयता की लहर आने पर वे ईसाई समुदाय को अपने हित के लिये उचित सलाह देते हुए कहते हैं, "मेरे विचार में हमारा कल्याण अंगरेजों से मेल करने में है। अंग्रेज इस समय भारतवासियों की संयुक्त शक्ति से चिंतित हो रहे हैं। हम अंगरेजों से मैत्री करके उन पर अपनी राजभक्ति का सिक्का जमा सकते हैं और मनमाने स्वत्व प्राप्त कर सकते हैं...। हिन्दुस्तानियों में मिलकर हम गुम हो जायेंगे, खो जायेंगे। उनसे पृथक रहकर विशेष अधिकार और विशेष सम्मान प्राप्त कर सकते हैं।" (पृ० १४१) ऐसे विचार उनकी दूरदर्शिता के परिचायक हैं। उन्हें कोरे आदर्शवाद से चिढ़ है। वे प्रभु सेवक को फटकारते हुए कहते हैं :—

"यह तुम्हारी अकर्मण्यता है। इसे संतोष और दया कहकर तुम्हें धोखे में न डालूंगा। तुम जीवन की सुख-सामग्रियाँ चाहते हो, लेकिन उन सामग्रियों के लिये जिन साधनों की जरूरत है, उनसे दूर भागते हो। हमने तुम्हें क्रियात्मक रूप से कभी धन और विभव से घृणा करते नहीं देखा। तुम अच्छे से अच्छा मकान, अच्छे से अच्छा भोजन, अच्छे से अच्छा वस्त्र चाहते हो, लेकिन बिना हाथ-पैर हिलाये ही चाहते हो कि कोई तुम्हारे मुंह में शहद और शर्बत टपका दे।" पृ० ३७२

जॉन सेवक स्वभाव से धर्मभीरू नहीं। धर्म को वे केवल मानव जीवन का अलंकार समझते हैं, जिसे विशेष अवसरों पर पहनना चाहिये या धर्म केवल मनोरंजन का साधन है अथवा एक सामाजिक औपचारिकता है जिसका निर्वाह

करना आवश्यक है। वैसे धर्म के संबंध में उनके विचार उदार हैं—

"जिसे ईश्वर ने जरा भी बुद्धि दी है, वह प्रभु मसीह का सच्चे दिल से सम्मान करेगा। हिन्दू तक ईसू का नाम आदर के साथ लेते हैं। अगर सोफी मसीह को अपना मुक्तिदाता, ईश्यर का बेटा, या ईश्वर नहीं समझती, तो उस पर जब्र क्यों किया जाय ? कितने ही ईसाइयों को इस विषय में शंकाएँ हैं, चाहे वे भय-वश प्रकट न करें। मेरे विचार में अगर कोई प्राणी अच्छे कर्म करता है और शुद्ध विचार रखता है, तो वह उस मसीह के उस भक्त से श्रेष्ठ है, जो मसीह का नाम जपता है पर नीयत का खराब है।" पृ० १४१

जब प्रभु सेवक उद्दंडतापूर्वक अपनी माता से झगड़ कर कहता है कि उसे भी धर्म पर विश्वास नहीं है, तो जॉन सेवक धर्म के प्रति अपने विचार बड़ी स्पष्टता से प्रकट करते हैं—"मुझे निश्चय था कि तुम जीवन और धर्म के सम्बन्ध को भली भाँति समझते हो; पर अब ज्ञात हुआ कि सोफी और अपनी माता की भाँति तुम भी भ्रम में पड़े हुए हो। क्या तुम समझते हो कि मैं और मुझ जैसे हजारों आदमी, जो नित्य गिरजे जाते हैं, भजन गाते हैं, आँखें बन्द करके ईशु प्रार्थना करते हैं, धर्मानुराग में डूबे हुए हैं ? कदापि नहीं। अगर अब तक तुम्हें नहीं मालूम है, तो अब मालूम हो जाना चाहिए कि धर्म केवल स्वार्थ संगठन है। संभव है, तुम्हें ईसा पर विश्वास हो, शायद तुम उन्हें खुदा का बेटा या कम से कम महात्मा समझते हो पर मुझे तो यह भी विश्वास नहीं है। मेरे हृदय में उनके प्रति उतनी ही श्रद्धा है, जितनी किसी मामूली फकीर के प्रति।...... लेकिन इतना अविश्वास होने पर भी मैं रविवार को सौ काम छोड़कर गिरजे अवश्य जाता हूँ। न जाने से अपने समाज में अपमान होगा, उसका मेरे व्यवसाय पर बुरा असर पड़ेगा। फिर अपने घर में अशान्ति फैल जायगी। मैं केवल तुम्हारी माता की खातिर से अपने ऊपर यह अत्याचार करता हूँ ......।" पृ० ६८–६९

धर्म के प्रति जॉन सेवक की आस्था केवल व्यावसायिक है। पाँडेपुर में जब उनके पिता गिरजाघर बनवाने की सलाह देते हैं, तो वे राजी नहीं होते, क्योंकि ऐसा करना धर्म-प्रचार माना जायगा। उनके व्यवसाय में साम्प्रदायिकता

का दोष आ जायगा और इससे उनका विरोध होगा। धर्म के मामले में वे अंगरेज साम्राज्यवादियों के अनुयायी हैं। वे सत्त। चाहते थे, इसीलिये उन्होंने कभी भी ईसाई धर्म प्रचारकों को भारत में सहायता नहीं दी। जॉन सेवक का दृष्टिकोण लगभग वही है। वे कहते हैं—

"धर्म और व्यापार को एक तराजू में तोलना मूर्खता है। धर्म धर्म है, व्यापार व्यापार; परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं। संसार में जीवित रहने के लिए किसी व्यापार की जरूरत है, धर्म की नहीं। धर्म तो व्यापार का शृंगार है। वह धनाधीशों को ही शोभा देता है। खुदा आपको समाई दे, अवकाश मिले, घर में फालतू रुपये हों, तो नमाज पढ़िये, हज कीजिए, मसजिद बनवाइये। तब मजहब मजहब है, खाली पेट खुदा का नाम लेना पाप है।" पृ० ७२

जॉनसेवक ठंडे दिल के व्यक्ति हैं। हर काम सोच-समझ कर करते हैं। ऐसे अवसर बहुत कम आये हैं, जब उन्हें क्रोध अथवा जोश आया हो। प्रभुसेवक पांडेपुर के लोगों से झगड़ा कर आता है। सारा समाचार सुनकर भी जॉनसेवक चुप रहते हैं। उनके मुख पर क्रोध का जरा भी लक्षण नहीं दिखायी देता। वे हर बात के हर पहलू पर विचार करते हैं।

जॉनसेवक को धन से विशेष प्रेम है। धन के आगे वे हर सिद्धान्त को तुच्छ समझते हैं। "उनकी धन-कामना विद्या-व्यसन की भाँति तृप्त नहीं होती।" (पृ० ५४१) वह उनके व्यक्तित्व का मूल स्रोत है। धन के पीछे वे हर प्रकार के कृत्य करते हैं। सूरदास के सामने वे इस बात को स्वीकार करते हुए कहते हैं, "मैंने नीति का कभी पालन नहीं किया। मैं संसार को क्रीड़ा क्षेत्र नहीं, संग्राम-स्थल क्षेत्र समझता रहा, और युद्ध में छल, कपट, गुप्त आघात सभी कुछ किया जाता है। धर्मयुद्ध के दिन अब नहीं रहे।" सांसारिक सफलता के बावजूद वे सुखी नहीं होते। उनकी विजय के परिणाम में, उनका पुत्र उनका साथ छोड़ कर चला जाता है, सोफिया आत्म हत्या करती है और पत्नी पागल हो जाती है। फिर भी धन लिप्सा शांत नहीं होती। वही उनका अन्तिम शरण स्थल है। धन उनका साध्य है। उन्हें रात-दिन की चिन्ता नहीं। उसके भुलावे में पड़ कर वे अपने सभी दुख भूल जाते हैं। संसार में उन्हें

कोई अभिलाषा नहीं । धन से निस्वार्थ प्रेम है, कुछ वही अनुराग जो भक्तों को अपने उपास्य से होता है । यह देख कर हमें उन पर दया आती है ।

६. **प्रभुसेवकः**—प्रभुसेवक भौतिकतावादी जॉनसेवक का पुत्र है । पिता-पुत्र के चरित्र में बड़ा विरोध है । एक यथार्थवादी, यशाभिलाषी, धन-सेवी, व्यवहार-कुशल, चतुर व्यवसायी और ठंडे दिल वाला व्यक्ति है, तो दूसरा आदर्शवादी, कवि-हृदय, सुधारक, दुनियादारी से परे, भावुक और पलायनवादी है । वह आधुनिक विश्वविद्यालयों में पढ़े हुए उन नवयुवकों का प्रतिनिधि है, जो कल्पनालोक में विचरण करते हैं और जीवन की वास्तविकताओं से मुँह मोड़ लेते हैं । ऐसे प्रभुसेवक का वाह्य व्यक्तित्व देखिये—

"प्रभुसेवक की मसें भीग रही थीं, छरहरा-डील इकहरा वदन, निस्तेज मुख, आँखों पर ऐनक, चेहरे पर गम्भीरता और विचारों का गाढ़ा रंग नजर आता था । आँखों से करुणा की ज्योति-सी निकल पड़ती थी । वह प्रकृति-सौन्दर्य का आनन्द उठाता हुआ जान पड़ता था ।" पृ० २

प्रभुसेवक काव्य रचना से विशेष प्रेम रखता है । उनका पिता चाहता कि वह चतुर व्यवसायी बन कर धनार्जन करे परन्तु प्रभुसेवक को दर्शन और साहित्य से प्रेम है । उसे काव्य रचना के लिए कुँवर भरतसिंह से प्रोत्साहन प्राप्त होता है क्योंकि वे उनकी कविताएँ सुनते और दाद देते । उनकी रचनाएँ प्रायः प्रेम प्रधान होती थीं । एक बार विनय सिंह ने इसके लिए उसे हतोत्साहित भी किया । वह असामयिक विषयों पर कविता लिखे यह विनय को पसंद न था । सोफिया ने भी इसी कारण से उसकी आलोचना की थी । उसकी एक दूसरी कविता की सोफी ने भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए कहा था—"मैंने कभी अनुमान भी न किया था कि तुम इस रस का आस्वादन इतनी कुशलता से करा सकते हो । जी चाहता है, तुम्हारी कलम चूम लूं ।………… बुरा न मानना, तुम्हारी रचना, तुमसे कहीं ऊँची है ।" पृ० २१९

प्रभुसेवक की कविता में मौलिकता है और इसी कारण उसका नाम कवि-समाज में आदर के साथ लिया जाता है जब वह सेवकदल का नेतृत्व

अपने हाथों में लेता है, तो उसकी कविता चमक उठती है। "उसकी रचनाएँ क्रान्तिकारी भावों से पूर्ण होती थीं। राष्ट्रीयता, द्वन्द्व, संघर्ष के भाव प्रत्येक छंद से टपकते थे। उसने 'नौका' नाम की एक ऐसी कविता लिखी, जिसे कविता-सागर का अनुपम रत्न कहना अनुचित न होगा। लोग पढ़ते थे और सिर धुनते थे।..........कोई ऐसी, सभा, सम्मेलन, परिषद् न थी जहाँ यह कविता पढ़ी न गयी हो। साहित्य जगत् में हलचल सी मच गयी।" (पृ० ४१८) प्रभु की काव्य प्रतिभा का आदर विदेशों में हुआ। इंगलैंड में विश्वविद्यालयों तथा साहित्यसेवी संस्थाओं ने उसका अभिनंदन किया। मैक-मिलन जैसी प्रकाशन संस्था ने उसका काव्य संग्रह छापने का निश्चय कर लिया तथा चालीस हजार रुपये की धन राशि पेशगी दे दी। इस प्रकार टैगोर के बाद प्रभु ने ही विदेशों में भारत का नाम साहित्य के क्षेत्र में बढ़ाया।

प्रभुसेवक में कवियों जैसी एकांतप्रियता और पलायनवादी प्रवृत्ति है, जिसको वह आदर्शवादी रूप देकर प्रस्तुत करता है। वह एक बार सोफी से कहता है, "सोफी, मैं और सब कुछ कर सकता हूँ, पर गृहचिंता का बोझ नहीं उठा सकता। मैं निर्द्वन्द्व, निश्चिंत, निर्लिप्त रहना चाहता हूँ। एक सुरम्य उपवन में, किसी सघन वृक्ष के नीचे, पक्षियों का मधुर कलरव सुनता हुआ, काव्य चिन्तन में मग्न पड़ा रहूँ, यही मेरे जीवन का आदर्श है।" (पृ० १४८) एक अन्य स्थल पर भी वह सोफी से कहता है कि मुझे रहने को एक झोपड़ा चाहिए और दर्शन तथा साहित्य का एक अच्छा सा पुस्तकालय। उसकी यह भावना उमरखय़ाम की रुबाई में प्रतिध्वनित होती है, जिसमें कवि एक पेड़ की डाल के नीचे, मदिरा के एक प्याले, काव्य की पुस्तक और अपनी प्रेयसी के साथ रहने से ही संतुष्ट हो जाता है। सोफी प्रभु की इस प्रवृत्ति को भी धिक्कारती है। वह उसे सचेत करती है कि तुम्हें तुकबंदी मात्र करने से ही अपने को महाकवि नहीं समझ लेना चाहिए। वह प्रायः कहती है कि तुम्हारे जीवन और तुम्हारी कविता में कोई तालमेल नहीं है। उस समय वह विचित्र तर्क देता है—"सोफी, भावों के सामने आचरण का कोई महत्व नहीं। कवि का कर्म क्षेत्र सीमित होता है पर भाव क्षेत्र अनन्त और अपार है। उस प्राणी को तुच्छ न समझो,

जो त्याग और निवृत्ति का राग अलापता हो, पर स्वयं कौड़ियों पर जान देता हो,। सम्भव है, उसकी वाणी किसी महान पापी के हृदय में जा पहुँचे।" पृ० २१९

प्रभु सेवक में साहस की कमी कहीं-कहीं स्पष्ट दिखायी देनी है, विशेष-रूप से अपने घर में। वे व्यवसाय में रुचि नहीं रखते पर माता-पिता के सामने स्पष्ट रूप से अपनी अरुचि का उल्लेख नहीं करते। धर्म के विषय में भी उनके विचार क्रान्तिकारी हैं। वहन सोफी की भाँति वे भी गिरजे और ईसु पर विश्वास नहीं रखते पर निर्भीकता पूर्वक सोफी की भाँति अपने विचार स्पष्ट नहीं करते। माँ को दिखाने के लिए वे गिरजे जाते हैं और प्रार्थना करते हैं। एक-आध अवसर पर जोश में वे कह भी देते हैं कि मुझे धर्म पर विश्वास नहीं है। इसी प्रकार वे सुधारवादी हैं और जनवाद में विश्वास रखते हैं पर वे केवल सिद्धान्तों तक ही रह जाते हैं। उन्हें क्रियात्मक रूप देने का साहस उनमें नहीं है। इस स्वभाव के कारण का विश्लेषण स्वयं प्रेम-चन्द जी ने किया है :—

"जिन परिस्थितियों में उनका लालन-पालन हुआ था, जिन संस्कारों में उनका मानसिक और आत्मिक विकास हुआ था, उनसे मुक्त हो जाने के लिए जिस नैतिक साहस की, उद्दण्डता की जरूरत है, इससे वह रहित थे। वह विचार-क्षेत्र में त्याग के भावों को स्थान देकर प्रसन्न होते थे और उन पर गर्व करते थे। उन्हें शायद कभी सूझा ही न था, कि इन भावों को व्यवहार रूप में भी लाया जा सकता है। वह इतने संयमशील न थे कि अपनी विला-सिता को इन भावों पर बलिदान कर देते। साम्यवाद उनके लिए मनोरंजन का एक विषय था, बस।" पृ० ३७२

प्रभु की इस कमजोरी को उसके पिता पहचानते थे और इसके लिए प्रभु को कड़ी फटकार सुननी पड़ती है। प्रभु ने धीरे-धीरे इस निर्बलता पर विजय पायी। उन्होंने अपने पिता से अलग होने का निश्चय कर डाला। उनका आगे का जीवन उनके स्वावलम्बन का प्रमाण है। वे सेवकदल की बागडोर अपने हाथों में लेते हैं। कुँवर भरतसिंह और डॉ० गाँगुली प्रभु की

विद्या, बुद्धि और उत्साह पर विश्वास करके उन्हें सेवक दल का कार्य-भार सौंपते हैं। प्रभु इस उत्तरदायित्व को विनय पूर्वक स्वीकार करते हैं। प्रभु के उत्साहपूर्ण नेतृत्व में सेवक-दल नयी स्फूर्ति से भर उठा। उन्होंने उसे सामाजिक सेवा के साथ राजनैतिक आन्दोलन के लिए भी तैयार किया। अत्याचार का प्रतिरोध वे साहस पूर्वक करने लगे। उनमें इतना साहस आ जाता है कि वे भरतसिंह की नरम नीति के विरुद्ध आचरण करने लगते हैं और स्वतन्त्र निर्णय लेते हैं। पूना की राष्ट्रीय सभा में उनका व्याख्यान नया रंग लाता है। उन पर गोली से प्रहार किया जाता है। बाद में सेवक-दल की ओर से संयम रखने का आदेश आता है पर वे त्यागपत्र देकर अलग हो जाते हैं। कभी-कभी उनके दुःसाहस को देख कर आश्चर्य होता है। पांडेपुर में उनका सामना नायकराम पंडा से होता है, जो शहर का मशहूर गुण्डा है। उसके अपशब्दों को सुनते ही प्रभु आपे से बाहर हो जाते हैं और उसको कोड़े की मार से हतप्रभ कर देते हैं। यह उनके साहस की अपेक्षा युवकोचित जल्दबाजी का नमूना है। प्रभु में सहृदयता और निर्लोभ के गुण भी हैं। उन्हें अपने काव्य-संग्रह के प्रकाशन से जितना धन मिलता है, उसका बहुत बड़ा भाग वे सेवक दल को निःसंकोच दे डालते हैं।

प्रभु ईसाई समुदाय के सदस्य होते हुए भी राष्ट्रवादी हैं। वे अपने माता-पिता की भाँति अंग्रेज शासकों के प्रति सहानुभूति रखते हैं। वे अपनी मां से कहते हैं—"पहले हिन्दुस्तानियों को ईसाइयों से कितना द्वेष रहा हो, किन्तु अब हालत बदल गयी है। हम खुद अंगरेजों की नकल करके उन्हें दबाने की चेष्टा करते हैं। यह हमारी राजनीतिक भ्रान्ति है। हमारा उद्धार देशवासियों से भ्रातृभाव रखने में है, उन पर रोब जमाने में नहीं। आखिर हम भी तो इसी जननी की सन्तान हैं।.........हमारी मुक्ति भारतवासियों के साथ है।" पृ० १४०

प्रभु राष्ट्रीयता के रंग में रंगे ईसाई हैं। ऐसे लोग मिलने दुर्लभ हैं। उनकी राष्ट्रीयता भी संकुचित नहीं है। आगे चलकर प्रभु अन्तर्राष्ट्रीयता के समर्थक बन जाते हैं। वे पत्र लिखते हुए कहते हैं, "इतना निवेदन करना

आवश्यक समझता हूँ कि आपको सेवा के उच्चतम आदर्शों का पालन करना चाहिए और राजनीतिक परिस्थितियों से विरक्त होकर 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के प्रचार को अपना लक्ष्य बनाना चाहिए।.........आप देखेंगे कि मेरे राजनीतिक विचारों में कितना परिवर्तन हो गया है। मैं अब स्वदेशी नहीं; सर्वदेशीय हूँ, अखिल संसार मेरा स्वदेश है, प्राणीमात्र से मेरा बन्धुत्व है और भौगोलिक तथा जातीय सीमाओं को मिटाना मेरे जीवन का उद्देश्य है। आदि। पृ० ४५५

प्रभु में व्यावहारिकता कम है पर उनमें सद्गुणों की कमी नहीं। उनके उत्साह, बुद्धि, विद्या, क्षमता, निःस्वार्थ भावना तथा त्याग की प्रशंसा कुँवर भरतसिंह और डा० गाँगुली तो करते ही हैं, प्रान्त के गवर्नर विल्सन भी उनकी विद्वत्ता का लोहा मान लेते हैं और प्रभु को व्यक्तिगत पत्र लिखकर उसकी सराहना यों करते हैं :—"मैं नहीं कह सकता कि कल आपका व्याख्यान सुनकर मुझे कितना लाभ और आनन्द प्राप्त हुआ। मैं यह अत्युक्ति के भाव से नहीं कहता कि राजनीति की ऐसी विद्वत्तापूर्ण तात्विक मीमांसा आज तक मैंने कहीं नहीं सुनी।"

खेद की बात यह रह जाती है कि प्रभु ऐसे युवक की देश-सेवा का लाभ भारत को नहीं मिलता। इसे प्रभु की दुर्बलता कहें या देश का दुर्भाग्य ?

७. **नायकराम**—पंडा नायकराम पांडेपुर के निवासियों का नेता है। वह दबंग व्यक्ति है और आसपास के लोग उससे डरते हैं, केवल सूरदास पर उसका रोब नहीं चलता। वह मुफ्त का माल उड़ाता है और पंडा बनकर यात्रियों से धन ऐंठता है। वाचालता में उससे पार पाना असम्भव है। वह अपने साथियों में तर्क कराता है और स्वयं उसका आनन्द लेता है। अपना मतलब गाँठने में वह बेहद चतुर है; सूरदास की तरह वह सिद्धांत पर कभी नहीं अड़ता। पुलिस, अधिकारीगण, राजामहेन्द्रसिंह, कुँवर भरतसिंह, और जॉनसेवक, सभी से मिलजुलकर काम निकालने में वह बड़ा चतुर है। घूस देने, दिलाने में वह सिद्धहस्त है। जूआ खेलना और हत्या करना तक उसकी दृष्टि में पाप नहीं है। यही

कारण है कि उसका नाम गुंडों के साथ लिया जाता है। अपनी वीरता और साहस की प्रशंसा करना उसका मुख्य काम है यद्यपि उसमें साहस का सर्वथा अभाव है। आड़े समय पर वह सीना तानकर कभी आगे नहीं बढ़ता। पांडेपुर में आकर प्रभुसेवक जैसा साधारण युवक उसे बुरी तरह पीटकर चला जाता है और वह निर्लज्जतापूर्वक अपनी शक्ति की प्रशंसा ही करता रहता है।

चाटुकारिता की आदत नायकराम में खूब है। वह राजा महेन्द्रसिंह की प्रशंसा उनके मुँह पर करता है। "सूरे, हमारे मालिक को जानते हो न, चतारी के महाराज हैं। इसी दरबार से हमारी परवरिस होती है। मिनिसपलटी के सबसे बड़े हाकिम हैं। आपके हुकुम बिना कोई अपने द्वार पर खूंटा भी नहीं गाड़ सकता। चाहें तो सब इक्केवालों को पकड़वा लें, सारे शहर का पानी बन्द कर दें।" इस प्रकार की मीठी मीठी बातें करके वह बड़े लोगों को प्रसन्न कर लेता है। यही कारण है कि बजरंगी, जगधर और अन्य पांडेपुर निवासी बेघर हो जाते हैं और मुआवजा थोड़ा पाते हैं पर नायकराम अपने छोटे से मकान के पूरे पाँच हजार रुपये प्राप्त कर लेता है।

धन के लोभ से नायकराम हर काम कर डालता है और सबसे बड़ा कष्ट उठा लेता है। कुँवर भरतसिंह से काफी धन लेकर वह विनय को छुड़ाने के लिये उदयपुर जा पहुंचता है। वहाँ अपनी बातों के जाल में जेल के दारोगा को फँसा लेता है। जेल के भीतर प्रवेश कर वह विनय को निकाल ले जाता है। यह एक बड़े दुस्साहस का काम था। विनय के साथ-साथ वह दुर्गम स्थानों पर जाता है, वीरपाल के साथियों द्वारा घायल भी हो जाता है परन्तु, वह विनय का साथ नहीं छोड़ता। चालाकी में उससे पार पाना कठिन है। इसका प्रमाण यह है कि वह कुंवर भरतसिंह के मुनीम से भी पचीस रुपये ऐंठ लेता है। नायकराम के चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता है, उसका बात करने का गुण और इसी के बल पर वह अपना काम हर जगह बनाने में सफल होता है।

८. **बजरंगी**—पाँडेपुर के निवासियों में बजरंगी अहीर अपनी जातिगत विशेषताओं के कारण प्रसिद्ध है। वह गाय-भैंसों को पाल कर और दूध का व्यवसाय

करके जीवन-यापन करता है। घर में दूध-घी था ही, कसरत और अखाड़े के द्वारा वह अपने शरीर को बलिष्ठ बना लेता है। उसके स्वभाव में बड़ी उग्रता है। जरा से उत्तेजन से वह लाठी उठा लेता है। बच्चों के झगड़े में पड़कर वह ताहिरअली पर लाठी का प्रहार करता है। उसे कोई भी कठोर बात सह्य नहीं है। बात कहने में वह खरा है। वह एक जगह अपने साथियों से कहता है—"मेरे मिजाज को तुम नहीं जानते, चेता देता हूँ। पर कह कर कोई सौ जूते मार ले, लेकिन झूठी बात सुनकर मेरे बदन में आग लग जाती है।" (पृ० १५) यह कह सकना कठिन है कि वह शुद्ध दूध बेचता है या अन्य दूधवालों की तरह मिलावट करता है क्योंकि इसका प्रमाण हमें कहीं नहीं मिलता; परन्तु वह दावे के साथ कहता है—"अगर कोई माई का लाल मेरे दूध में एक बूंद पानी निकाल दे, तो उसकी टाँग की राह निकल जाऊँ। यहाँ दूध में पानी मिलाना गऊ-हत्या समझते हैं।" साथ ही वह इतना अवश्य अनुभव करता है कि उसके व्यवसाय में कुछ अनैतिकता अवश्य है। वह कहता है—"सच पूछो तो सबसे बड़ा पापी मैं हूँ कि गउओं का पेट काट कर, उनके बछड़ों को भूखा मार कर, अपना पेट पालता हूँ।" पृ० १६

बजरंगी में दया-भावना और न्याय बुद्धि भी है। वह सूरदास की अक्षमता पर दया करता है और उसके कृत्यों की सदा सराहना करता है। सूरे पर अत्याचार होते देखकर वह सबको डाँटता है और अपनी पत्नी की खबर लेता है। (पृ० ५४) सूरदास एक बार सुभागी को छेड़नेवाले बजरंगी के पुत्र घीसू को अपनी झोपड़ी में पकड़ लेता है। सबके कहने पर भी वह नहीं मानता है और इस मामले को पुलिस में दे देता है। बजरंगी स्वभाव वश क्रुद्ध हो जाता है और सूरदास से शत्रुता रखने लगता है पर कुछ दिनों बाद ही उसकी न्याय-बुद्धि जाग उठती है। वह इस काम के लिए सूरदास की प्रशंसा करता है और अपने पुत्र को सजा दिलाने के लिए सूरदास का कृतज्ञ हो जाता है। वास्तव में बजरंगी सरल हृदय व्यक्ति है, जो बात मन में हो, वही उसकी जबान पर रहती है। वह दूर तक नहीं सोचता। उसमें

स्वार्थ की कुछ मात्रा अवश्य है। इसीलिए जमीन के मामले में वह जॉनसेवक के पक्ष में चला जाता है और सूरदास का साथ छोड़ देता है। अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए वह घूस आदि देने लगता है। ताहिर की विमाताएँ उससे पचास रुपये बड़ी सरलता से ऐंठ लेती हैं। इन कमजोरियों के होते हुए भी बजरंगी खरा व्यक्ति है।

९. ताहिर अली :—सैयद ताहिर अली खाँ एक थानेदार के पुत्र हैं। ठीक पिता के विपरीत वे ईमान के पक्के और स्वभाव के धर्मभीरू हैं। ज्यादा पढ़े लिखे हैं नहीं, इसलिए वे जॉनसेवक के चमड़े के गोदाम में गुमाश्ते का काम करने लगते हैं। उनके स्थान पर और कोई गुमाश्ता होता तो चमारों से दस्तूरी लेकर अच्छी रकम पैदा कर लेता परन्तु वे ऐसी कमाई को इस्लाम धर्म के अनुसार हराम समझते हैं। स्वामि भक्ति में उनका जैसा आदमी मिलना आज की दुनियाँ में कठिन है। जॉनसेवक के आगे उनकी जबान नहीं खुलती यद्यपि उन पर प्राय: डाँट फटकार पड़ा करती है। मालिक के फायदे के लिए वे मोहल्लेवालों तक की कोई परवाह नहीं करते। उनमें अन्य मुसलमानों की तरह कुछ धार्मिक अनुदारता भी थी। "खुद बड़े दीनदार आदमी थे, पर अन्य धर्मों की आव-हेलना करने में उन्हें संकोच न होता था। वास्तव में वह इस्लाम के सिवा किसी धर्म को धर्म ही नहीं समझते थे।" (पृ० ५७) उनके चरित्र के सम्बन्ध में प्रेमचन्द जी की टिप्पणी देखिए :—"ताहिर अली के पिता पुलिस विभाग में काँस्टेबिल से थानेदारी के पद तक पहुँचे।............ताहिर अली धैर्यशील और विवेकी मनुष्य थे। पिता का देहांत होने पर सालभर तक तो रोजगार की तलाश में मारे-मारे फिरे। कहीं मवेशीखाने की मुहर्रिरी मिल गयी, कहीं दवा बेचनेवाले के एजेन्ट हो गये, कहीं चुंगीघर के मुंशी का पद मिल गया। ....उनके आचार विचार अपने पिता से बिल्कुल निराले थे। रोजा-निमाज के पाबंद और नीयत के साफ थे। हराम की कमायी से कोसों भागते थे।............३०) मासिक आय। इस महँगी के समय में जबकि इससे पचगुनी आमदनी में सुचारु रूप से निर्वाह नहीं होता, उन्हें बहुत कष्ट झेलने पड़ते थे पर नीयत खोटी न थी। ईश्वर भीरुता उनके चरित्र का प्रधान गुण

थी।" पृ० ६०

कर्तव्य परायणता और उत्तरदायित्व की भावना ताहिर अली में कूट-कूट कर भरी थी। उनके पिता उनके सर पर उनकी दो विमाताओं के साथ तीन सौतेले भाई माहिर, जाहिर, जाबिर छोड़ गये थे। उनके अपने परिवार में उनकी पत्नी, और दो सन्तानें हैं। आज के संसार में, जब मनुष्य अपने माता-पिता का ध्यान नहीं रखता, ताहिर अली अपनी विमाताओं और अपने सौतेले भाइयों का न केवल पालन-पोषण करते हैं वरन् भाइयों को पढ़ाते भी हैं। इसके लिए वे अपना पेट काटते हैं, पत्नी कुलसुम लौंड़ी की तरह काम करती है, बच्चे दूध के लिए तरसते हैं। दूसरी ओर उनकी दुष्टा विमाताएँ उन पर व्यंग्य वर्षा करती हैं, स्वयं घर को लूटती हैं, उनका जेवर तक हजम कर जाती हैं। पत्नी उन्हें समझाती है पर भोले भाले ताहिर इन चालों को नहीं समझ पाते। उनके त्याग की पराकाष्ठा वहाँ पर हो जाती है, जब वे अपनी विमाताओं को प्रसन्न करने के लिए, माहिर की शिक्षा, उसकी नौकरी के लिए पत्नी के गहने गिरवीं रखते हैं यद्यपि वे गहने वे दुष्टा विमाताएँ हजम कर जाती हैं। उनको खुश रखने लिए ताहिर अन्त में अपना ईमान भी बेच देते हैं। मालिक की रकम गबन करने लगते हैं। अन्त में इन लोगों के कारण ही ताहिर को जेल हो जाती है।

ताहिर की धर्म भीरुता हमें उनकी ओर आकृष्ट करती है। वे ईश्वर के प्रकोप से डरते हैं। संसार की व्यवहार कुशलता से वे कोसों दूर हैं। उनकी विमाताएँ बजरंगी से पचास रुपये ले लेती हैं और ताहिर को ईश्वर का भय दिखा कर साहब से जमीन न लेने की सिफारिश करवाती हैं। धर्म पर अन्ध-विश्वास उनकी विचार तथा तर्क शक्ति को कुंठित कर देता है। वे केवल प्रार्थना के बल पर पाप से मुक्त होने की चेष्टा करते हैं। साथ ही यह भावना उन्हें बुरे कामों से रोकती है। वे अपने स्वार्थवश नहीं वरन् गैरों के हित के लिए नरक के कुंड में गिरते हैं।

साधारण मनुष्य की भाँति ताहिर अली में आत्म प्रदर्शन की भावना आमदनी बढ़ने पर जाग उठती है। उनकी मेहनत और ईमानदारी से प्रसन्न

हो जॉनसेवक उनका वेतन तो नहीं बढ़ा देते हैं पर कुछ कमीशन देने लगते हैं। आमदनी बढ़ने से उनके मन में रोब बढ़ाने की इच्छा जाग्रत हो जाती है। "अब मिल के कर्मचारियों के सामने उन्हें ज्यादा शान से रहना पड़ता था और मोटा काम अपने हाथ से करने में शर्म आती थी। इसलिए विवश होकर एक बुढ़िया आया रख ली थी। पान इलायची आदि का खर्च कई गुना बढ़ गया था।" इस प्रदर्शन की भावना ने उन्हें ऋणी बना दिया। यह उनकी अनुभव हीनता का परिचय देता है।

ताहिर ने अपने सौतेले भाई माहिर को पढ़ाया-लिखाया पर उसने उन्हें धोखा ही दिया। उनके जेल में रहने पर माहिर उनके बच्चों की कोई सहायता नहीं करता। इस कृतघ्नता से दुखी होकर वे प्रतिहिंसा की भावना से पीड़ित हो जाते हैं और जेल से लौट कर वे हिताहित-ज्ञान से शून्य हो सबके सामने माहिर को बुरा-भला कहते हैं और उसके मुख पर कालिख पोत देते हैं। पर इसके बाद ही उन्हें आत्मग्लानि भी होती है। ताहिर ने जीवन-संघर्ष में सदा भाग लिया था और उनमें स्वावलंबन था ही। अतः जेल से लौट कर वे जिल्दसाजी का काम करने लगते हैं। उनकी आर्थिक स्थिति अच्छी हो जाती है इससे प्रकट होता है कि ताहिर परिश्रमी और अध्यवसायी व्यक्ति हैं।

सोफिया—रूपगुण सम्पन्न सोफिया जॉनसेवक की पुत्री और प्रभुसेवक की बहन है। उसके प्रभावशाली व्यक्तित्व की कल्पना प्रेमचन्द जी ने यों की है :—"मिस सोफिया बड़ी-बड़ी रसीली आँखोंवाली, लज्जाशील युवती थी। देह आदि कोमल, मानों पंचभूतों की जगह पुष्पों से उसकी सृष्टि हुई हो। रूप अति सौम्य, मानों लज्जा और विनय मूर्तिमान हो गये हों। सिर से पांव तक चेतना थी, जड़ का कहीं आभास तक न था।"

ईसाई परिवार में पैदा होकर और पालित-पोषित होने पर भी उसमें हिन्दू संस्कार प्रबल हैं। वह आदर्श प्रेम का पक्ष ग्रहण करती है। दया की वह सजीव मूर्ति है। त्याग करने में वह सबसे आगे है। यही कारण है कि विनय उससे प्रेम करने लगते हैं। उनकी दृष्टि में सोफी लज्जा विनय, त्याग और सेवा की प्रतिमा है। उसके स्वभाव की सरलता पर वे मुग्ध थे। उसकी

एक-एक दृष्टि उनके हृदय पर कालिदास की उपमा के समान चोट करती है। उसका एक-एक शब्द उनके हृदय को दीपक की ज्योति की भाँति आलोकित करता है। उसका सौन्दर्य निष्कपट, गम्भीर और मधुर है। सोफिया के प्रति विनय की यह भावना प्रेम के कारण उत्पन्न हुई थी और इसलिए उसमें कुछ अत्युक्ति भी हो सकती है। परन्तु सोफिया के प्रति ऐसा आदर सबके हृदय में वर्तमान है। रानी जान्हवी, इंदु और कुँवर भरतसिंह आदि सभी उस पर मुग्ध हैं। विजातीय होने पर भी वे उस पर असीम स्नेह रखते हैं। रानी साहब कहती हैं—"वह दया और विवेक की मूर्ति है। आत्म त्याग तो इसमें कूट-कूट कर भरा हुआ है।" (पृ० ४२) उसकी सखी इंदु तो उसके बिना एक क्षण नहीं रह सकती। वे सोफी के संयम, त्याग और सेवा की बार-बार प्रशंसा करती हैं। रानी साहब उस पर इतनी मुग्ध होती हैं कि प्रारम्भ में ही कह डालती हैं कि अगर धर्म की बाधा न होती तो मैं सोफी को अपनी पुत्रवधू बना लेती। कुँवर भरतसिंह ने तो उसे पुत्रवधू के रूप में स्वीकार ही कर लिया था। रानी जान्हवी के मन में पुत्रवधू का एक चित्र था, कि वह लज्जाशील कुलवधू हो। इसलिए वे प्रारम्भ में सोफिया को पुत्रवधू के रूप में नहीं स्वीकार करतीं। बाद में उन्हें अपनी भूल का पता चल जाता है और वह कहती हैं—"बेटी तुम देवी हो, मेरी बुद्धि पर परदा पड़ गया था। मैंने तुम्हें पहचाना न था। मुझे सब मालूम है बेटी, सब सुन चुकी हूँ। तुम्हारी आत्मा इतनी पवित्र है, यह मुझे न मालूम था। आह! अगर पहले से जानती।" (पृ० ४३४)

अन्त में, रानी साहब को पूरा विश्वास हो जाता है कि सोफी ईसाई होते हुए भी हिन्दू है। "सोफिया के धार्मिक विचार उसका आहार-व्यवहार रहन-सहन, उसकी शिक्षा में सभी बातें ऐसी थीं, जिनसे एक हिन्दू महिला को घृणा हो सकती थी। पर इतने दिनों के अनुभव ने रानी जी की सभी शंकाओं का समाधान कर दिया। सोफिया अभी तक हिन्दू-धर्म में विधिवत् दीक्षित न हुई थी पर उसका आचरण पूर्ण रीति से हिन्दू धर्म और हिन्दू समाज के अनुकूल था।" (पृ० ४८२) अतः वे विनय के साथ उसका विवाह करने को तैयार हो जाती हैं।

सोफिया को विनय के प्रति वही भक्ति है जो पत्नी को पति के प्रति होती है। इस विषय में वह भारतीय नारी का आदर्श स्वीकार कर लेती है। भीलों की बस्ती में रहते हुए वह पत्नीवत् विनय की सेवा करती है। दिन भर वह उनकी राह देखती, रात को उनके लौटने पर हाथ-पैर धुलवाकर भोजन कराती और फिर दिन भर के काम का ब्यौरा सुनती। विनय की हितकामना उसका मुख्य ध्येय है। अगर वह चाहती तो विनय को अपने प्रेम-पाश में जकड़ लेने के बाद उन पर पूरा अधिकार कर लेती परन्तु वह नहीं चाहती कि उसका प्रियतम अपनी माँ की नजरों में गिर जाय या देश सेवा से विरत हो जाय। विनय के राजस्थान चले जाने पर जब जान्हवी को यह ज्ञात होता है कि विनय और सोफी परस्पर प्रेम करते हैं, तो वे उससे त्याग करने की याचना करती हैं और उनकी शर्त यह होती है कि सोफिया किसी अन्य पुरुष से विवाह कर ले। इससे विनय का मन उसकी ओर से हट जायगा। सोफी को घोर कष्ट होता है पर विनय के हित के लिए वह इस शर्त को स्वीकार कर लेती है। "वह योगिनी बन सकती थी; पर प्रेम को कलंकित करने की कल्पना ही से उसे घृणा होती थी।" (पृ० १४६) वह नहीं चाहती थी कि उसका प्रेम विनय को अधःपतन की ओर ले जाय। विनय उसके शरीर को पाना चाहता है पर सोफिया स्पष्ट कह देती है—"लेकिन क्षमा करना, मैं कभी कोई ऐसा कर्म न करूँगी, जिससे तुम्हारा अपमान, तुम्हारी अप्रतिष्ठा, तुम्हारी निन्दा हो। मेरा यह संयम अपने लिए नहीं तुम्हारे लिए है। आत्मिक मिलाप के लिए कोई बाधा नहीं होती; पर सामाजिक संस्कारों के लिए अपने सम्बन्धियों और समाज के नियमों की स्वीकृति अनिवार्य है, अन्यथा वे लज्जास्पद हो जाते हैं। मेरी आत्मा मुझे कभी क्षमा न करेगी अगर तुम मेरे कारण माता-पिता, विशेषतः अपनी पूज्या माता के कोप भाजन बनो और वे मेरे साथ तुम्हें भी कुल-कलंक समझने लगें।" पृ० ४२४

विनय को आपत्ति से बचाने का हर सम्भव प्रयत्न सोफिया करती है। जब उसे ज्ञात होता है कि विनय उदयपुर में कारागार में डाल दिया गया है, तो वह क्लार्क के साथ वहाँ जा पहुँचती है। उसको बचाने के लिए वह अनेक

कुचक्र रचती है। उसे जेल में विनय से मिलने के लिए और उसे वहाँ से भगाने के लिए अभिनय-सा करना पड़ता है। इस कार्य को वह स्वयं घृणित समझती है। उसे घोर आत्मिक कष्ट होता है, जब उसे क्लार्क के साथ प्रेम का अभिनय करना पड़ता है। वह उसे झूठी आशा और विश्वास दिलाते हुए उससे हर कार्य निकालती है पर आत्म समर्पण कभी नहीं करती। ऐसी परिस्थितियों में किसी साधारण स्त्री का अपनी सतीत्व रक्षा कर सकना शायद सम्भव न होता पर सोफिया यह भी कर दिखाती है। उसे विनय के लिए वे सभी काम करने पड़ते हैं, जो उसकी दृष्टि में हेय हैं।

विनय के प्रति सोफिया का प्रेम आदर्शोन्मुख है। प्रेम करके वह सुख-भोग, हास-विलास नहीं चाहती। वह विनय से कहती है—"विनय! मैं विपत्ति ही की भूखी हूँ। अगर तुम सुख सम्पन्न होते, अगर तुम्हारा जीवन विलासमय होता, अगर तुम वासनाओं के दास होते, तो कदाचित् मैं तुम्हारी तरफ से मुँह मोड़ लेती। तुम्हारे सत्साहस और त्याग ही ने मुझे तुम्हारी तरफ खींचा है।" (पृ० २८६) वह विनय को महान गुणों से विभूषित देख कर सन्तुष्ट रहना चाहती है। इसी लिए उसने विनय को अपना दिल सौंपा था। वह कहती है—"मैंने तुम्हारी प्रभु शीलता पर अपने को सर्मपित नहीं किया था, बल्कि तुम्हारी सेवा, सहानुभूति और देशानुराग पर। इस लिए तुम्हें अपना उपास्य देव बनाया था कि तुम्हारे जीवन का आदर्श उच्च था, तुममें मसीह प्रभु की दया, भगवान बुद्ध का विराग और लूथर की सत्यनिष्ठा की झलक थी।" (पृ० ३२१) जब विनय उदयपुर रियासत के अधिकारियों से मिल कर जनता का दमन इसलिए करते हैं कि सोफी उन्हें मिल जाय तो उसका हृदय तड़प उठता है। आदर्शच्युत विनय से वह घृणा करने लगती है और वीरपाल सिंह के दल में सम्मिलत हो जाती है। उसके आदर्श प्रेम के परिचायक उसके उद्‌गार स्मरणीय रहेंगे:—"तुम्हारे आदर्श ने मुझे तुम्हारे कदमों पर झुकाया। जब मैं प्राणीमात्र को स्वार्थ में लिप्त देखते-देखते संसार से घृणा करने लगी थी, तुम्हारी निःस्वार्थता ने मुझे अनुरक्त कर लिया।........ प्रेम के विषयमें नारियाँ आदर्श और त्याग का विचार नहीं करतीं। लेकिन, मेरी शिक्षा, मेरी

संगति, मेरा अध्ययन और सबसे अधिक मेरे मन की प्रवृत्ति ने मुझे इन गुणों (स्वार्थ,) का आदर करना नहीं सिखाया।......मुझे उस वस्तु से घृणा है जिसे सफल जीवन कहते हैं। सफल जीवन पर्याय है, खुशामद, अत्याचार, और धूर्तता का। मैं जिन महात्माओं को संसार में सर्वश्रेष्ठ समझती हूँ, उनके जीवन सफल न थे।" पृ० ३२१

सोफी उन भारतीय क्षत्राणियों से मिलती-जुलती है जो अपने प्रियतम को हँसते-हँसते बलिदान कर देती है। गुप्त जी की यशोधरा की उक्ति—"प्रियतम को प्राणों के पण में, हमीं भेज देती हैं रण में, क्षात्र धर्म के नाते।" सोफी पर पूरी तरह घटित होती है, वह विनय को अपने सेवा धर्म से विरत होने पर उसी प्रकार फटकारती है, जैसे औरंगजेब से पराजित होकर लौटनेवाले जसवंतसिंह को उनकी रानी ने फटकारा था। वह कहती है—"अगर आज तुम तक रियासत के हाथों पीड़ित, दलित, अपमानित और दंडित होकर मेरे सामने आते तो मैं तुम्हारी बलायें लेती, तुम्हारे चरणों की रज मस्तक पर लगाती और अपना धन्य भाग समझती।" सोफी के आदर्श प्रेम की प्रशंसा करते हुए इन्दु कहती है—"सोफिया कल मुझसे मिलने गई थी।.........बड़े धर्म संकट में पड़ी हुई है। न तुम्हें निराश करना चाहती है न माता जी को अप्रसन्न करना चाहती है। न जाने क्यों उसे अब भी संदेह है कि माता जी उसे अपनी वधू नहीं बनाना चाहतीं।.........वह स्त्री नहीं है, केवल एक कल्पना है, भावों और आकांक्षाओं से भरी हुई। तुम उसका रसास्वादन कर सकते हो, पर उसे अनुभव नहीं कर सकते, उसे प्रत्यक्ष नहीं देख सकते। कवि अपने अन्तरतम भावों को व्यक्त नहीं कर सकता। वाणी में इतनी सामर्थ्य नहीं। सोफिया वही कवि की अन्तरतम भावना है।" पृ० ४५६

सोफिया बुद्धिवादी है और इसीलिए यह स्वाभाविक है कि उसके मन में सन्देहवादी विचारधारा की जड़ें जम जाँय। अपनी माता या अपने दादा की भाँति वह धर्म पर अन्ध विश्वास नहीं रखती। धार्मिक गाथाओं और स्वयं महात्मा ईसा के जीवन से सम्बन्वित अलौकिक घटनाओं पर सहसा उसे विश्वास नहीं आता। इसी प्रकार ईसा के विचार आज के प्रतियोगिता

वाले युग में ठीक नहीं जँचते। देखिए—"सोफिया प्रभु सेवक के कमरे में बैठी हुई उनसे मसीह के इस कथन पर शंका कर रही थी कि गरीबों के लिए आसमान की बादशाहत है, और अमीरों का स्वर्ग में जाना उतना ही असम्भव है, जितना सूई की नोक में ऊँट का जाना।.........उसकी बुद्धि इस कथन की सार्थकता को न ग्रहण करती थी।........."सोफिया सत्यासत्य के निरूपण सदैव रत रहती थी। धर्मतत्वों को बुद्धि को कसौटी पर कसना उसका स्वाभाविक गुण था, और जब तर्क-बुद्धि स्वीकार न करे, वह केवल धर्म-ग्रन्थों के आधार पर किसी सिद्धान्त को न मान सकती थी।" पृ० २२

धर्म के सम्बन्ध में उसके विचार इतने क्रान्तिकारी हैं कि हम उनकी तुलना एंजिल और लेनिन के विचारों से ही कर सकते हैं। वह क्लार्क से प्रेमाभिनय नहीं करना चाहती परन्तु उसकी माता उसे जब इसके लिए मजबूर करती है, तो उसे बड़ा दुख होता है। ईसाई धर्म से उसका विश्वास उठ जाता है। वह अपने भाई प्रभु से कहती है—"मैं तुमसे सत्य कहती हूँ, धर्म का रहा-सहा महत्व भी मेरे दिल से उठ गया। मूर्खों को यह कहते लज्जा नहीं आती कि मजहब खुदा की बरकत है। मैं कहती हूँ, यह ईश्वरीय कोप है—दैवी वज्र है जो मानव जाति के सर्वनाश के लिए अवतरित हुआ है।"

(पृ० १८८)

सोफिया के यह विचार बहुत से लोगों को आघात पहुँचाने वाले हो सकते हैं। परन्तु यह सच है कि धर्म की आड़ में कितने कुकृत्य होते हैं। वही लोग जो गीता, रामायण, कुरान और बाइबिल पढ़ते हैं सबसे ज्यादा शोषण करते हैं। रंगभूमि के धर्म परायण व्यक्ति जैसे मिसेज सेवक ऐसे ही व्यक्तियों में हैं। वास्तव में सोफिया जैसे लोग सच्चे धर्म का पालन करते हैं। उनके आचरण और विचार एकरूप होते हैं। वह दिखावे के लिए प्रभुसेवक की भर्त्सना करती है। प्रभुसेवक उसे समझाता है कि माँ को संतुष्ट रखने के लिए धर्म पर विश्वास करो। पर वह स्पष्ट कहती है—"धर्म के विषय में मैं कर्म को वचन के अनुरूप ही रखना चाहती हूँ। चाहती हूँ, दोनों से एक ही स्वर निकलते। धर्म का स्वांग भरना मेरी क्षमता के बाहर है। आत्मा के लिए मैं संसार के

सारे दुःख झेलने को तैयार हूँ ।" पृ० २५

सोफिया स्वतंत्र विचारों की निर्भीक रमणी है । उक्त कथन से इस बात का प्रमाण मिलता है । वह माता-पिता से भी अपने विचार स्पष्ट कर देती है । इसके लिए उसकी माता उसकी शत्रु बन जाती है । उसे घर छोड़ कर कुँवर भरतसिंह के यहाँ शरण लेना पड़ता है परन्तु वह केवल उदर पालन के लिए अपने विचारों को छिपाती नहीं । सोफिया में विचार स्वातन्त्र्य का गुण दर्शन शास्त्र के अध्ययन से उत्पन्न हुआ है चिंतन ने उसकी अनुदारता को नष्ट कर दिया है । ईसाई होते हुए भी वह हिन्दू, बौद्ध और जैन धर्म ग्रन्थों का गहन अध्ययन करती है । वह किताबी कीड़ा न बन कर खुले मन से पुस्तकें पढ़ती है और जीवन के गहन प्रश्नों पर विचार करती है । "मनन और अवलोकन से उसका चित्त शांत होता हो, यह बात नहीं थी । नाना प्रकार की शंकाएँ नित्य उपस्थित होती रहती थीं—जीवन का उद्देश्य क्या है ? प्रत्येक धर्म में इसके विविध उत्तर मिलते थे; पर एक भी ऐसा न था जो मन में बैठ जाय । ये विभूतियाँ क्या हैं, क्या भक्तों की कपोल कल्पनाएँ हैं ? सबसे जटिल समस्या यह थी कि उपासना का उद्देश्य क्या है ? ईश्वर क्यों मनुष्यों से अपनी उपासना करने का अनुरोध करता है ? इससे उसका क्या अभिप्राय है आदि ।" (पृ० ७८) वास्तव में सोफिया दर्शन की इन जटिल गुत्थियों को सुलझाते सुलझाते उस अवस्था में पहुँच गयी जिसे केवल सिद्ध जन ही प्राप्त कर पाते हैं ।

सोफिया में भावात्मकता भी है । इसीलिए कृष्ण का चरित्र उसको आकर्षक जान पड़ने लगता है । कृष्ण-प्रेम में जो आत्म समर्पण और तन्मयता है, वह उसकी अनुराग वृत्ति के अनुकूल बैठता है । इसलिए मूर्ति-पूजा के प्रति उसके मन में श्रद्धा पैदा हो जाती है; उसे मूर्तिपूजा के विधान का रहस्य ज्ञात हो जाता है । वह इंदु से कहती है—"मैं मूर्तिपूजा को सर्वथा मिथ्या समझती थी । मेरा विचार था कि ऋषियों ने केवल मूर्खों की आध्यात्मिक शांति के लिए यह व्यवस्था कर दी है । लेकिन इस ग्रन्थ में मूर्तिपूजा का समर्थन ऐसी विद्वत्तापूर्ण युक्तियों से किया गया है कि आज से मैं

मूर्तिपूजा की कायल हो गयी।" (पृ० ७१९)। इसी प्रकार सोफी विनय से कहती है—"मैं भी हिन्दू धर्म पर जान देती हूँ। जो आत्मिक शांति मुझे और कहीं न मिली, वह गोपियों की प्रेमकथा में मिल गयी। वह प्रेम का अवतार, जिसने गोपियों को प्रेम-रस का पान कराया, जिसने कुब्जा का डोंगा पार लगाया, जिसने प्रेम के रहस्य दिखाने के लिए ही संसार को अपने चरणों से पवित्र किया, उसी की चेरी बन कर जाऊँगी तो वह कौन सच्चा हिन्दू है, जो मेरी उपेक्षा करेगा ?" (पृ० २८६) स्वयं विनय एक स्थान पर कहता है—"हमारे धर्म का जितना ज्ञान उसे (सोफिया) है, उतना किसी पंडित को भी न होगा। वह हमारे यहाँ की देवियों से किसी भाँति कम नहीं।" (पृ० ३२६)

जिस प्रकार सोफी का विवाह विनय से न हो सकने पर भी हम उसे एक आदर्श पत्नी के रूप में ही देखते हैं, उसी प्रकार ईसाई होने पर भी हम उसे किसी पवित्र हिंदू ललना से कम नहीं समझते। उसका एकनिष्ठ प्रेम, सतीत्व-रक्षा और अंत में विनय की मृत्यु के बाद ही सतियों की भाँति इस जीवन का अंत कर देना, उसके पतिव्रत धर्म का प्रमाण है। सम्भवत: प्रेमचंद जी ने प्रकारान्तर से यह सिद्ध किया है कि हिन्दू धर्म पर आस्था रखनेवाली अन्य जातियों की कुमारियों को वरण न करना हमारी बहुत बड़ी कमज़ोरी है जिसका प्रतीक जान्हवी है।

सोफी के चरित्र का सौन्दर्य उसके प्रेम में प्रतिबिम्बित है। वह प्रेम को वासना से अलग रखना चाहती है। उसके शब्दों में प्रेम की सुंदरतम व्याख्या हुई है। वह प्रभु सेवक से कहती है कि विनय का प्रेम उसके लिए वरदान है क्योंकि उससे उसके मन में उदात्त भावों की उत्पत्ति हुई है। वह कहती है—"प्रेम और वासना में उतना ही अंतर है जितना कंचन और काँच में। प्रेम की सीमा भक्ति से मिलती है और उनमें मात्र का भेद है। भक्ति में सम्मान का और प्रेम में सेवाभाव का आधिक्य होता है। प्रेम के लिए धर्म की विभिन्नता कोई बंधन नहीं है। ऐसी बाधायें उस मनोभाव के लिए हैं, जिसका अंत विवाह है, उस प्रेम के लिए नहीं, जिसका अंत बलिदान है।" (पृ० ९३)

उसके प्रेम को शुद्ध बौद्धिक कहना अनुचित होगा। उसमें भावना भी है, जो प्रायः उसके मन को झकझोरा करती है। वह कारागार में पड़े विनय से कहती है—"प्रेम एक भावनागत विषय है, भावना ही से उसका पोषण होता है भावना ही से वह जीवित रहता है, और भावना ही से लुप्तहो जाता है। वह भौतिक वस्तु नहीं है। तुम मेरे हो, यह विश्वास मेरे प्रेम को सजीव और सतुष्ट रखने के लिए काफी है।" (पृ० २८८) सोफी के प्रेम को ठंडा कहना अनुचित होगा। उसके प्रेम में उष्णता है, आवेग है जिससे उसका हृदय बार-बार आन्दोलित हो जाता है। उसके प्रेम का महत्व उस संघर्ष में है, जो आठों पहर उसके हृदय में होता रहता है। विनय का प्रेम पाकर वह योगिनी बनकर एकांत तपस्या करती, तो उसके प्रेम की सांसारिकता और आदर्श की व्यावहारिकता नष्ट हो जाती। प्रेम के साथ उसे वासना का भूत भी आ घेरता है। विनय के पत्र वह न पढ़ने का निश्चय करती है पर वह डिग जाती है। विनय को देखने के लिए वह आँधी की भाँति दौड़ कर सैकड़ों मील दूर उदयपुर जा पहुँचती है। विनय को अपमानित करके भी वह उसे पाने के लिए बनारस लौट आती है। प्रेम की यह आतुरता भावनागत प्रेम में ही पायी जा सकती है।

सोफी में दया, न्याय भावना, नेतृत्व जैसे गुणों के साथ साहित्य रचना की प्रतिभा भी वर्तमान है। यदि वह सूरदास जैसे अन्धे पर दया दिखाती है, उसकी जमीन बचाने के लिये क्लार्क को तैयार करती है और अपने पिता से बैर ठानती है, सेवक दल का नेतृत्व अपने हाथ में लेकर जनता की शिकायतों को दूर करने के लिए अधिकारियों से लड़ती है, तो वह प्रभु सेवक की कविताओं की आलोचना करके निर्णय भी देती और स्वयं एक ऐसे प्रहसन की रचना भी करती है जो हास्य-साहित्य की सफल कृति मानी जा सकती हो।

इन तमाम दैवी गुणों से विभूषित होते हुये भी सोफिया मानवी है। उसे यदि किसी ने पहचाना तो इंद्रदत्त ने। वह उसके आत्माभिमान का उल्लेख न करता हुआ कहता है—"सोफिया न कवि-कल्पना है और न कोई गुप्त रहस्य; ही एक देवी है, न देवता; न अप्सरा है, न परी; जैसी अन्य स्त्रियाँ होती हैं, वैसी

स्त्री वह भी है, वही उसके भाव हैं, वही उसके विचार हैं। आप लोगों ने कभी विवाह की तैयारी की, कोई भी ऐसी बात की जिससे मालूम हो कि आप लोग विवाह के लिए उत्सुक हैं ? तो जब आप लोग स्वयं उदासीन हो रहे हैं तो उसे क्या गरज पड़ी है कि इसकी चर्चा करती फिरे।......उसे लाख विनय से प्रेम हो, पर अपने मुँह से तो विवाह की बात न कहेगी।...... इसलिये अपनी लाज की रक्षा करने को उसने यही युक्ति निकाल रक्खी है।" (पृ० ४५७)

नारी का सहज अभिमान सोफिया में है। उस पर आघात वह सहन नहीं कर पाती। उसकी रक्षा के लिए वह त्याग का कवच यदि धारण करती है, तो इससे उसकी उच्च हृदयता ही प्रकट होती है, चाहे वह साधारण नारी ही क्यों न रही हो।

मिसेज सेवक—सोफिया की माता मिसेज सेवक अनुदार ईसाई समाज की प्रतिनिधि हैं। उन्हें ईसाई धर्म की श्रेष्ठता और ईसाई समाज की महानता पर अगाध विश्वास है। भारतीय संस्कृति और समाज से घोर घृणा है। प्रेमचन्द जी ने प्रारम्भ में ही कह दिया है—"चेहरे (मिसेज सेवक के) पर झुर्रियाँ पड़ गयी थीं और उससे हृदय की संकीर्णता टपकती थी जिसे सुनहरी ऐनक भी न छिपा सकती थी।" (पृ० २)। इसका प्रमाण प्रथम परिच्छेद में ही मिल जाता है, जब सूरदास के वैराग्यपूर्ण विचारों को सुनकर कहती हैं— "हिन्दुओं ने ये बातें यूनान के (Stoics) से सीखी हैं; किन्तु यह नहीं समझते कि इनका व्यवहार में लाना कितना कठिन है।" (पृ० ६)

भारतीयों को मिसेज सेवक नीच और पतित समझती हैं। उनके मत में भारतीय विश्वासघाती होते हैं। जब राजा महेन्द्र सिंह जॉन सेवक को अन्धे सूरदास की जमीन दिलाने से इनकार कर देते हैं, तो वे सारा दोष भारतीय समाज के सर पर मढ़ते हुए कहती हैं—"देख ली हिन्दुस्तानियों की सज्जनता। फूले न समाते थे। अब तो मालूम हुआ कि ये लोग कितने कुटिल और विश्वास घातक हैं।......पक्षपात तो इन लोगों की घुट्टी में मिला होता है, और यह उन बड़े-बड़े आदमियों का हाल है, जो अपनी जाति के नेता समझे जाते हैं, जिनकी उदारता पर लोगों को गर्व है।" (पृ० १०४) उनके विचार में ईसाई

अंग्रेज शासकों के धर्मावलम्बी होने के कारण, उच्च वर्ग के लोग हैं। अंग्रेजों के साथ मिलने-जुलने और उसी समाज में मिल जाने को वे सदा उत्सुक रहती थीं। अतः यह स्वाभाविक था कि वे भारतीय समाज से घृणा करें। उनकी विचारधारा का विश्लेषण प्रेमचन्द जी ने स्वयं किया है :—"मिसेज सेवक को हिन्दुस्तानियों से चिढ़ थी। यद्यपि इसी देश के अन्न-जल से उनकी सृष्टि हुयी थी पर अपने विचार में हजरत ईसा की शरण में आकर, वह हिन्दुस्तानियों के अवगुणों से मुक्त थी। उनके विचार में यहाँ के आदमियों को खुदा ने सज्जनता, सहृदयता, उदारता और शालीनता आदि दिव्य गुणों से सम्पूर्णतः वंचित कर रक्खा है। वह योरोपीय सभ्यता की भक्त थीं और आहार-व्यवहार में उसी का अनुसरण करती थीं। खान-पान, वेष-भूषा, रहन-सहन सब अंग्रेजी थी; मजबूरी केवल अपने साँवले रंग से थी।...... उनके जीवन में एकमात्र अभिलाषा थी कि हम ईसाइयों की श्रेणी से निकल कर अंगरेजों में जा मिलें, हमें लोग साहब समझें, हमारा रब्त-जब्त अंगरेजों से हो, हमारे लड़कों की शादियाँ ऐंग्लोइंडियन या कम से कम उच्च श्रेणी के यूरेशियों से हों।"

(पृ० १०४)

मिसेज सेवक की महत्वाकांक्षा मि० सेवक की महत्वाकांक्षा से भिन्न थी। पति को धन की आराधना से सुख मिलता था तो मिसेज सेवक को सामाजिक उच्चता की प्राप्ति से। इसीलिए वे सोफिया को उच्च परीक्षा दिलाकर जिले के अंग्रेज उच्चाधिकारी क्लार्क से ब्याह कराना चाहती हैं। इस महत्वाकांक्षा को पूरा करने के लिए वे अपनी पुत्री सोफिया का सुख, सौभाग्य और स्नेह बड़ी निष्ठुरता से बलिदान कर देती हैं। सोफिया के दृढ़ चरित्र को समझते हुए वे उसे प्रेम मार्ग से विरत करना चाहती हैं। सोफी की मृत्यु से उन्हें उतना दुख नहीं होता, जितना अपनी विफलता से। अपनी महत्वाकांक्षा के दुखद अंत का आघात वे सँभाल नहीं पातीं और उनके जीवन में अभूतपूर्व परिवर्तन आ जाता है। न तो वे गिरजे जाती हैं और न दावतों में, जिनके प्रति उनके मन में बड़ी निष्ठा थी। यही नहीं, अंत में वे पागल भी हो जाती हैं। मिसेज सेवक उन माता-पिताओं की प्रतिनिधि हैं, जो अपनी महत्वाकांक्षाओं

की पूर्ति के लिए सन्तानों के जीवन से खेलते हैं।

मिसेज सेवक को धर्म का सच्चा स्वरूप चाहे न मालूम रहा हो पर वे धर्म के नाम पर जान देने को तैयार रहती हैं। उनकी इस अंध श्रद्धा ने उन्हें अनुदार और कट्टर बना दिया था। इसका एक परिणाम यह भी हुआ, कि उनके हृदय में मातृ-स्नेह जैसा भाव भी नष्ट हो गया। सोफिया और प्रभु सेवक के लालन-पालन में कष्ट उठाने के उपरान्त वे यही आशा करती हैं कि धर्म के मामले में यह लोग उनके अनुगामी होंगे। वे प्रभु से कहती हैं—"यह मत समझो कि मुझे संतान से प्रेम नहीं है। खुदा जानता है, मैंने तुम्हारी खातिर क्या-क्या कष्ट नहीं झेले .... इतने आत्म समर्पण से पाली हुई संतान को जब ईश्वर से विमुख होते देखती हूँ, तो दुख और क्रोध से बावली हो जाती हूँ। .... मुझे अपना मसीह सारे संसार में, यहाँ तक कि अपनी जान से भी प्यारा है।" पृ० ४१

सोफिया को जब वे ईसा के प्रति शंका प्रकट करते देखती हैं, तो मिसेज सेवक अधीर हो उठती हैं। वे उसकी बुरी तरह भर्त्सना करते हुए कहती हैं कि तुझे ईश्वर ग्रंथ के हर शब्द पर ईमान लाना होगा। सोफिया के प्रतिवाद करने पर वे क्रोध से पागल हो उठती हैं और उसे विधर्मिणी तथा भ्रष्टा कहते हुए उसे अपनी सन्तान न मानने तथा घर से निकालने की धमकी देती हैं। इसके बाद ही, वे उसके कमरे में घुसकर बौद्धधर्म और वेदान्त के ग्रन्थ निकाल कर फेंकती हैं और पैरों तले कुचलती हैं। मिसेज सेवक का यह व्यवहार उनकी संकीर्णता का द्योतक है।

मिसेज सेवक मिजाज की तेज हैं और अपनी बात पर अड़े रहना मुनासिब समझती हैं। अपने परिवार में वे सब पर रोब कायम रखती हैं। सोफिया को वे कभी सच्चे हृदय से वापस नहीं बुलातीं। हर एक को फटकार देना उनकी आदत है। किसी की श्रेष्ठता उन्हें सहन नहीं होती। रानी जान्हवी का वैभव देखकर उनका दिल जल उठता है तो दूसरी ओर उन पर रोब जमाने के लिए बूढ़ी आयु में भी वे सारे गहने पहन कर उनके यहाँ जाती हैं। उनका व्यवहार मिथ्या शिष्टाचार और आडम्बर से पूर्ण है। उनके

प्रति हमारे मन में न आदर पैदा होता है और न उनकी करुण दशा पर सहानुभूति ।

रानी जान्हवी—कुँवर भरतसिंह की पत्नी रानी जान्हवी एक बात में मिसेज सेवक से बहुत मिलती जुलती हैं । वे उन्हीं की भाँति अपनी सन्तान से अपनी इच्छाओं को पूरा कराना चाहती हैं । वे क्षत्राणी थीं और उनके मन में महाभारत और राजपूतों की कहानियाँ पढ़कर वीरत्व और देशानुराग के भाव जाग्रत हो उठे । वे उन देवियों के समकक्ष बैठना चाहती थीं जिन्होंने उच्चादर्शों के लिए पति और पुत्र का बलिदान कर डाला था । उनकी यह इच्छा पूरी न हो सकती थी क्योंकि उनके पति कुँवर भरतसिंह बिलासी और भोगी थे । उनके मन में यह इच्छा थी कि उनका पुत्र उनकी इच्छा पूरी करे । विनय ने उनकी कोख में जन्म लिया और प्रारंभ से ही उन्होंने उसको अपनी इच्छापूर्ति का साधन बना डाला । उसका लालन-पालन इस तरह किया कि विनय पूरा सन्यासी बन बैठा ।

रानी जान्हवी में प्राचीन नारी आदर्शों के प्रति बड़ी श्रद्धा है । वह अपनी पुत्री इन्दु को सदैव पति की अनुगामिनी और आज्ञापालिका बनने का उपदेश देती रहती हैं । इंदु अपने पति से सोफी को साथ ले चलने का आग्रह करती है जिसे वे ठुकरा देते हैं । वह जब रानी साहब से शिकायत करती है, तो वे स्पष्ट कहती हैं कि वह तुम्हारे स्वामी हैं, उनकी सभी बातें तुम्हें माननी पड़ेंगी । "मैं तुम्हें पति-परायणा सती देखना चाहती हूँ जिसे अपने पुरुष की आज्ञा या इच्छा के सामने अपने मानापमान का जरा भी विचार नहीं होता । अगर वह तुम्हें सर के बल चलने को कहें, तो भी तुम्हरा धर्म है कि सर के बल चलो ।" (पृ० ८२) ।

रानी जान्हवी में अपार दृढ़ता है । वे अपने निश्चय पर अडिग रहती हैं । उनके स्वभाव के सम्बन्ध में इन्दु कहती है—"नहीं, सोफी, अम्मा जी का स्वभाव बिल्कुल निराला है । जिस बात से तुम्हें अपने निरादर का भय है, वही बात अम्मा जी के आदर की वस्तु है, वह स्वयं अपनी माँ से किसी बात पर नाराज हो गयी थीं, तबसे मैके नहीं गयीं । नानी मर गयीं पर अम्मा ने

उन्हें क्षमा नहीं किया। सैकड़ों बुलावे आये, पर उन्हें देखने तक न गयीं।" (पृ० ३७)। उनकी दृढ़ता का परिचय हमें विनय के सम्बन्ध में देखने को मिलता है। ज्योंही उन्हें पता चलता है कि विनय और सोफी प्रेम के चक्कर में पड़ गये हैं, वे विनय को उदयपुर जाने का आदेश देती हैं। सोफी को विनय से मन हटाने का आदेश देती हुई कहती हैं कि मैं अपने पुत्र को निस्वार्थ सेवक बनाना चाहती हूँ। अगर वह देश- हितमें काम आवे तो मुझे प्रसन्नता होगी। विनय की मृत्यु पर वे उसी दृढ़ता और साहस का परिचय देती हैं, जिन्हें हम प्राचीन काल की राजपूत महिलाओं में पाते हैं। जब सब लोग रो रहे थे, "रानी की आँखों में आँसू न था, मुख पर शोक का चिन्ह न था। उनकी आँखों में गर्व का मद छाया हुआ था, मुख पर विजय की आभा झलक रही थी।" पृ० ५०१

रानी जान्हवी में इतना अदम्य साहस इसलिए था कि वे प्राचीन राजपूत वीरों और स्त्रियों के आदर्शों से अनुप्राणित थीं। उन्हें अपने धर्म ग्रन्थों पर विश्वास था जिनमें यह बताया गया है कि आत्मा अमर है। मृत्यु केवल पुनर्जीवन की सूचना है, एक उच्चतर जीवन का मार्ग है। इसी से विनय की मृत्यु को वे सहर्ष स्वीकार करती हैं। रानी जान्हवी का यह साहस हमें आश्चर्य में डाल देता है और सहसा यह विश्वास करना कठिन हो जाता है कि ऐसी माता भी कोई हो सकती है जो पुत्र की मृत्यु पर दो आँसू भी न बहाये। क्या उनमें मातृ हृदय न था ? नहीं जान्हवी के मातृ हृदय का परिचय हमें रंगभूमि में मिलता है। उदयपुर से जब विनय का कोई समाचार नहीं मिलता और सोफी अकेली उनके पास लौट कर आती है, तो जान्हवी के धैर्य का बाँध टूट जाता है। वे सोफी के सामने अपने को कोसने लगती हैं और विनय के जीवन को कष्टमय बनाने के लिए अपने को उत्तरदायी मानती हैं। वह अपने को हत्यारिन और अभागिन कहती हैं। दूसरे क्षण, ज्योंही विनय उनके सामने आ उपस्थिति होते हैं, वे हर्ष से पागल हो उठती हैं। वे उसे छाती से लगा लेती हैं। स्नेह का इतना स्वाभाविक ढंग से प्रदर्शन उन्होंने कभी नहीं किया था। वास्तव में वात्सल्य प्रदर्शन की यह घटना बताती है कि जान्हवी

में मानवीय भाव वर्तमान थे और वे केवल एक पाषाण हृदया क्षत्राणी न थीं।

इन्दु :—विनय की बहन इन्दु एक भारतीय नारी के ऐसे पहलू का प्रतीक है, जो दमन और पुरानी विचारधारा के प्रभाव से अपनी चमक खो देता है। माता-पिता के नियंत्रण में पली और परतंत्रता की बेड़ी में जकड़ी हुई इन्दु को पति की प्रतिध्वनि मात्र देख कर हमारा मन सहानुभूति से भर जाता है परन्तु दूसरे क्षण ही उसमें विद्रोह की भावना देख कर यह निश्चय हो जाता है कि माता की शिक्षा के बोझ से दबा हुआ उसका व्यक्तित्व टूटा नहीं है। इन्दु ने दो प्रकार की शिक्षा पाई थी। घर में उसकी माता ने उनका लालन-पालन भारतीय संस्कारों के अनुरूप किया था। उसे पति की आज्ञानुकारिणी बनने और उसके व्यक्तित्व के आगे अपने व्यक्तित्व को मिटा देने की शिक्षा दी गयी थी। जीवन का कोई अनुभव उसे न था। दया और धर्म की वह मूर्ति बना दी गयी थी। दूसरी ओर उसे नैनीताल पढ़ने के लिए भेजा गया जहाँ वह सोफिया के साथ-साथ पढ़ती है। वहाँ रह कर वह स्वतंत्र विचारों का पक्ष ग्रहण करती है। फल यह होता है कि उसे कर्तव्याकर्तव्य का निर्णय करना कठिन जान पड़ता है।

इंदु का दाम्पत्य जीवन दुखी रहता है क्योंकि वह दो विरोधी संस्कारों के प्रभाव से न तो पति की आज्ञा का पालन ही कर पाती है और न स्वतंत्र निर्णय के अनुसार चल पाती है। उनके पति राजा महेन्द्रसिह उसे अपनी लौंडी समझते हैं ; उसके विचारों की वे कभी कद्र नहीं करते। उसकी इच्छाओं का उनकी दृष्टि में कोई मूल्य नहीं है। पढ़ी लिखी इन्दु को इससे असंतोष होता, वह लड़ जाती पर दूसरे ही क्षण उसका हृदय अनुताप से भर जाता है। उसे अपनी माता की सीख याद आ जाती है। इन्दु को विदा कराने के लिए उसके पति आते हैं और वह सोफिया को साथ चलने का निमंत्रण दे देती है। महेन्द्रसिह सोफिया को साथ ले जाने से इनकार कर देते हैं। इन्दु मन मसोस कर रह जाती है। उसकी माँ भी पति का कहना मानने के लिए मजबूर करती हैं। सेवकदल गढ़वाल जाने वाला था। इन्दु उसे बिदा देने के लिए स्टेशन जाना चाहती है पर राजा महेन्द्रसिह इसमें अपनी बदनामी समझ कर

उससे न जाने के लिए कहते हैं। वह इसे घोर अत्याचार और अन्याय समझती है। वह स्टेशन जाती है पर रास्ते से लौट आती है क्योंकि उसको अपने पति की इच्छा के सामने झुकने की शिक्षा याद आ जाती है। उसे इतनी आत्मग्लानि होती है कि वह राजा साहब से दंड की याचना भी करती है। पति से झगड़ने पर हर बार उसके मन में पश्चात्ताप होता है—"यह उनका कसूर नहीं मेरा कसूर है। मैं क्यों उन्हें अपने आदर्श के अनुसार बनाना चाहती हूँ।" पृ० १७७

माता की शिक्षा के विरुद्ध उसका व्यक्तित्व बार-बार विद्रोह करता है। पर, उसमें इतनी शक्ति नहीं कि उस बोझ को उतार फेंके। उसके हृदय का संघर्ष देखिए :—"इनका सम्मान कैसे करूँ? इन्हें अपना उपास्यदेव कैसे समझूँ? नहीं जानती, इस अभक्ति के लिए क्या दंड मिलेगा। मैं अपने पति की पूजा करना चाहती हूँ, पर दिल पर काबू नहीं! भगवन्! तुम मुझे इस कठिन परीक्षा में क्यों डाल रहे हो।" पृ० १७८

आगे चल कर इन्दु के मन में विद्रोह की भावना जोर पकड़ती जाती है। वह पति की इच्छा के विरुद्ध सूरदास को जेल से छुड़ाने के लिए चन्दा देती है और उसकी मृत्यु के बाद उसकी मूर्ति स्थापित कराने के लिए धन एकत्र करती है। अन्त में, नौबत यहाँ तक आती है कि माता के कहने पर भी वह पति को त्याग कर चली आती है। उसे अपने पति से घृणा हो जाती है क्योंकि उसी के अविवेकपूर्ण कृत्य के कारण विनय का जीवन नष्ट हो गया।

इन्दु को सोफी से सच्चा स्नेह है। ऐसी मैत्री संसार में कम देखने को मिलती है। वह सोफी का हृदय से आदर करती है और जब वह उसके घर में रहती है, तो उसकी सुख-सुविधा का पूरा ध्यान रखती है। उसके स्वभाव में सहज सरलता और दया है। उसकी प्रशंसा करते हुए रानी जान्हवी ने जो कुछ कहा है, उसमें अत्युक्ति नहीं है:—"ऐसी सरल बालिका संसार में न होगी।......मेरी बच्ची का वहाँ जरा भी जी नहीं लगता; महीने भर रह जाती है, तो स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। इतनी बड़ी रियासत है, महेन्द्र सारा

बोझ उसी पर डाल देते हैं।.........बेचारी आय व्यय का हिसाब लिखते-लिखते घबरा जाती है।...यहाँ मैं इन्दु को कभी कड़ी निगाह से भी नहीं देखती, चाहे घी का घड़ा लुढ़का दे। वहाँ जरा सी बात पर राजा साहब की घुड़कियाँ सुननी पड़ती हैं। बच्ची से बात नहीं सही जाती। जवाब तो देती नहीं— और यही हिन्दू स्त्री का धर्म है—पर रोने लगती है। वह दया की मूर्ति है। कोई उसका सर्वस्व खा जाय, लेकिन ज्योंही उसके सामने रोया बस उसका दिल पिघला।" पृ० ८५

सुभागी—भैरों पासी की पत्नी सुभागी वास्तव में अभागी ही थी। उसकी बुढ़िया सास ने उसका नाम अभागी ही रखा था। अत्याचार से पीड़ित स्त्री-समाज का प्रतिनिधित्व करने वाली सुभागी का प्रतिदिन कैसे बीतता था, इसका वर्णन सुनिये :—"बहू ने जरा चिलम भरने में देर की, चारपाई बिछाना भूल गयी, या मुँह से निकलते ही उसका पैर दबाने या सिर की जुएँ निकालने न आ पहुँची, तो बुढ़िया उसके सिर हो जाती। उसके बाप और भाइयों के मुँह में कालिख लगाती, सबों की दाढ़ियाँ जलाती और उसे गालियों ही से सन्तोष न होता, ज्यों ही भैरों दूकान से आता, एक-एक की सौ-सौ लगाती। भैरों सुनते ही जल उठता, कभी जली-कटी बातों से और कभी डंडे से स्त्री की खबर लेता।" पृ० १०९

सुभागी की इस दीन-हीन अवस्था में कोई सहायक नहीं होता। एक तो वह एक पुरुष की सम्पत्ति थी, दूसरे वह सुन्दर थी। उसे कौन आश्रय देता ? इस दुर्दशा में सूरदास की झोपड़ी में आश्रय मिलता है। यह सुभागी के लिए और भी दुखद बात होती है क्योंकि उस पर दुश्चरित्रा होने का कलंक लग जाता है। साथ में सूरदास भी बदनाम होता है। सुभागी को सूरदास से सच्ची सहानुभूति हो जाती है। वह उसे बड़े भाई के समान मानती है और सच्चे हृदय से उसकी हितकामना करती है।

सुभागी मे कृतज्ञता का भाव वर्तमान है। सूरदास ने उसकी रक्षा की, उसे आश्रय देकर पतित होने से बचाया। भैरों शत्रुतावश सूरदास का धन चुरा ले जाता है। यह जान कर सुभागी वह धन वापस लाने की प्रतिज्ञा

करती है। केवल इसलिए वह वापस जाकर भैरों के घर रहने लगती है यद्यपि उसने निश्चय कर लिया था कि वह भैरों का मुँह भी न देखेगी। वह भैरों की मार सहती है पर एक दिन सूर की चिरपरिचित रुपये की पोटली उसके हाथों में लाकर धर देती है। सूरदास ने वह धन भैरों को लौटा दिया और यह भी बता दिया कि सुभागी ने उसे वह पोटली ला दी थी। परिणाम यह हुआ कि सुभागी पर मार पड़ी और घर से निकाल दी गयी। सुभागी ने यह सारे कष्ट हँसते-हँसते सह लिये क्योंकि वह सूरदास के प्रति कृतज्ञ थी :

सुभागी सती-साध्वी स्त्री है। सूरदास को उसके चरित्र पर श्रद्धा है। वह कहता है कि "सुभागी पर जो कलंक लगायेगा, उसका भला न होगा। वह स्त्री है, सती को पाप लगा कर कोई सुख की नींद नहीं सो सकता।" उसके सतीत्व की रक्षा के लिए सूरदास उसे आश्रय देता है अन्यथा वह मिल के मजदूरों के हाथ अपनी इज्जत बेचने को बाध्य हो जाती। वास्तव में वह दृढ़ चरित्र की स्त्री है अन्यथा भरण-पोषण की समस्या वह सरलता से हल कर लेती। सुभागी ने अपने चरित्र की रक्षा जिन कठिनाइयों के बीच की है, उससे उसके स्वभाव का पता चल जाता है।

सुभागी में त्याग की भावना स्पष्ट दिखाई देती है। जब सूरदास पर भैरों मुकदमा चलाता है, तो वह सूरदास को बचाने के लिए उसके घर से चले जाने का निश्चय करती है। वह नहीं चाहती कि सूरदास की बदनामी हो या गुण्डों के हाथों उसे कष्ट उठाना पड़े। सुभागी में स्वार्थपरता का नाम-निशान नहीं है। यह सत्य अन्त में भैरों के आगे प्रकट होता है। वह सुभागी के निष्कलंक चरित्र को पहचानता है और उसे पुनः गृहिणी पद प्राप्त हो जाता है।

कुल्सुम—ताहिर की पत्नी कुल्सुम कुछ अर्थों में उसी प्रकार अभागी है, जिस प्रकार सुभागी है। उस पर शारीरिक अत्याचार तो नहीं होता पर मानसिक प्रपीड़न में वह सुभागी के समान ही है। कुल्सुम भी उपेक्षिता है। उसके बच्चे भूखों मरते हैं पर ताहिर अली अपनी विमाताओं का मुँह ताकते हैं। उसकी राय का उनकी नजरों में कोई महत्व नहीं है। विमाताओं के

व्यंग्य बाणों से कुलसुम का हृदय छलनी हो जाता है पर उसमें वही सहन-शीलता है, जो पर्दे में रहने वाली उपेक्षिता नारियों में पायी जाती है। बजरंगी के प्रहार से जब ताहिर अली घायल हो जाते हैं, तो जैनब और रकिया उस को ताने देती हुई कहती हैं—"बहन, तुम्हारा दिल भी गजब का है। शौहर का यहाँ बुरा हाल हो रहा है और तुम यहाँ मजे में बैठी हो। हमारे मियाँ के सिर में जरा सा दर्द होता था, तो हमारी जान सूख जाती थी। आजकल की औरतों का कलेजा सचमुच पत्थर का होता है।" पृ० १००

वास्तव में कुल्सुम को अपने पति से अगाध प्रेम है परन्तु लज्जावश विमाताओं के सामने पति की सेवा नहीं कर पाती। "बेचारी कुलसुम दरवाजे पर खड़ी रो रही थी। पति की ओर उससे ताका भी न जाता था।........ हृदय में शूल उठ रहा था, पर पति के मुख की ओर ताकते ही उसे मूर्छा आने लगती थी, दूर खड़ी थी, यह विचार भी मन में उठ रहा था कि ये सब आदमी अपने मन में क्या कहते होंगे। इसे पति के प्रति जरा भी प्रेम नहीं है, खड़ी तमाशा देख रही है।" वास्तव में भारतीय स्त्री का दुर्भाग्य है कि परिवारों में पति के प्रति स्वतन्त्र और खुले हृदय से प्रेम प्रकट करने का उसे अधिकार नहीं दिया जाता। उसे अपनी भावनाओं का दमन करना ही पड़ता है।

कुल्सुम में सहनशीलता के साथ-साथ सन्तोष भी है। वह दो रोटियों पर बसर करने को तैयार है पर पति को आग में नहीं झोंकना चाहती। पांडेपुर की जमीन के झगड़े से डर कर वह पति को समझाती हुई कहती है—"तुम यह नौकरी छोड़ क्यों नहीं देते? यहाँ जान थोड़े देनी है। खुदा ने जैसे इतने दिन रोजी दी है, वैसे ही फिर देगा। जान तो सलामत रहेगी।" "न इतना मिलेगा न सही; इसका आधा तो मिलेगा। दोनों वक्त न खायेंगे, एक ही वक्त सही; जान तो आफत में न रहेगी।" कभी-कभी जब उसके मन में विद्रोह होता है, तो वह ताहिर को उनकी विमाताओं की कुचेष्टाओं के प्रति सचेत करती है क्योंकि उसे संसार की वास्तविकता का अनुभव है। वह जानती है कि ताहिर की कमाई से उनकी विमाताएँ घर भरती जा रही हैं। वह स्पष्ट कहती है—

"तुम समझते होगे कि वे तुम्हारी मोहताज हैं, मगर उन्हें तुम्हारी रत्ती भर परवाह नहीं। सोचती हैं जब तक मुफ्त में मिले अपने खजाने में क्यों हाथ लगावें। मेरे बच्चे पैसे-पैसे को तरसते हैं और वहाँ मिठाइयों की हाँडियाँ आती हैं, उनके लड़के मजे से खाते हैं। देखती हूँ, और आँखें बन्द कर लेती हूँ।" पृ० १०१

कुल्सुम के सन्तोष और सहनशीलता की यह पराकाष्ठा है और साथ ही यह उसके अनुभव का प्रत्यक्ष प्रमाण भी है। उसकी भविष्यवाणी कि आगे चल कर ताहिर के सौतेले भाई लड़-झगड़ कर अलग हो जायेंगे, सच निकलती है। ताहिर की विमाताओं की चालाकी के आगे कुल्सुम की एक नहीं चलती। उन की बढ़ती हुई आमदनी का लाभ उन्हीं को मिलता था। उदाहरण के लिये वे बकरी की तरह पान चबाया करती थीं पर कुल्सुम को एक बीड़ा भी मुश्किल से मिलता था।

कुल्सुम उन स्त्रियों में नहीं है जो अपने पतियों से नाना प्रकार की फरमाइशें करती हैं और उन्हें अनैतिक व्यापार के लिये मजबूर करती हैं। ठीक इसके विपरीत वह अपने पति को ईमान दुरुस्त रखने के लिये प्रेरित करती रहती है। ताहिर अली पर कर्ज लद जाता है और वे उसकी अदायगी के लिए मालिक की रोकड़ से धन लेना चाहते हैं। कुल्सुम उन्हें समझाती हुई कहती है—"खुदा के लिये कहीं यह गजब न करना। रोकड़ को काला साँप समझो। कहीं आज ही साहब रकम की जाँच करने लगे तो?" पत्नी की सलाह न मानने का दंड आगे चल कर ताहिर अली को भोगना पड़ता है और उन्हें जेल की हवा खानी पड़ती है।

कुल्सुम पति का विरोध करती है पर उसमें इतना साहस नहीं है कि वह उनसे वाद-विवाद करे। साधारण विरोध करके वह चुप हो जाती है और पति की आज्ञा मानने लगती है। कर्जा चुकाने के लिये वह तुरन्त अपनी लड़की के गले से तौक निकाल कर दे देती है। मानवीय स्वभाव के अनुसार वह केवल पति पर असफल क्रोध प्रकट करती है।

कुल्सुम का चरित्र विपत्ति की कसौटी पर चढ़कर खरा सोना सिद्ध

होता है। पति के जेल जाने पर वह सर्वथा असहाय बनकर साहसपूर्वक जीवन व्यतीत करने लगती है। वह और उसके बच्चे दो रोटियों के लिये तरसते हैं। फिर भी वह स्वावलम्बन द्वारा निर्वाह करती है। विपत्ति में अबला सबला बन जाती है। वह सिलाई-कढ़ाई करके विपत्ति के दिन काटती है पर किसी की सहायता नहीं स्वीकार करती। गोदाम का चौधरी ताहिर के छुड़ाने के लिए एकत्र किया हुआ धन कुल्सुम को देना चाहता है परन्तु वह उस धन को लेने से इनकार कर देती है। यह उसके उच्च विचारों का प्रमाण है। पति की अनुपस्थिति में "कुल्सुम ने ये विपत्ति के दिन सिलाई करके काटे थे। देहात की स्त्रियाँ उसके यहाँ अपने लिये कुरतियाँ, बच्चों के टोप और कुरते सिलातीं। कोई पैसे दे जातीं, कोई अनाज। उसे भोजन, वस्त्र का कष्ट न था। ताहिर अली अपनी समृद्धि के दिनों में भी इससे ज्यादा सुख न दे सके थे।" कुल्सुम की यह सफलता, उसके साहस का परिणाम है।

कुल्सुम का हृदय कितना निर्मल और विचार कितने ऊँचे थे, इस बात का प्रमाण उस समय मिलता है, जब ताहिर अली जेल से लौटकर आते हैं, और प्रतिहिंसा की अग्नि से जलते हुए माहिर अली को पाठ पढ़ाना चाहते हैं। कुल्सुम उन्हें क्षमाशील बनने का उपदेश देते हुए कहती है—"खुदा उन्हें खुश रक्खे, हमारी भी तो किसी तरह कट गयी, खुदा ने किसी न किसी हीले से रोजी पहुँचा तो दी। तुम सलामत रहोगे, तो हमारी आराम से गुजरेगी और पहले से ज्यादा अच्छी तरह। दो को खिलाकर खायेंगे। उन लोगों ने जो कुछ किया, उसका सबाब और अजाब उनको खुदा से मिलेगा।" पृ० ५२५

क्षमाशीलता और कर्त्तव्य परायणता की जैसी शिक्षा कुल्सुम अपने पति को देती है, उसे देखकर हमें उसकी मनस्विता, धर्मभीरुता और सदाशयता का अनुमान हो जाता है। ताहिर अली माहिर के मुँह पर स्याही पोत कर वापस आते हैं, तो वह उन्हें समझाते हुए कहती है—"तुमने बड़ी नादानी का काम किया। ......यह कालिख तुमने उनके मुँह पर नहीं लगायी, अपने मुँह पर लगायी है, तुम्हारे जिन्दगी भर के किये धरे पर स्याही फिर गयी। तुमने अपनी सारी नेकियों को मटियामेट कर दिया।...... उनकी परवरिश की, तो

कौन-सी हातिम की कब्र पर लात मारी । छी-छी ! इंसान किसी गैर के साथ भी नेकी करता है, तो दरिया में डाल देता है, यह नहीं कि कर्ज वसूल करता फिरे । तुमने जो कुछ किया खुदा की राह में किया, अपना फर्ज समझ कर किया । कर्ज नहीं दिया था कि सूद के साथ वापस ले लो । कहीं मुँह दिखाने के लायक न रहे, न रखा । अभी दुनियाँ उनको हँसती थी, देहातिनियाँ उनको कोसने दे जाती थीं । अब लोग तुम्हें हँसेंगे ।...... अब तक खुदा और रसूल की नजरो में वह खतावार थे, अब तुम खतावार हो ।" पृ० ५३०

उक्त विचार यह सिद्ध करते हैं कि कुल्सुम के हृदय में ईर्ष्या-द्वेष और कटुता के भाव केवल क्षणिक थे । मूल रूप से वह दैवीगुणों से विभूषित है और उसकी प्रकृति में साधुता है जिसे देखकर हमारा मन उसके प्रति आदर से भर जाता है ।

प्रेमचन्द जी की चरित्र-चित्रण कला

पात्रों की सृष्टि—प्रेमचन्द जी ने उपन्यासों में चरित्र-चित्रण विशेष महत्व रखता है, क्योंकि चरित्र-चित्रण ही उनके उपन्यासों की जान है । कुछ उपन्यास वस्तु-प्रधान होते हैं, तो कुछ चरित्र प्रधान । यह ठीक है कि उपन्यास घटना के बिना अपना अस्तित्व नहीं रख सकता परन्तु कथा-वस्तु पर अनावश्यक जोर देने से उपन्यास का महत्व घट ही जाता है । यदि घटनाओं की भरमार और तीव्रगति से बहती हुई कथा की धारा के साथ पाठक बहने लगे, तो पात्र गौण बन जाते हैं । ऐसे उपन्यासों से पाठक का मनोरंजन भले ही हो जाय, पर वह साहित्य में उत्तम श्रेणी के उपन्यास नहीं कहे जा सकते । इसके विपरीत जिन उपन्यासों में पात्रों की प्रधानता होती है; वे पात्र हांड़-मांस के बने हुए हमारे समान प्रतीत होते हैं, उन्हें साहित्य की स्थायी निधि समझा जाता है । पाठक इन पात्रों में अपना प्रतिबिम्ब देखता है । उनके साथ वह हँसता और रोता है । विलियम हेनरी हडसन ने अपनी पुस्तक 'इन्ट्रोडक्शन टु द स्टडी आफ इंगलिश लिट्रेचर' में लिखा है— "मुझे यह कहते हुए तनिक भी नहीं संकोच होता है कि उपन्यास के दो तत्वों (कथानक और चरित्र-चित्रण) में चरित्र ही प्रधान है और वे ही

उपन्यास उच्च कोटि के माने जाते हैं, जिनमें चरित्र-चित्रण पर अधिक जोर दिया गया है। "प्रेमचन्द जी के उपन्यासों में चरित्र-चित्रण पर विशेष बल दिया गया है। आदि से अन्त तक वे अपने पात्रों के शील-गुण निरूपण में संलग्न रहते हैं और वे उन्हें इस संसार का वास्तविक प्राणी बना देते हैं। रंगभूमि का 'सूरदास' अपनी समस्त विशेषताओं के साथ भारतीय गाँवों में पाया जाने वाला एक ऐसा अन्धा भिखारी है जिसे कहीं भी देखा जा सकता है। राजा महेन्द्र सिंह जैसे यशाभिलाषी जन सेवक, जॉन सेवक जैसे शोषक पूँजीवादी, कुँवर भरतसिंह जैसे विलासी, प्रभु सेवक जैसे कल्पनाशील नवयुवक, सोफिया जैसी विचारशीला नवयुवतियाँ, सुभागी जैसी पीड़ित नारियाँ, कुल्सुम जैसी गृह-लक्ष्मियाँ भारत में सुगमता के साथ देखी जा सकती हैं।"

जब हम यह कहते हैं कि प्रेमचन्द जी के उपन्यासों में चरित्र-चित्रण की प्रधानता है, तो उसका स्पष्ट तात्पर्य यह है कि वे घटनाओं के लिए पात्रों की सृष्टि नहीं करते प्रत्युत् वे घटनाओं को पात्रों के चरित्र-विकास का साधन मानते हैं। उनके उपन्यास में पात्र घटना का स्रोत हैं। पात्र घटना के हाथों कठपुतली नहीं बन जाते। प्रेमचन्द जी ने अपने पात्रों का निर्माण करने में इस बात का ध्यान रक्खा है कि वे कहीं भी निर्जीव न होने पावें। सजीव मनुष्य वह है जो परिस्थितिवश किसी घटना का शिकार हो जाय परन्तु उसके आगे हथियार न डाल दे। वह पराजित होते हुए भी उन पर विजय पाने की निरन्तर चेष्टा करता रहे। संकल्प शक्ति मानव-जीवन की प्रमुख विशेषता है। प्रेमचन्द के पात्रों में यह संकल्प शक्ति पूर्ण रूप से वर्तमान है। 'सूरदास' कितना निर्बल है अपनी परिस्थितियों की तुलना में, परन्तु वह अन्त तक संघर्ष करता है और एक प्रकार से मरते हुए भी अन्तिम रूप से विजयी हो जाता है। विनय और सोफिया भी सर्वत्र संघर्ष करते दिखायी देते हैं। उनका कोई भी पात्र संघर्ष में बेजान नहीं सिद्ध होता। घटनाओं से वे प्रभावित होते हैं परन्तु वे घटनाओं को नया मोड़ दे सकने में भी समर्थ रहते हैं।

ऐसे प्राणदान् पात्रों की सृष्टि कर सकना हँसी का खेल नहीं ।हैपात्रों में प्राण भरने की कला अज्ञात है। केवल प्रतिभावान् लेखक अपनी कल्पना मानवीय स्वभाव के सूक्ष्म ज्ञान और वाह्य परिस्थितियों की मन पर होने वाली प्रतिक्रियाओं के अनुभव से पात्रों की सृष्टि कर सकता है। श्रेष्ठ कोटि के पात्र तभी लेखक की कलम से जन्म लेते हैं, जब वह अपने पात्रों के साथ एकाकार हो जाता है। कभी कभी तो उपन्यासकार पात्रों की रचना करने के बाद स्वयं आश्चर्य में पड़ जाता है कि मैंने कैसे इन्हें बना डाला। पात्र स्वयं अपनी सत्ता प्राप्त कर लेते हैं और अपने बनाने वाले के हाथों की कठपुतली बनने से इनकार कर देते हैं। विलियम मेकपीस थैकरे ने उपन्यासकार की उस शक्ति को जिसके सहारे वह ऐसे स्वतन्त्रसत्ताधारी पात्रों की सृष्टि करता है, 'ऑकल्ट' (Occult) के नाम से पुकारा है। यह शक्ति लेखक को आत्म-विस्मृत कर देती है और लिखते समय उसके हाथों से कलम छीन लेती है। थैकरे अपने अनुभवों के आधार पर कहता है—"मैं अपने पात्रों को अपने नियन्त्रण में नहीं रख पाता; मैं स्वयं उनके हाथों में रहता हूँ, वे जहाँ चाहें मुझे ले जाँय।" पात्रों का ऐसी स्वतन्त्र सत्ता प्राप्त कर लेना किसी उपन्यासकार की चरित्र-चित्रण कला की श्रेष्ठता का परिचायक है। प्रेमचन्द जी अपने पात्रों के वश में प्रायः नहीं आते हैं। उनके अधिकांश पात्र उनके ही वश में रहते हैं। उनके पात्र उनके विचारों की शक्ति से ही संचालित होते रहते हैं। रंगभूमि में 'सूरदास' 'सोफिया' 'विनय' और 'जॉन सेवक' सभी प्रेमचन्द की लेखनी के वशीभूत होकर चलते हैं। वे हर पात्र को गढ़ कर अपनी इच्छा-नुसार उस पर रंग भरते हैं। 'सूरदास' के भीतर प्रेमचन्द की गांधीदर्शन के प्रति अपनी आस्था बोलती है, तो सोफिया में नारी के प्रति उनकी कल्पना साकार हो उठती है। उनके पात्र उनके संचालन और नियन्त्रण की परिधि के भीतर चलते हैं। फिर भी उनके पात्र प्राणवान् हैं और उनके नियन्त्रण और अनुशासन में रहकर उनका गला घुट नहीं जाता। प्रेमचन्द जी अपने पात्रों का व्यक्तित्व अच्छी तरह उभारते हैं और उनके भीतर कुछ ऐसी विशेषतायें भरते हैं, जिसके हमारे मन पर उनकी अमिट छाप सदा के लिए

अंकित हो जाती है। उदाहरण के लिए अपनी विवशताओं के बावजूद सूरदास की न्यायप्रियता और संकटों के सामने अपने निश्चय पर अटल रहने की शक्ति, उसको एक ऐसा व्यक्तित्व प्रदान करती है, जिसके आगे हम नतमस्तक हो जाते हैं। सोफिया जैसी स्वच्छ स्वभाव की स्त्री का इतना संयमशीला होना क्या कम प्रभाव डालने वाला है ? जॉन सेवक के जैसे ठंडे दिल वाला व्यक्ति जो सब कुछ खोकर भी अपनी धन लिप्सा को शांत करने में लगा रहे, हमारे मन पर प्रभाव डाले बिना नहीं रहता।

जैसे एक मूर्तिकार अपनी मूर्ति को काट छाँट कर सुन्दर बनाने की चेष्टा में कभी-कभी ज्यादा ठोंक-पीट करते-करते उसे विकृत कर देता है, क्योंकि वह उसके साथ आवश्यकता से अधिक परिश्रम करता है; उसी प्रकार प्रेमचन्द जी जहाँ अपने पात्रों के व्यक्तित्व को उभारने में अत्यधिक प्रयत्नशील हो गये हैं, वहीं गड़बड़ हुआ है। ऐसे स्थानों पर स्पष्ट पता चल जाता है कि प्रेमचन्द जी अपने पात्रों को कठपुतली का नाच दिखाने वालों की तरह, अपनी डोर से खींच रहे हैं। उदाहरण के लिए वे सूरदास से जबरदस्ती मल्लयुद्ध करा देते हैं ताकि उसकी अद्भुत शक्तियों का परिचय पाठकों को मिल जाय; वे विनय को इंद्रदत्त के पैरों पर गिरवा देते हैं ताकि वह उन्हें सोफिया तक पहुँचा दे, या नायकराम को इतना चतुर बना देते हैं कि वह जेल के दारोगा को झाँसा देकर जेल में पहुँच जाता है और विनय को दीवार फँदवा कर निकाल लाता है, रानी जान्हवी गजब की कठोर हृदया हैं पर सहसा उनका हृदय पिघल जाता है और दूसरी ओर विनय की मृत्यु पर उनकी आँखों से एक भी आँसू नहीं गिरता। शायद अपने पात्रों का व्यक्तित्व निखारने की चेष्टा में कुछ कृत्रिमता प्रेमचन्द जी ने पैदा कर दी है। जिन पात्रों की ओर उन्होंने केवल उतना ध्यान दिया है, जितना आवश्यक है, वे बड़े प्रभावशाली बन गये हैं। रंगभूमि के पात्रों में मिसेज जॉन सेवक, कुल्सुम, बजरंगी और सुभागी ऐसे ही पात्र हैं, जिनमें रंगों और रेखाओं की भरमार नहीं है, फिर भी वे सशक्त प्राणी हैं।

प्रेमचन्द जी के पात्र कभी-कभी प्रतीकात्मक रूप में हमारे सामने आ

प्रस्तुत होते हैं। अंग्रेजी के प्रसिद्ध नाटककार बर्नार्ड शॉ के पात्रों की कुछ विशेषता प्रेमचन्द जी के पात्रों में आ जाती है। शॉ के पात्र किसी विचारधारा का प्रतिनिधित्व करते हुए अमूर्त विचारों के प्रतीकमात्र होते हैं। ऐसी ही विशेषता प्रेमचन्द जी के पात्रों में भी दृष्टिगत होती है। रंगभूमि में, असहिष्णु धार्मिकता की प्रतीक मिसेज जॉन सेवक हैं, गांधीवादी दर्शन का प्रतीक सूरदास और पूंजीवाद का प्रतीक जॉन सेवक है। इन विचारों को मूर्त्तरूप देकर पात्रों के रूप में प्रेमचन्द जी ने खड़ा किया है। यह बात हर पात्र के बारे में नहीं कही जा सकती। उनके अनेक पात्र ऐसे भी हैं, जो केवल 'व्यक्ति' के रूप में देखे जा सकते हैं। उदाहरण के लिए रानी जान्हवी, राजा महेन्द्र सिंह, इंदु, आदि।

प्रेमचन्द जी के पात्र एकांगी भी नहीं है। प्राचीन भारतीय साहित्य में पात्रों को या तो शुद्ध रूप से दैवी गुणों से सम्पन्न करके या दानवी अवगुणों से समन्वित करके उतारने की प्रथा थी। उदाहरण के लिए राम-रावण, कंस-कृष्ण आदि। मनोविज्ञान के प्रभाव से आज का साहित्यकार यह विश्वास करने लगा है कि मनुष्य में गुण-अवगुण का मिश्रण होता है। मनुष्य असुरत्व और देवत्व के बीच की कड़ी है। इस सत्य की प्रेमचन्द जी ने सर्वत्र रक्षा की है। उनके पात्रों में एक ओर असाधारण शक्तियाँ हैं तो दूसरी ओर अक्षम्य दुर्बलताएँ। हर पात्र में अच्छाई-बुराई का अनुपात अलग-अलग है पर दोनों एक न एक मात्रा में वर्तमान अवश्य हैं। उदाहरणतः सूरदास को ले लें। यह सूरदास बहुत कुछ महात्मा गाँधी जैसे महान पुरुष की प्रतिकृति है। उसका दुःसाहस, मनोबल और न्याय बुद्धि असाधारण रूप से श्रेष्ठ है। उसके आगे रानी जान्हवी जॉन सेवक, सोफिया, विनय, प्रभु सेवक, इंद्रदत्त तथा पांडेपुर के सामान्य निवासी तक नत मस्तक होते हैं परन्तु वही सूरदास मानवीय दुर्बलताओं का शिकार हो जाता है। वह जगधर और भैरों से चिढ़कर मिठुआ का बदला लेने के लिए बालक के समान आचरण करता है। सुभागी को वह बहन मानता है पर एक बार उसे अपनी घरवाली बनाने की कामना भी उसके मन में जाग उठती है। विनय तपस्वी के समान जीवन बिताता है। उसकी माता जान्हवी उसके संयम और सेवा की प्रशंसा करते नहीं थकती. परन्तु वही विनय सोफिया के पीछे

मजनू बन कर घूमता-फिरता है। देश सेवा के पवित्र आदर्श से विरत होकर वह सोफिया के साथ भोगमय जीवन बिताना चाहता है। ताहिर अली के धर्माचरण के साथ विवेकहीनता का मिश्रण है, तो नायकराम की व्यावहारिकता के साथ उसकी कायरता का; राजा महेन्द्र सिंह की जनसेवा के साथ, उनकी संकुचित यशाभिलाषा का मिश्रण है, तो इंदु की पति परायणता के साथ उसकी अस्थिरता का। प्रेमचन्द के पात्रों में अच्छाई-बुराई के मिश्रण से मनुष्यत्व आ गया है। वे इसी संसार के हमारे ही साथ विचरण करने वाले प्राणी जान पड़ते हैं।

प्रेमचन्द जी पर एक आरोप यह लगाया जाता है कि वे बहुधा अपने पात्रों के स्वभाव में आकस्मिक परिवर्तन अकारण ही दिखा देते हैं जिससे उनके पात्रों में कुछ अस्वाभाविकता आ जाती है। रंगभूमि में भी इस प्रकार के आकस्मिक परिवर्तनों के उदाहरण मिल जाते हैं। रानी जान्हवी अपने पुत्र को बलिदान होते देखना चाहती हैं। वे विनय को राजस्थान भेज देती हैं, उसकी निर्बलताओं के लिए उसे कठोर पत्र लिखती हैं, उसकी मृत्यु पर एक आँसू भी नहीं गिरातीं पर समझ में नहीं आता क्यों उनमें सोफिया के काशी लौटने पर परिवर्तन हो जाता है, उनका सुप्त मातृ हृदय जाग उठता है। परन्तु, रंगभूमि में शील-स्वभाव के आकस्मिक परिवर्तन के उदाहरण कम हैं। परिस्थितिवश ही यह परिवर्तन होते हैं और प्रेमचन्द जी इसका औचित्य सिद्ध कर देते हैं। कुँवर भरत सिंह पुत्र प्रेम के कारण विलासी से सन्यासी बनते हैं और उसी पुत्र की मृत्यु के धक्के के कारण फिर विषय-सेवी बन जाते हैं। प्रभु सेवक कवि से राष्ट्र प्रेमी सुधारक और सुधारक से विश्व प्रेम का समर्थक बन जाता है। कारण है, उसकी उदारता और विदेशियों की गुण ग्राहकता। ताहिर अली का विपथगामी होना, उनके ऊपर गृहस्थी के भार के कारण सम्भव हुआ।

चरित्र-चित्रण की विधायें—प्रेमचन्द जी ने अपने पात्रों के चरित्र-चित्रण में कई पद्धतियों का प्रयोग किया है। कभी वे प्रत्यक्ष रूप से अपने पात्रों के सम्बन्ध में बहुत कुछ कह डालते हैं और फिर विभिन्न घटनाओं और पात्रों के

कार्यों द्वारा अपने कथन की पुष्टि करते हैं। कभी-कभी पात्रों के हृदयगत द्वन्द्व और कभी एक पात्र के द्वारा दूसरे पात्र के सम्बन्ध में टिप्पणी के माध्यम से चरित्र पर प्रकाश डालते हैं। हम क्रमशः उनकी चरित्र-चित्रण सम्बन्धी विधाओं पर संक्षेप में प्रकाश डालेंगे।

(क) **विश्लेषणात्मक प्रणाली**—प्रेमचन्द जी पात्र को प्रवेश कराते समय उसके शील-स्वभाव के सम्बन्ध में थोड़ा सा परिचय देते हैं। जिस प्रकार चित्रकार चित्र तैयार करने के पहले उसकी एक रूपरेखा तैयार कर लेता है और बाद में उसके भीतर रंग भरता है, उसी प्रकार प्रेमचन्द जी भी अपने पात्रों के व्यक्तित्व की हल्की रेखाएँ उभारते हैं ताकि पाठक अपनी कल्पना शक्ति से उनके सम्बन्ध में कुछ अनुमान कर ले। फिर वे पात्रों को संघर्ष के बीच ले जाते हैं और पाठक उनकी पूर्व रेखा से उनके कृत्यों का अनुमान करता है। पहले सूरदास का चित्र देखिए :—"इन्हीं में एक गरीब अन्धा चमार रहता है जिसे सूरदास कहते हैं।......गुण-स्वभाव जगत् प्रसिद्ध हैं—गाने बजाने में रुचि, हृदय में विशेष अनुराग, अध्यात्म और भक्ति में विशेष प्रेम उसके स्वाभाविक लक्षण हैं। वाह्य दृष्टि बन्द और अन्तदृष्टि खुली हुई।" पृ० १

इसी प्रकार ईसाई परिवार के सभी सदस्यों के बारे में केवल एक अनुच्छेद में जो कुछ प्रेमचन्द जी कह देते हैं, वह उन सब के व्यक्तित्वों का मूल आधार है। देखिए :—"जॉन सेवक दुहरे बदन के गोरे चिट्टे आदमी थे। बुढ़ापे में चेहरा लाल लगता था। सिर और दाढ़ी के बाल खिचड़ी हो गये थे। पहनावा अँगरेजी था और खूब खिलता था। मुख की आकृति से गरूर और आत्मविश्वास झलकता था। मिसेज सेवक को कालगति ने अधिक सताया था। चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ गयी थीं और उससे हृदय की संकीर्णता झलकती थी, जिसे सुनहरी ऐनक भी न छिपा न सकती थी। प्रभु सेवक की मसें भीग रही थीं, छरहरा डील एकहरा बदन, निस्तेज मुख, आँखों पर ऐनक, चेहरे पर गम्भीरता और विचार का गाढ़ा रंग नजर आता था। आँखों से करुणा की ज्योति सी निकली पड़ती थी। वह प्रकृति-सौन्दर्य का आनन्द

उठाता हुआ जान पड़ता था। मिस सोफिया बड़ी-बड़ी रसीली आँखों वाली **लज्जाशील** युवती थी। देह अति कोमल मानो पंचभूतों की जगह पुष्पों से उसकी सृष्टि हुई हो। रूप अति सौम्य मानो **लज्जा और विनय मूर्तिमान हो गये हों।** सिर से पाँव तक **चेतना ही चेतना थी, जड़ का कहीं आभास तक न था।**" पृ० २

उक्त मोटे अक्षरों की पंक्तियाँ चारों पात्रों के मूल स्वभाव का संकेत पहले ही दे देती हैं और रंगभूमि में अपनी भूमिका अदा करते हुए चारों इसी स्वभाव का परिचय देते हैं। विश्लेषण प्रणाली प्रेमचन्द जी की चरित्र-चित्रण कला का मुख्य अंग है। पात्र को प्रवेश कराते समय वे उसके सम्बन्ध में जो कुछ कहते हैं, वह उनका अपना अधिकार है। आधुनिक उपन्यासकार अपने पात्रों के बारे में कम कहते हैं परन्तु प्रेमचन्द जी इस अधिकार का खुलकर प्रयोग करते हैं। वे प्रारम्भ में पात्रों के बारे में कह कर सन्तोष नहीं करते। समय-समय पर कुछ घटनाओं के अवसरों पर, वे अपनी ओर से कुछ कहने में नहीं चूकते। सूरदास के सम्बन्ध में वे अपनी टिप्पणी यथासमय देते रहते हैं। सूरदास की मृत्यु के बाद उसके सम्बन्ध में लेखक के विचार सुनिये :—".........पर यथार्थ में वह खिलाड़ी था—वह खिलाड़ी, जिसके माथे पर कभी बल न आया, जिसने कभी हिम्मत नहीं हारी, जिसने कभी कदम पीछे नहीं हटाया, जीता तो प्रसन्न-चित्त रहा; हारा तो प्रसन्न-चित्त रहा ....। पर हृदय धैर्य, क्षमा, सत्य और साहस का अगाध भाण्डार था।...... हृदय में विनय; शील और सहानुभूति भरी हुई थी।"

"हाँ, वह साधु न था, महात्मा न था, देवता न था, फरिश्ता न था। ....क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार ये सभी दुर्गुण उसके चरित्र में भरे पड़े थे, गुण केवल एक था।.........अन्याय देख कर उससे न रहा जाता था, अनीति उसके लिए असह्य थी।" पृ० ५२२

प्रारम्भ में सूरदास के स्वभाव में प्रेमचन्द जी ने जिन गुणों का उल्लेख किया है, वही आगे विकसित रूप में हमें मिलते हैं। इसी प्रकार सोफिया के बारे में वे फिर कहते हैं, "सोफिया सत्यासत्य निरूपण में

सदैव रत रहती थी। धर्म तत्वों को बुद्धि की कसौटी पर कसना उसका स्वाभाविक गुण था और जब तक तर्क बुद्धि स्वीकार न करे, वह केवल धर्म-ग्रन्थों के आधार पर किसी सिद्धान्त को न मान सकती थी। जब उसके मन में कोई शंका होती तो वह प्रभु सेवक की सहायता से उसके निवारण की चेष्टा किया करती थी।" पृ० २२

जॉन सेवक की विशेषताओं पर आगे चल कर प्रेमचन्द जी दुबारा प्रकाश डालते हुए कहते हैं—"जॉन सेवक उन मनुष्यों में थे जिनका व्यक्तित्व शीघ्र ही दूसरों को आकर्षित कर लेता है। उनकी बातें इतनी विचारपूर्ण होती थीं कि दूसरे अपनी बातें भूल कर उन्हीं की बातें सुनने लगते थे। ....वे अनुभवशील और मानव चरित्र के बड़े अच्छे ज्ञाता थे। ईश्वरदत्त प्रतिभा थी, जिसके बिना किसी सभा में सम्मान नहीं प्राप्त हो सकता।"

पृ० ४४

पूरे रंगभूमि उपन्यास में अपने पात्रों के चरित्र के कुछ न कुछ गुणों पर टीका करना प्रेमचन्द जी का उद्देश्य रहता है ताकि उनके विषय में पाठक को पूरी जानकारी होती रहे।

(ख) आत्मविश्लेशण प्रणाली—प्रेमचन्द पात्रों द्वारा अपने सम्बन्ध में विचार प्रकट कराते हुए उनके स्वभाव का कुछ परिचय देते चलते हैं। द्विविधा या संकट में पड़े हुए पात्रों के मन में होनेवाले अन्तर्द्वन्द्व से उनकी प्रवृत्तियों पर प्रकाश पड़ता है। जमीन बेचने से इनकार करने के बाद सूरदास जिस प्रकार अपने मोहल्लेवालों की भलाई के बारे में (पृष्ठ ९) सोचता है, उससे उसकी दयालुता, त्याग और परहित चिंतन की भावना का पता चलता है। "पाँच तो क्या, पाँच सौ भी दें, तो भी जमीन न दूँगा। मोहल्लेवालों को कौन मुँह दिखाऊँगा। इनके कारखाने के लिये बिचारी गउएँ मारी-मारी फिरें।" सोफिया के विचार-स्वातंत्र्य और अपने सिद्धांत पर दृढ़ रहने की प्रवृत्ति का परिचय उसके अपने विचारों से मिलता है। वह मिसेज सेवक से लड़ने के बाद सोचती है—"आत्म स्वातन्त्र्य का खून करके अगर जीवन की चिंताओं से निवृत्ति हुई, तो क्या ? मेरी आत्मा इतनी तुच्छ वस्तु नहीं है कि उदर पालने के लिये

उसकी हत्या कर दी जाय।" (पृ० २५) जॉन सेवक की व्यवसायबुद्धि और व्यवहार कुशलता का पता उनकी बातों से चलता है, जब वे अपने पुत्र प्रभु-सेवक को समझाते हुये कहते हैं—"क्या तुम समझते हो कि मैं और मुझ जैसे और हजारों आदमी, जो नित्य गिरजे जाते हैं, भजन गाते हैं, आँखें बन्द करके ईश प्रार्थना करते हैं, धर्मानुराग में डूबे हुए हैं? कदापि नहीं।.........संभव है तुम्हें ईसा पर विश्वास हो, शायद तुम उनको खुदा का बेटा या कम-से-कम महात्मा समझते हो, पर मुझे तो यह भी विश्वास नहीं।........मैं रविवार को सौ काम छोड़कर गिरजे जाता हूँ। न जाने से अपने समाज में अपमान होगा, उसका मेरे व्यवसाय पर बुरा असर पड़ेगा।" (पृ० ६९) प्रभुसेवक जैसा अनुभवशून्य युवक अपने सम्बन्ध में आत्मनिरीक्षण करता हुआ कहता है, "मैं ही बुद्धिहीन, विचारहीन, अनुभवहीन प्राणी हूँ। अवश्य हूँ। जिसे संसार में रह कर सांसारिकता का ज्ञान न हो, वह मंदबुद्धि है।" (पृ० १३४) इंदु की पतिभक्ति और आत्मस्वातंत्र्य के बीच उसके मन में होनेवाले संघर्ष का पता उसके निरीक्षण से चलता है। वह सोचती है—"यह अन्याय नहीं तो और क्या है? घोर अत्याचार! कहने को तो रानी हूँ लेकिन इतना अख्तियार भी नहीं कि घर के बाहर जा सकूँ।" (पृ० १६५) पति की आज्ञा न मानने पर उसे दुख होता है और वह सोचती है—"निःसंदेह मुझसे भूल हुई। लौट चलूँ और उनसे अपना अपराध क्षमा कराऊँ।........भगवन्, मुझे कब इतनी बुद्धि होगी कि उनकी इच्छा के सामने सिर झुकाना सीखूँगी।" पृ० १६६।

इस प्रकार के अनेक उदाहरण विभिन्न पात्रों के आत्मचिंतन के प्रसंगों से छांटकर प्रस्तुत किये जा सकते हैं, जिनसे उनके स्वभाव की बहुत कुछ परख की जाती है।

(ग) वार्तालाप प्रणाली—प्रेमचन्द एक पात्र के सम्बन्ध में दूसरे पात्रों के चरित्र के विषय में बहुत कुछ कहला देते हैं। पात्रों के सम्बन्ध कथोपकथनों के बीच प्रकट किये गये विचारों की निर्भरशीलता संदिग्ध है। उसके आधार पर पात्रों के चरित्र का सहसा मूल्यांकन कर लेना भूल होगी। किसी पात्र का मित्र उसके सम्बन्ध में या उसका शत्रु उसके सम्बन्ध में पक्षपातपूर्ण विचार

रक्खेगा। अत: ऐसी सामग्री के बीच से चरित्र पर प्रकाश पड़नेवाले सूत्रों को सावधानी से हमें छाँटना पड़ेगा। अब सूरदास का उदाहरण लें। उसके चरित्र के संबंध में अनेक पात्रों ने अपने उद्‌गार प्रकट किये है। वह न्यायप्रिय था और सत्य का सदैव पक्ष ग्रहण करता था, इस बात को अनेक पात्र—उसके विपक्षी और समर्थक—स्वीकार करते हैं। सोफिया कई बार उनके बारे में कहती है कि वह दार्शनिक है, साधु है, फरिश्ता है। ताहिर अली कहते हैं—"हजूर मुझे तो यकीन है कि वह इंसान नहीं कोई फरिश्ता है।" (पृ० २१०) क्लार्क सूर की महानता से प्रभावित होकर कहता है—"सबसे पहले सूरदास के लिए मेरे कंठ से जय-ध्वनि निकलेगी, सबसे पहले मेरे हाथ उस पर फूलों की वर्षा करेंगे।" उसके परम शत्रु भैंरों के मुंह से बरबस निकल पड़ता है—"यह आदमी नहीं साधू है।" (पृ० ३६३) बजरंगी कहता है—"सच कहते हो भैया आदमी नहीं था, देवता था। ऐसा शेर आदमी कहीं नहीं देखा।" (पृ० ५१७) ठाकुरदीन की राय में "अन्धा आगलगानी था। जगधर उससे रुष्ट होते हुए भी यह कह डालता है कि "सूरदास का सा आदमी कोई क्या होगा।"

विनय के चरित्र के सम्बन्ध में भी कई पात्रों के कथनों से बहुत कुछ मालूम होता है। सबसे पहले हमें विनय की माता और सोफ़िया के वार्तालाप से विनय के गुणों का परिचय मिलता है। जाह्नवी कहती है—"विनय पृथ्वी के अधिकांश प्रांतों का पर्यटन कर चुका है। संस्कृत और भारतीय भाषाओं के अतिरिक्त योरोप की प्रधान भाषाओं का भी उसे अच्छा ज्ञान है। आदि।" (पृ० ८६) विनय के गुणों का यह वर्णन कुछ अतिशयोक्ति पूर्ण समझा जाना चाहिए क्योंकि माता की नजरों में पुत्र सर्व गुण सम्पन्न होता है। फिर भी विनय के त्याग और सेवा की प्रशंसा उदयपुर के निवासी करते हैं। वहाँ के दीवान उसके विषय में कहते हैं—"उसकी बातों में कुछ ऐसा जादू होता था कि प्रजा प्यासों की भाँति उसकी ओर दौड़ती थी। उसके साधुवेश, उसके सरल निस्पृह जीवन, उसकी मृदुल सहृदयता और सबसे अधिक उसके देवोपम स्वरूप ने छोटे-बड़े सभी पर वशीकरण-सा कर दिया है।" विनय के गुणों की प्रशंसा जॉनसेवक भी करते हैं और उसको दामाद बनाने की सम्भावना पर

सन्तोष प्रकट करते हैं।

तीसरा उदाहरण सोफिया का हो सकता है। भिन्न-भिन्न पात्रों के कथोपकथनों से उसके चरित्र पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। रानी जान्हवी कई बार उसकी प्रशंसा करती है। वह स्पष्ट कहती है कि "मैं अपनी संकीर्णता के कारण सोफिया की कितनी ही उपेक्षा करूँ, किन्तु वह सती है, इसमें अणुमात्र सन्देह नहीं।" (पृ० २६३) उसके विरोधी भी, इस प्रकार, उसके पवित्र चरित्र की सराहना करते हैं। विनय की प्रशंसा में औचित्य है पर वे सोफिया के प्रेमी हैं और उनका कथन पक्षपातपूर्ण माना जा सकता है। सोफिया के पवित्र प्रेम की प्रशंसा हम जब वीरपालसिंह जैसे दुर्दान्त डाकू के मुँह से सुनते हैं, तो हमें उसकी महानता में कोई सन्देह नहीं रह जाता। वह उसके प्रेम की उच्चता का सप्रमाण परिचय देते हुए कहता है—"मिस साहब आपको याद करके घंटों रोया करती थीं, पर अब उनका हृदय आपसे ऐसा फट गया है कि आपका नाम भी कोई लेता है, तो चिढ़ जाती हैं।............ आपके प्रति उनके मन में असीम श्रद्धा है।" आदि पृ० ३१९

(घ) अभिनयात्मक प्रणाली :—प्रेमचन्द जी के पात्रों के शील-गुण के बारे में हमें उनकी टिप्पणी, तथा पात्रों के कथोपकथनों से बहुत कुछ मालूम हो जाता है परन्तु पात्रों के व्यवहारों को उनके चरित्र की असली कसौटी समझना चाहिये। जैसे प्रत्यक्ष जीवन में मनुष्य के चरित्र की परख हम उनके विचारों और व्यवहारों के बीच तालमेल से करते हैं, उसी प्रकार उपन्यास में पात्रों के ज्ञात स्वभाव की वास्तविकता की जाँच उनके व्यवहारों के आधार पर करना आवश्यक है। रंगभूमि के पात्र अनेक परिस्थितियों के बीच संघर्ष करते दिखायी देते हैं। उनके क्रिया कलापों से उनके स्वभाव पर प्रकाश पड़ता है। प्रेमचन्द जी ने पात्रों को संघर्ष में उतार कर उनके चरित्र-विश्लेषण की जो योजना की है, उसे हम अभिनयात्मक प्रणाली कहते हैं। रंगभूमि में सूरदास के स्वभाव की जानकारी प्राप्त करने के बाद, लेखक उसे कर्मक्षेत्र में ले जाता है। उसकी दृढ़ता, न्यायप्रियता, परजनहित कामना आदि गुणों की जाँच करने के लिए हम स्वयं सूरदास को अपनी जमीन के लिए जॉनसेवक

जैसे प्रभावशाली व्यक्ति से संघर्ष करते हुए देखते हैं। उसे हम सुभागी जैसी अबला नारी की रक्षा के लिए समाज को चुनौती देते हुए पाते हैं। उसके काम यह सिद्ध कर देते हैं कि उसके बारे में सोफिया, इन्दु, बजरंगी, ताहिर, नायकराम, जगधर, भैरों तथा जमुनी आदि ने जो कुछ कहा है सत्य है। ठीक इसी तरह सोफिया के सम्बन्ध में लेखक ने जो कुछ कहा है उसकी जाँच करने के अवसर हमें तब मिलते हैं, जब उसके सामने समस्याएँ आती हैं। सोफिया उदार विचारों की बुद्धिवादी युवती है। अपने विचारों की स्वतंत्रता के लिए वह सर्वत्र संघर्ष करती है। धर्म में वह अंध-विश्वास रखने से इनकार कर देती है। इसके लिए उसे अपने परिवार का त्याग करना पड़ता है। विनय से वह उत्कट प्रेम रखती है परन्तु कहीं भी वह अपने प्रेमी के आगे आत्मसमर्पण नहीं करती। इन्दु का स्वभाव अपनी माता के प्रभाव से कुछ ऐसा बन जाता है कि वह पति की आज्ञा पालन करने वाली नारी बनना चाहती है। इस आदर्श की पूर्ति के लिए वह सर्वत्र चेष्टा करती रहती है। सेवक दल को बिदा देने के लिए स्टेशन जाने, सूरदास को जेल से छुड़ाने तथा उसकी प्रतिमा स्थापित करने के लिए चंदा देने आदि अवसरों पर पति की इच्छा के विपरीत कार्य करना और बार-बार दुखी होना उसके स्वभाव पर अच्छा प्रकाश डालता है। जॉनसेवक के कार्य, उनकी चालें और कूटनीति उनकी व्यावसायिक कुशलता और आत्मविश्वास का परिचय देते हैं। प्रभुसेवक की कविताएं, उसका सेवकदल का नेतृत्व, फिर विदेश में जा बसना उसकी आदर्शवादी प्रवृत्ति का द्योतक है। संक्षेप में रंगभूमि के पात्रों के चरित्र-चित्रण में विभिन्न घटनाओं और परिस्थितियों का महत्व है और उनके बीच पात्रों के व्यवहार से उनकी प्रकृति पर समुचित प्रकाश पड़ता है। वास्तव में पाठकों को, इनके बीच कर्मरत पात्रों का अध्ययन करना आवश्यक है।

रंगभूमि में चरित्रचित्रण की विशेषताएँ

१. **चरित्रचित्रण की मनोवैज्ञानिकता**—उपन्यास में मनुष्य के मनोभावों और क्रियाकलापों का चित्रण किया जाता है और लगभग यही काम मनोविज्ञान का भी है। मनोविज्ञान वर्तमान युग का नवीनतम विज्ञान है; जो मनुष्य के

व्यवहार और मानसिक क्रियाओं की व्याख्या करता है। इसी दृष्टि से उपन्यास और मनोविज्ञान दोनों एक दूसरे के अत्यन्त निकट हैं। अन्तर यह है कि मनोविज्ञान की दिलचस्पी मानव व्यवहार के कारणों और उद्गम का पता लगाना है जबकि उपन्यास केवल मनोरंजन के लिए मानवीय व्यवहार और चित्त वृत्तियों के चित्र प्रस्तुत करता है। वर्तमान शताब्दी में मनोविज्ञान ने उन अनेक प्राथमिक नियमों की जानकारी प्राप्त की है, जो मनुष्य के मन की प्रक्रियाओं की व्याख्या करते हैं। इसलिए साहित्य जगत में एक बड़ी क्रांति हो गयी है। उपन्यासकार अपने पात्रों के स्वभाव-शील-गुण आदि के वर्णन में यह ध्यान रखते हैं कि यह वर्णन मनोविज्ञान सम्मत हों। चरित्र-चित्रण में मनोवैज्ञानिकता के प्रवेश का यही रहस्य है।

प्रेमचंद जी के बारे में यह कहा जाता है कि वे अपने पात्रों का मनोवैज्ञानिक चित्रण नहीं कर पाये हैं। नगेन्द्र जैसे आलोचकों ने उनके साहित्य को सामयिक ठहराया है और उसे मनोवैज्ञानिक चित्रण से शून्य ठहराया है। इलाचंद्र जोशी ने भी कहा है—"उनके समस्त उपन्यासों में अधिकतर वाह्य जीवन के आघात-प्रतिघातों के ही चित्रण मिलते हैं—अन्तः प्रवृत्तियों के आधार से रहित। यही कारण है कि जिस उन्नत मिशन को लेकर वह चले थे, उसे वास्तविक रूप से पूरा करने में वे एकदम असफल रहे क्योंकि उसी वाह्य जीवन का चित्रण सच्ची सफलता प्राप्त कर सकता है जो अन्तर्जीवन पर निर्धारित है।" वास्तव में प्रेमचंद जी पर ऐसे आरोप इसलिए लगाये गये हैं कि आज के उपन्यास साहित्य में फ्रायड के सचेतन मन की व्याख्या पर बड़ा जोर दिया जा रहा है। फ्रायड ने मनुष्य के रुग्ण मन की प्रक्रियाओं की व्याख्या के लिए कई नियम ढूँढ़ निकाले थे। आज के उपन्यास-कार मानव चरित्र का चित्रण करने में उन्हीं नियमों का अंधाधुंध प्रयोग करते हैं। इस दृष्टि से यह कहा जाने लगा कि प्रेमचंद जी का चरित्र चित्रण मनोवैज्ञानिक नहीं है।

इस संबंध में विचारणीय बात यह है कि प्रेमचंद जी के समय में मनोविज्ञान का भूत लोगों पर सवार नहीं हुआ था। यह अच्छा ही था कि

वे इस धारा में नहीं बह गये क्योंकि फ्रायड के सिद्धान्तों के प्रयोग की अतिशयता उन्हें एकांगी बना देती। आज मनोविज्ञान के क्षेत्र में ही फ्रायड के अचेतन तथा अंतर्मन पर अक्षरशः विश्वास नहीं किया जाता। फिर फ्रायड ने मनुष्य के रुग्ण मन का आंशिक विश्लेषण किया है। मनुष्य का चेतन मन और उसका स्वस्थ मन भी तो महत्व रखता है। प्रेमचंद जी ने स्वस्थ मन का मनोवैज्ञानिक चित्रण अवश्य ही किया है। वाह्य व्यवहार का चित्रण भी मनोवैज्ञानिक माना जायगा। अनेक मनोवैज्ञानिक जिनमें वाट्सन प्रमुख हैं, मनुष्य के वाहय व्यवहार का निरीक्षण ही महत्वपूर्ण मानते हैं। ऐसी दशा में प्रेमचंद जी के चरित्र-चित्रण को अमनोवैज्ञानिक कहना भारी भूल होगी।

एक अन्य महत्वपूर्ण बात यह है कि मनोवैज्ञानिक मानव स्वभाव और व्यवहार के प्रारम्भिक नियमों की जानकारी प्राप्त करने में दिलचस्पी रखता है। उपन्यासकार की दिलचस्पी मनुष्य के वाह्य तथा आन्तरिक व्यवहारों की जटिलता, दुरूहता और विचित्रता में है। यदि वह मन के नियमों का अध्ययन कराने लगे, तो इससे अच्छा तो यह होगा कि वह मनोविज्ञान की प्रयोगशाला खोल ले अथवा किसी विश्वविद्यालय में अध्ययन कार्य करे। प्रेमचन्द जी कलाकार हैं और वे वैज्ञानिक नियमों में घुसकर उलझते नहीं हैं। जहाँ तक मनुष्य और परिस्थितियों के संवर्ष, मनुष्य के स्वभाव का विकास और परिवर्तन, मानवीय स्वभाव की भिन्नता और उन प्रवृत्तियों का, जो मानव व्यवहार के स्रोत हैं, विश्लेषण करने में प्रेमचन्द जी ने अद्भुत सफलता पायी है। साथ ही यह भी स्मरण रखना है कि वे आदर्शवादी कलाकार हैं और वे मनोवैज्ञानिक सामग्री को शिवं और सुन्दरम् के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं। यदि इन बातों की ओर ध्यान रक्खा जाय तो पाठकों को उनके चरित्र-चित्रण में पूर्ण मनोवैज्ञानिकता मिलेगी। अब कुछ उदाहरणों से बात स्पष्ट करनी होगी।

पहले रंगभूमि के विनय को लें। प्रेमचन्द जी ने बड़ी कुशलता के साथ विनय की उन परिस्थितियों का चित्रण किया है जिनमें उसका जन्म हुआ, पला और शिक्षित हुआ। उसने वंश परम्परा से, माता से त्याग का और

पिता से भोग का गुण पाया। इसलिए उसके व्यक्तित्व में दोनों का समावेश होना अनिवार्य था। प्रारम्भिक काल के संयम से उसकी कामवृत्ति का दमन उसके जीवन को अस्वाभाविक बना देता है, जिसका प्रमाण हमें सोफिया के सम्पर्क में देखने को मिलता है। प्रेमचन्द जी ने इस मनोवैज्ञानिक तथ्य का अंकन किया है और उस पर आदर्श का रंग चढ़ा दिया है। काम का नग्न रूप प्रस्तुत करके अपने उपन्यास में मनोवैज्ञानिकता लाने का शौक उन्हें जरा भी नहीं है। सोफ़िया का अन्तर्मन वासना और संयम के संघर्ष से पीड़ित है। उसका संयम उसकी दार्शनिकता और अध्ययन की देन है और वासना सहज प्रवृत्ति। काम प्रवृत्ति का विस्फोट नहीं होने पाता, चाहे मानसिक अशांति उसे बराबर पीड़ित रखती है। माता की अस्वाभाविक शिक्षा, और भारतीय संस्कृति के आदर्शों के प्रभाव से इन्दु एक ओर पति की दासता स्वीकार करने में ही नारी जीवन की सार्थकता समझती है, तो दूसरी ओर अंग्रेजी स्कूल में पढ़ कर स्वतंत्रता की भावना भी विकसित कर लेती हैं, जो उसे पतिभक्ति के आदर्श को ठुकराने के लिए बाध्य करती है।

प्रेमचन्द जी ने मनुष्य की इस वैयक्तिक चेतना को, जो समाज से पृथक् रह कर अस्वाभाविक तौर पर मानव व्यवहार को गंदा बना देती है, अपने उपन्यासों में स्थान नहीं दिया है। वे मनुष्य को सामाजिक प्राणी मानते हैं और उसके व्यवहार को समाज की सीमा के भीतर अंकित करते हैं। रंगभूमि में उन्होंने मनुष्य की उन प्रवृत्तियों का विश्लेषण किया है, जो सामाजिक और राजनैतिक प्रश्नों के दबाव में आकर मुखरित होती हैं। पांडेपुर के निवासियों और सिगरेट के कारखाने के मालिक जॉनसेवक का संघर्ष इसी दिशा में संकेत करता है। विनय और सोफिया अपने प्रेम की परीक्षा एक रियासत के जन आंदोलन के बीच करते हैं। प्रेमचन्द जी जन-जीवन की मनोवैज्ञानिकता का ज्यादा ध्यान रखते हैं, इसलिए सामान्य जन पर होने वाली प्रतिक्रियाओं का अंकन करने में बड़ी रुचि लेते हैं। विनय में परिवर्तन होने और उदयपुर में अधिकारियों से मिलकर जनता पर अत्याचार कराने पर वहाँ के लोगों के व्यवहारों का चित्रण करना वे कभी नहीं भूलते। एक पंडित जी विनय को मारने के लिए

अनुष्ठान करते हैं, तो एक वृद्धा उनके विनाश के लिए कोसती है। सूरदास के सुभागी को अपने घर रख लेने पर कुएँ पर पानी भरती हुई स्त्रियों की प्रतिक्रियाओं का अंकन वे करते हैं, तो कारखाने के मजदूरों का एक स्त्री को छेड़ना और बिगड़े हुए नवयुवकों का सुभागी के साथ बलात्कार की चेष्टा करना आदि का चित्र भी वे खींच देते हैं। प्रेमचन्द जी की रंगभूमि में समूह मनोविज्ञान के तथ्य भरे पड़े हैं।

प्रेमचन्द जी के पात्रों के व्यक्तित्व को देखकर ऐसा पता चलता है कि वे व्यक्तिगत भिन्नता के मनोविज्ञान के पूरे ज्ञाता हैं। यदि ऐसा न होता, तो वे इतने प्रकार के पात्रों की रचना न कर पाते। प्राचीन क्षत्राणियों का प्रतिनिधित्व करने वाली जान्हवी जो आदर्श की वेदी पर पुत्र को बलि दे देती है, सेवा और त्याग के भावों से पूर्ण, ईसाई होते हुए भी हिन्दूनारी की प्रतिकृति सोफिया, गृहस्थी के दलदल में फँसी कुलसुम, शोषण की मारी सुभागी—यह सब प्रेमचन्द जी के मनोवैज्ञानिक चरित्र-चित्रण की शोभा हैं। पुरुष पात्रों में भी यह व्यक्तिगत भिन्नता देखने को मिलती है। एक ओर धर्मभीरु ताहिर अली हैं, तो दूसरी ओर स्वार्थसेवी उसका भाई माहिर अली है, जॉनसेवक भौतिक जगत् का व्यवहार कुशल जीव है और उसका पुत्र प्रभुसेवक कल्पनाशील कवि, विनय त्यागी है और उसका पिता कुँवर भरतसिंह भोगी। यदि प्रेमचन्द जी को इस व्यक्तिगत भिन्नता के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त का ज्ञान न होता तो इतने प्रकार के पात्र खड़े न कर सकते।

मनुष्य की संवेगात्मक स्थिति का चित्रण करने में प्रेमचन्द जी सिद्ध हस्त हैं। पं० जनार्दन प्रसाद जी कहते हैं—"मनस्तत्व की मनोवैज्ञानिक व्याख्या करना इनकी चरित्र-चित्रण कला का मुख्य काम होता है। किससे, कब, किस तरह, कैसी बातें कहने से क्या असर पड़ेगा, किस स्थिति में किसके मन की कैसी अवस्था रहती है, आदि बातों की मनोवैज्ञानिक जानकारी का अभाव इनके पात्रों में नहीं रहता।" उदाहरण के लिए जॉनसेवक को लीजिए। वे अपना काम बनाने के लिए कुँवर भरतसिंह और राजा महेन्द्रसिंह के पास जाते हैं और उनकी प्रशंसा करके अपना काम बना लेते हैं। ताहिर अली को

चोट लगती है और उन्हें लेकर वह सारे मामले को राजा महेन्द्रसिंह के सामने इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं कि वे पाँडेपुर वालों के विरुद्ध हो जाते हैं। दुबारा प्रभुसेवक के नायकराम को मारने पर वे तुरन्त उनके पास पहुँच कर इस प्रकार प्रभुसेवक को बुरा-भला कहकर, उनका क्रोध शांत करते हुए कारखाने की उपयोगिता उन सबके हित में इस प्रकार सिद्ध करते हैं कि पांडेपुर के निवासी उन्हें सूरदास की भूमि दिलाने को तैयार हो जाते हैं। इस अवसर पर वे विनय, युक्तियों और प्रशंसा आदि का प्रयोग करते हैं। इस समय की परिस्थिति में वे इस प्रकार का व्यवहार करते हैं तो ताहिर अली को चूँकि वह उनका नौकर है, डाँटते-फटकारते हैं। यदि प्रेमचन्द जी को मनोविज्ञान के रहस्यों का ज्ञान न होता, तो वे पात्रों के चरित्र-चित्रण में इस प्रकार का कमाल न दिखा सकते।

(२) **मानव स्वभाव का ज्ञान**:—प्रेमचन्द जी ने मनोविज्ञान के उन रहस्यों को जिन्हें विश्वविद्यालयों में पढ़ कर जाना जा सकता है, अपने अनुभवों के आधार पर हृदयंगम किया था। वे मानव स्वभाव के कितने पारखी थे, इसका अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि उनके पात्रों का चरित्र, उनकी शिक्षा-दीक्षा, परिवार में लालन-पालन, जाति, पेशे, धर्म आदि के प्रभाव से कुछ ऐसी विशेषताएँ ग्रहण कर लेता है जो सबमें नहीं पाई जातीं। उदाहरण के लिए बजरंगी को लें। वह अहीर जाति का है और इस जाति की प्रमुख विशेषता—सोचने की कमी पर उग्रता—उसमें मौजूद है। नायकराम पंडा है, इसलिए वह हर मौके पर अपना काम बना लेने की क्षमता रखता है। वह कुँवर भरतसिंह के मुनीम से रुपये ऐंठ लेता है, उदयपुर जाते हुए ट्रेन में वह सभी यात्रियों का मन मोह लेता है, विनयसिंह को जेल से भगा ले जाता है, हास्य विनोद द्वारा या कभी रोब डाल कर काम बना लेता है, और पांडेपुर में मकानों के खाली कराये जाने पर जब सबका नुकसान होता है, तो नायकराम अपने मकान के मुआवजे की कई गुनी रकम वसूल कर लेता है। ताड़ी पीने वाले के स्वभाव और विचारों का सच्चा स्वरूप भैरों में देखने को मिलता है।

प्रेमचन्द जी मनुष्य के भीतर वर्तमान कुंठाओं, मनोग्रंथियों और निर्बलताओं से परिचित हैं, जो उसे विचित्र प्रकार के आचरण करने को बाध्य करती हैं। जब जॉन सेवक को यह मालूम होता है कि सूरदास ही उस जमीन का मालिक है, जिसे वह लेना चाहते हैं, तो वे उसे पाँच रुपये देने लगते हैं यद्यपि वे उसे एक पैसा भी नहीं देना चाहते। उधर सूरदास जिसे एक पैसा पाने से सन्तोष हो जाता था, पाँच रुपये लेने से इनकार करते हुए कहता है—"नहीं साहब, धर्म में आपका स्वार्थ मिल गया गया है, अब यह धर्म नहीं रहा।' मिठुआ के चिढ़ाने पर जब भैरों उसे मार देता है, तो इतने सहनशील और समझदार सूरदास का धैर्य डोल जाता है। उसके कहने पर भी जब मिठुआ भैरों को डर के मारे नहीं चिढ़ा पाता, तो सूरदास का निर्बल क्रोध उसे बच्चों के समान आचरण करने के लिए बाध्य करता है। वह स्वयं बाल हठ करते हुए भैरों को चिढ़ाता है—"भैरों भैरों ताड़ी बेच, या बीबी की साड़ी बेच।' यह उदाहरण प्रेमचन्द जी की पैनी बुद्धि और अनुभव का प्रमाण है।

प्रेमचन्द जी ने अपने अनुभव से इस तथ्य को ग्रहण कर लिया था कि मनुष्य में अच्छाई और बुराई दोनों का मिश्रण होता है। ऐसा मनुष्य बिरला ही होगा जो पूर्णतया अच्छा हो या बुरा। सूर जैसा त्यागी मनुष्य जो हाथ में आया हुआ धन भैरों को दे देता है और जमीन के मुआवजे में प्राप्त धन सेवकदल को दान कर देता है, किसी अवसर पर धन का संग्रह भी करता है। अपनी झोपड़ी में वह एक-एक पैसा संजोकर रखता है। झोपड़ी जल जाने पर वह राख में उसे रुपये की पोटली खोजते देख कर हमे जार्ज इलियट के सिलास मॉनर की याद आ जाती है। विनय त्यागी और सेवा रत होते हुए भी वासना का दास बन जाता है। राजा महेन्द्रसिह जनता के आदर्श सेवक होते हुए भी यश की कामना से पतन की ओर अग्रसर होने लगते हैं। भैरों ईर्ष्या-द्वेष और प्रतिहिंसा के भावों से परिपूर्ण होने पर भी अन्त में सूरदास का भक्त बन जाता है और दुष्कृत्य छोड़ देता है।

प्रेमचन्द जी ने इस बात का सदा ध्यान रक्खा है कि उनके पात्र अपने

मूल स्वभाव को सुरक्षित रखते हुए भी परिस्थितियों के प्रभाव से कुछ परिवर्तित हों। ताहिर अली ईमानदार व्यक्ति है परन्तु अपनी विमाताओं के प्रभाव में आकर गबन करता है। साथ ही जेल से लौटने पर वह अपने को सँभाल लेता है तथा ईमानदारी से ही जीवन-निर्वाह करता है। सूरदास कई बार पाँडेपुर वालों के दुर्व्यवहार से पीड़ित होकर अपनी जमीन बेच डालने का निश्चय करता है परन्तु फिर उसकी धर्मबुद्धि जाग्रत हो जाती है। विनय सोफिया के प्रेम में पड़कर सेवा धर्म से विमुख होता है परन्तु अन्त में अपने को सँभाल लेता है और आदर्श के पीछे अपने प्राण दे देता है। कुँवर भरतसिंह जन्म भर विलासी रहे। पुत्र-स्नेह के कारण वे समाज-सुधार में लगते हैं परन्तु पुत्र की मृत्यु के बाद उनके पुराने संस्कार फिर जाग उठते हैं।

प्रेमचन्द जी को विविध प्रकार की अवस्थाओं का ज्ञान है। बचपन की प्रकृति की विशेषताओं से अवगत होने के कारण ही वे बच्चों के स्वभाव का सफल चित्रण कर सके हैं। उदाहरण के लिए मिठुआ दूध के लिए हठ करता है, सूरदास की ओर से वह जगधर और भैरों को चिढ़ाता है, ताहिर अली को चिढ़ाता है, ताहिर अली से दुश्मनी होने पर वह घीसू के साथ मिलकर ताहिर पर तानाकशी करता है। मिठुआ कहता है—"जै शंकर काँटा लगे न कंकर, दुश्मन को तंग कर।" घीसू कहता है—"बम भोला, बैरी के पेट में गोला, उससे कुछ न जाय बोला।" ताहिर अली सुन कर तिलमिला जाते। फिर दोनों मिल कर ताहिर के भाइयों से बदला लेते हैं। भैरों से बदला लेने के लिए मिठुआ, उसकी दूकान में आग लगा देता है। किशोर जनों की प्रकृति को प्रेमचन्द ने भली भाँति समझा है। कारखाने के खुलने पर मजदूरों की अनैतिकता से प्रभावित होकर घीसू, मिठुआ और विद्याधर किस प्रकार सुभागी के बारे में बातें करते हैं और कैसे मूर्खता पूर्वक सूर की झोपड़ी में घुस कर सुभागी को पकड़ते हैं—यह घटनाएँ किशोर स्वभाव का सच्चा परिचय देती हैं। स्त्री-स्वभाव का चित्र हमें जमुनी में देखने को मिलता है। सूरदास को दूध देने के पहले वह उसमें पानी मिला देती है।

(३) **चरित्र-चित्रण और अन्तर्द्वन्द्व**—पुराने साहित्यकार पात्रों का परिस्थितियों से संघर्ष करा कर उनके चरित्र का परिचय देते थे। अब पात्रों के हृदय के भीतर दो विरोधी भावों या विचारों का संघर्ष दिखाने की परम्परा है। इस प्रकार के संघर्ष को अन्तर्द्वन्द्व कहते हैं। प्रेमचन्द जी अन्तर्द्वन्द्व के चित्र प्रस्तुत करने में बड़े पटु हैं। इसका सुन्दर नमूना रंगभूमि के तेरहवें परिच्छेद में देखने को मिलता है जब सोफी विनय के राजस्थान चले जाने पर रानी जान्हवी के घर रहकर बड़े पशोपेश में पड़ जाती है। ज्यों-ज्यों वह अपने पर संयम रखना चाहती है, त्यों-त्यों उसका मन उसके हाथों से निकलता जाता है। "वह मन को उधर से हटाने के लिये पुस्तकावलोकन में मग्न होना चाहती; लेकिन जब पुस्तक सामने खुली रहती और मन कहीं और जा पहुँचता, तो वह झुँझला कर पुस्तक बन्द कर देती।" (पृ० १४३) "सोफिया विनय को भूल जाना चाहती, पर उसके साथ शंकित रहती कि कहीं वह मुझको भूल न जायें।" वह विनय को पत्र न लिखना चाहती पर पत्र लिखे बिना भी न रहा जाता। विनय के पत्र पढ़ने की आतुरता से वह बिना बताये रानी जान्हवी के कमरे में चली जाती है पर बाद में उनसे वह क्षमा याचना करती है। रानी साहब को वह विनय को भुला देने का वचन देती है और प्रभुसेवक के द्वारा लाये गये विनय के पत्र को पढ़े बिना जान्हवी को दे देती है। फिर रात में उसे चैन नहीं आती और वह छिपकर रानी साहब का पत्रों वाला बैग ले आती है जिसमें विनय का पत्र ढूँढते हुये सारी रात बिता देती है। यह पूरा परिच्छेद मन के भीतर होनेवाले संघर्ष का अद्भुत नमूना है। इससे सोफिया के चरित्र पर पूरा प्रकाश पड़ता है।

विनय और इन्दु के मनों में भी अन्तर्द्वन्द्व होता है। एक ओर माता की इच्छा पूरी करने के लिये वैवाहिक जीवन से दूर रहने का आदर्श और दूसरी ओर सोफी को अपनाकर सुखमय जीवन बिताने की इच्छा के बीच घोर संघर्ष विनय के मन में होता है। इससे उनके मन की दुर्बलताओं और सहज प्रवृतियों के आवेग का पता चलता है। इंदु को पति का अन्याय असह्य है पर माता द्वारा जमाये गये संस्कार उसे पति की आज्ञानुसार चलने को बाध्य करते हैं उसके मन में इससे भीषण अन्तर्द्वन्द्व होता है। इससे उसके स्वभाव का पता चलता

है। इस प्रकार के अन्तर्द्वन्द्व प्रभुसेवक, सूरदास, और ताहिरअली के जीवन में देखने को मिलते हैं। इनसे प्रेमचंद जी के चरित्र-चित्रण में बड़ी जान आ गयी है।

(४) चरित्र चित्रण में आदर्श और यथार्थ का समन्वय—प्रेमचन्द जी अपने पात्रों के चरित्र-चित्रण में इस बात का बहुत ध्यान रखते हैं कि वे कहीं कल्पना जगत के जीव न बन जायें और उन्हें देखकर हम पहचान न सकें। साथ ही वे उनकी दुर्बलताओं का नग्न चित्र भी नहीं प्रस्तुत करते। रंगभूमि का कोई भी पात्र ऐसा नहीं जान पड़ता जो देवलोक या पाताललोक का निवासी हो। उनके पात्र जीवन की नग्न वास्तविकताओं से टक्कर लेते हैं, उनकी अवहेलना नहीं करते, कभी नीचे भी गिरने पर ऊँचे उठने की प्रवृत्ति का त्याग नहीं करते। जोला की भाँति प्रेमचंद अपने पात्रों को कामुकता का दास नहीं बना देते। सोफी और विनय दोनों अनेक अवसरों पर यह अनुभव करते हैं कि वासना की तुष्टि आवश्यक है। प्रेम से उसे दूर रखना बड़ा कठिन काम है। कई बार दोनों शारीरिक सम्बन्ध के लिये आतुर हो उठते हैं परन्तु वे एकबार भी संयम नहीं खो देते। जीवन में गिरना, भूल करना मनुष्य के जीवन का सबसे बड़ा यथार्थ सत्य है, परन्तु गिरकर उठना उसका महान आदर्श है। प्रेमचंद जी चरित्र-चित्रण में इस तथ्य की कभी उपेक्षा नहीं करते। सूरदास कई बार मानवोचित दुर्बलताओं से ग्रस्त हो जाता है परंतु वह हर बार उन पर विजय पा लेता है। ताहिरअली का आदर्शवाद जीवन के यथार्थ से टकराता है, टूटता है परन्तु बाद में उठ खड़ा होता है।

प्रेमचंद जी ने जीवन के यथार्थ को उपन्यास की सामग्री के रूप स्वीकार किया है परन्तु उस यथार्थ को उन्होंने सँवारा है। उसे आदर्श के साँचे में ढालकर उन्होंने प्रस्तुत किया है। एक स्थान पर वे स्वयं कहते हैं—"जब तक साहित्य का काम केवल मन बहलाव का सामान जुटाना, केवल लोरियाँ गाकर सुलाना, केवल आँसू बहाकर जी हल्का करना था, तब तक इसके लिए कर्म की आवश्यकता न थी।.........हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा जिसमें उच्च चिन्तन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौन्दर्य का सार हो,

सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाइयों का प्रकाश हो।"

(५) **चरित्र-चित्रण में विविधता :**—प्रेमचन्द जी के चरित्र-चित्रण में एक विशेषता यह भी है कि जीवन का कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है जिससे वे पात्रों का चुनाव न करते हों। उनका चित्र-पट बहुत बड़ा होता है, जिस पर असंख्य नर-नारी विविध चित्रों के रूप में वे उतारते हैं। भगवान की सृष्टि के समान ही उनकी भी अपनी सृष्टि है। इस कला में वे अंग्रेजी के उपन्यास लेखक डिकेन्स के समान हैं। रंगभूमि में चरित्र-चित्रण की यह विविधता देखने को मिलती है। उच्च कुल के वर्गों में कुंवर भरतसिंह, रानी जान्हवी, इन्दु, विनय आदि प्रमुख हैं। इनमें भी परस्पर अन्तर है। भरतसिंह विलासी हैं, समाज सेवा का नया रोग उन्हें लगा है परन्तु वे अंग्रेज अधिकारियों से मिल कर चलने में ही हित देखते हैं। राजा महेन्द्रसिंह दबंग हैं पर वे अधिकारियों को खुश रखकर अपने यश की सर्वत्र रक्षा करना चाहते हैं। रानी जान्हवी की बस एक इच्छा है कि वे प्राचीन राजपूत रानियों में गिनी जायँ। उस अभिजात वर्ग की एक पीढ़ी इन लोगों की है और दूसरी पीढ़ी इन्दु और विनय की है। इन्हें पुरानी परम्पराओं से प्रेम नहीं है। वे विद्रोह से भरे हुये हैं। समाज सुधारकों और देश सेवकों की कमी रंगभूमि में नहीं है। डा० गाँगुली और इन्द्रदत्त ऐसे लोगों के प्रतिनिधि हैं। डा० गाँगुली की देश सेवा कौंसिल तक सीमित है। वहाँ अंग्रेजों का असफल विरोध करके देश का भला करने का प्रयत्न करते हैं परन्तु इन्द्रदत्त गर्म स्वभाव का सुधारक है। वह प्रत्यक्ष संघर्ष में विश्वास करता है और इसी में वह अपनी जान देता है। जॉनसेवक भारत में उठती हुयी नई पूंजीवादी शक्ति के प्रतिनिधि हैं, जिनमें शोषण की प्रवृत्ति के साथ न्याय-अन्याय की कोई परवाह किये बिना, धन संग्रह करने की उत्कट इच्छा वर्तमान है। युवकों की नयी पीढ़ी का स्वरूप प्रभुसेवक में देखने को मिलता है जिसे वर्तमान शिक्षा ने अव्यावहारिक और कल्पनाशील बना दिया है। निम्नस्तरीय समाज में आर्थिक कठिनाइयों के बोझ से दबे हुए ताहिर अली, भीख माँगने वाला पर उच्चात्मा सूरदास, अपने-अपने व्यक्तिगत स्वार्थों में रत बजरंगी, जगधर, भैरों, नायकराम आदि अपान

अलग-अलग विशेषताएँ रखते हैं। हम सबको अलग-अलग सरलता से पहचान सकते हैं।

रंगभूमि के कथोपकथन

उपन्यासों में कथोपकथनों का प्रयोग नाटकों के अनुकरण से होने लगा है। जब पात्र स्वयं बोलते-सुनते हैं, तो वे हमारी कल्पना में मूर्त बन कर जीवित प्राणियों का रूप धारण कर लेते हैं। कथोपकथनों की उपयोगिता इस बात में भी है कि यदि कथाकार ही सब कुछ कहता रहे, तो वर्णनों की भरमार हो जाती है और पाठक का मन ऊब जाता है, वार्तालाप आ जाने पर पाठक को इन वर्णनों से मुक्ति मिल जाती है और उसको कथा में नवीन रस मिलने लगता है। इसलिए उपन्यासों में कथोपकथनों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में किया जाता है। प्रेमचन्द जी ने कथोपकथनों का प्रयोग अपने उपन्यासों को न केवल उनकी रसात्मकता बढ़ाने के लिए किया है, वरन् उनके द्वारा कथा के विकास, पात्रों के चरित्र-चित्रण और हृदय की गूढ़ अनुभूतियों और सूक्ष्म विचारों के प्रकटन को स्वाभाविक बनाने के लिए भी किया है। रंगभूमि में उन्होंने कथोपकथनों की योजना उक्त उद्देश्यों को लेकर की है।

(क) **कथोपकथनों द्वारा कथा का विकास:**—प्रेमचन्द जी के कथोपकथन सोद्देश्य लिखे गये हैं। वे स्वयं पर्दे के पीछे छिप जाते हैं और पात्रों के मुख से आगे आने वाली घटनाओं का आभास करा देते हैं। सूरदास जॉनसेवक द्वारा दिये गये पाँच रुपयों की धनराशि लौटा देता है। उसके और जॉनसेवक के बीच का वार्तालाप बता देता है कि सूरदास की जमीन को लेकर कथानक आगे बढ़ेगा और कथा के मूल संघर्ष का विषय यही जमीन होगी। उसके बाद ही जॉनसेवक और उनकी पत्नी के बीच जो बात होती है, उसी से आगे के संघर्ष का पता चल जाता है।

मिसेज सेवक ने पूछा—क्या बातें हुईं?

जॉनसेवक—है तो भिखारी, पर बड़ा घमण्डी है। पाँच रुपये देता था, न लिये।

मिसेज सेवक—है कुछ आशा?

जॉनसेवक—जितना आसान समझा था, उतना आसान नहीं हैं।

इस प्रकार इन्दु और विनय के वार्तालाप से ही पहली बार सोफिया के विनय के प्रति प्रेम का पता चलता है और यह मालूम हो जाता है कि यह प्रेम दो परिवारों के दुख का कारण बन जायगा। सोफिया और प्रभु के वार्तालाप से प्रकट हो जाता है कि वह अपने प्रेम को वासना से अलग रखना चाहती है और उसका अन्त विवाह के रूप में कदापि न होगा।

(ख) **कथोपकथनों द्वारा पात्रों के चरित्र पर प्रकाश**:—इस सम्बन्ध में चरित्र-चित्रण के प्रसंग में कई स्थलों पर बहुत कुछ लिखा जा चुका है। दो पात्रों के बीच में होने वाले वार्तालाप कभी उन दोनों के स्वभाव पर प्रकाश डालते हैं और कभी उस तीसरे पात्र के शील-गुण की जानकारी प्राप्त कराने में सहायक होते हैं, जो उनके सामने उपस्थित नहीं है। सूरदास के चरित्र के विषय में, सोफी-क्लार्क, विनय-सोफी, भैरों, बजरंगी, जगधर और नायकराम के वार्तालापों से बहुत कुछ ज्ञात हो सकता है। सभी लोग उसे देवता, फरिश्ता और महान पुरुष कहते हैं। विनय के गुणों के विषय में रानी जान्हवी और सोफिया के वार्तालाप से पूरी जानकारी प्राप्त होती है। राजा महेन्द्र सिंह के स्वभाव के बारे में इंदु और सोफिया के वार्तालाप पर्याप्त प्रकाश डालते हैं। पात्रों के सम्बन्ध में प्रत्यक्ष टिप्पणी इन्हीं में मिलती है।

जब दो पात्र आपस में वार्तालाप करते हैं, तो उनके स्वभाव, शील-गुण के बारे में अप्रत्यक्ष रूप से बहुत कुछ मालूम हो जाता है। उदाहरण के लिए ताहिर अली की विमाताओं के वार्तालाप से उनकी दुष्टता, क्रूरता, चालाकी और चालबाजी का पता चल जाता है। ताहिर के मारे जाने पर यह दोनों जमुनी को भयभीत करने के लिये कैसे वार्तालाप करती हैं, देखिए :—"जैनब ने उसे देखते ही तुरन्त बुला लिया और डाँट कर कहा—मालूम होता है, तेरी शामत आ गयी है।

जमुनी—बेगम साहब, शामत नहीं आयी है, बुरे दिन आये हैं।······जो कुछ भूल-चूक हुयी है, उसे माफ कीजिये, नहीं तो उजड़ जायँगे, कहीं ठिकाना नहीं है।

ज़ैनब—अब हमारे किये कुछ नहीं हो सकता। साहब बिना मुकदमा चलाये न मानेंगे और वह न चलायेंगे, तो हम चलायेंगे। हम कोई धुनिया जुलाहे हैं ? यों सबसे दबते फिरें, तो इज्जत कैसे रहे ?......

रकिया—जब पुलिस आकर मारते-मारते कचूमर निकाल लेगी, तब होश आयेगा; नजर नियाज अलग से देनी पड़ेगी...... ।

जब जमुनी इन दोनों को प्रसन्न करने के लिए दूध-दही खिलाने का वायदा करती है पर धन देने से इनकार करती है, तो जैनब दूसरा दाँव चलाती है—तू अपना दूध अपने घर रख......। तुझसे कहे देती हूँ कि तू कल से घर में न बैठने पायेगी।...... हमें खुदा ने ऐसा इल्म दिया है कि जहाँ एक नक्श लिख कर दम दिया कि जिन्नात अपना काम करने लगे। जब हमारे मियाँ जिंदा थे तो एक बार पुलिस के एक बड़े हाकिम से कुछ हुज्जत हो गयी।...... मैंने उसी दिन रात को सुलेमानी नक्श लिखकर दम किया, उसकी मेम का पूरा हमल गिर गया।...... क्यों रकिया तुम्हें याद है न ?"

इस तरह के वार्तालाप पात्र के चरित्र के बारे में पुकार-पुकार कर सब कुछ कह देते हैं। ताहिर अली की बातों से उसकी धर्मभीरुता और अंध-विश्वास; सूरदास के वार्तालापों से उसकी सच्चाई, दृढ़ता और न्याय प्रियता; सोफिया की बातों से उसका आदर्श प्रेम ओर त्याग; प्रभु की बातों से उसकी कल्पना और कविहृदय आदि स्पष्ट झलकता है।

(ग) कथोपकथनों द्वारा विचारों का विश्लेषण—कहीं-कहीं प्रेमचन्द जी ने दो पात्रों के बीच वार्तालाप की योजना केवल इस लिए व्यक्त की है कि वे किसी जटिल विचार का विश्लेषण करना चाहते हैं। एक पात्र के मुँह से वे एक बात कहलाते हैं, दूसरा प्रश्न करता जाता है और पहला उत्तर देता है; या दूसरा पहले के विचार का विरोध करता है, तो पहला उसके विरोध का खंडन करता है। पांडेपुर पहुँच कर जॉन सेवक कारखाना खोलने के लाभों का विवेचन करते हैं और पाँडेपुर निवासी उनकी बात का विरोध करते हैं। जॉन सेवक उनके हर विरोध को तर्कों द्वारा काटते हैं :—

"जॉन सेवक—लेकिन अगर उस जमीन के मेरे हाथ आने से तुम्हारा

सोलहों आना फायदा हो, तो भी तुम हमें न लेने दोगे ?

बजरंगी—हमारा फायदा क्या होगा, हम तो मिट्टी में मिल जायेंगे।

जॉन सेवक—मैं तो दिखा दूँगा कि यह तुम्हारा भ्रम है। बतलाओ तुम्हें क्या एतराज है ?

बजरंगी—पंडा जी के हजारों यात्री हैं, वे इसी मैदान में ठहरते हैं।...... यह जमीन न रहे, तो कोई यात्री यहाँ झाँकने न आवेगा।

जॉन सेवक—यात्रियों के लिए, सड़क के किनारे खपड़ैल के मकान बनवा दिये जाँय, तो कैसा ?

बजरंगी—इतने मकान कौन बनवायेगा ?

जॉन सेवक—इसका मेरा जिम्मा। मैं वचन देता हूँ कि यहाँ धर्मशाला बनवा दूँगा।

बजरंगी—मेरी और मोहल्ले के आदमियों की गायें भैंसे कहाँ चरेंगी ?

जॉन सेवक—अहाते में घास चराने का तुम्हें अधिकार होगा। फिर अभी तुम्हें सारा दूध लेकर शहर जाना पड़ता है; हलवाई तुमसे दूध लेकर मलाई, मक्खन, दही बनाता है और तुमसे कहीं ज्यादा सुखी है। यह नफा उसे तुम्हारे दूध से होता है। जब यहाँ कारखाना खुल जायगा तो हजारों आदमियों की बस्ती हो जायगी; तुम दूध, मलाई बेचोगे, दूध अलग बिकेगा। इस तरह तुम्हें दोहरा नफा होगा। तुम्हारे उपले घर बैठे बिक जायेंगे। तुम्हें तो कारखाना खुलने से सब नफा ही नफा है।"

इसी प्रकार, जॉन सेवक कुँवर भरत सिंह के पास जाकर कारखाना खोलने की योजना बताते हैं। वे उद्योगों से भारत का लाभ होना सिद्ध करने लगते हैं, तो भरत सिंह उद्योग, फिर तम्बाकू की खेती का विरोध करते हैं। तब जॉन सेवक उनकी हर युक्ति को काटते हुए उन्हें आश्वस्त कर देते हैं।

(घ) कथोपकथनों द्वारा भावाभिव्यक्ति—प्रेमचन्द जी ने कुछ संवादों की योजना इसलिए की है कि वे हृदय के गूढ़ और आवेगयुक्त भावों को पात्रों के मुख से प्रकट कराना चाहते हैं। प्रेम, ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध और हर्ष के संवेग इन संवादों के माध्यम से प्रकट होते हैं। आत्मग्लानि जैसे भाव के प्रकटन का

नाटक देखिये :—

"नायकराम—तब तो भैया, तुम हमें भी ले बीते। एक पापी तो मैं ही हूँ कि सारे दिन मटर गस्ती करता हूँ और वह भोजन करता हूँ कि बड़ों-बड़ों को मयस्सर न हो।

ठाकुरदीन—दूसरा पापी मैं हूँ कि शौक की चीज़ बेचकर रोटियाँ कमाता हूँ। संसार में तमोली न रहें, तो किसका नुकसान होगा?

जगधर—तीसरा पापी मैं हूँ कि दिन भर औन पौन करता रहता हूँ। सेव और खुर्मे खाने को न मिलें, तो कोई मर न जायगा।

भैरों—तुमसे बड़ा पापी तो मैं हूँ कि सब को नशा खिला कर अपना पेट पालता हूँ। सच पूछो तो इससे बुरा कोई काम नहीं। आठों पहर नशे बाजों का साथ, उन्हीं की बातें सुनना और उन्हीं के बीच रहना।..............

बजरंगी—सच पूछो तो सबसे बड़ा पापी मैं हूँ कि गउओं का पेट काट कर, बछड़ों को भूखा मार कर अपना पेट पालता हूँ।"

कथोपकथनों की विशेषताएँ

(क) **स्वाभाविकता**—रंगभूमि में कथोपकथन बड़े स्वाभाविक हैं। प्रेमचंद जी ने संवादों की योजना में इस बात का ध्यान रक्खा है कि वह पात्रों के स्वभाव, आयु, जाति, समय, स्थान और भावों के अनुकूल हों। माँ-बेटी किस प्रकार बातचीत करती हैं, उसका नमूना देखिए:—

"मिसेज़ सेवक बोलीं—तुझे ईसू के नाम से क्यों इतनी घृणा है?

सोफिया—मैं हृदय से उन पर श्रद्धा करती हूँ।

माँ—तू झूठ बोलती है।

सोफिया—अगर दिल में श्रद्धा न होती तो जबान से कदापि न कहती।

माँ—तू प्रभु मसीह को अपना मुक्तिदाता समझती है? तुझे यह विश्वास है कि वही तेरा उद्धार करेंगे?

सोफ़िया—कदापि नहीं! मेरा विश्वास है कि मेरी मुक्ति—अगर मुक्ति हो सकती है, तो मेरे कर्मों से होगी।

माँ—तेरे कर्मों से तेरे मुँह में कालिख लगेगी, मुक्ति न होगी।

दो माँ-बेटियों के सवाल-जवाब और चुनौतीपूर्ण वाद-विवाद का यह सुन्दर नमूना है। एक में दृढ़ता और दूसरे में क्रोध की विफलता है। अब दो नवयुवतियों के वार्तालाप उनकी आयु के विचार से देखिए—

"सोफ़िया—अच्छा अगर वह (माता-पिता) आपकी इच्छा के विरुद्ध आपका विवाह करना चाहें तो ?

इंदु—(लजाते हुए) यह समस्या तो हल हो चुकी। माँ-बाप ने जिस से उचित समझा, कर दिया। मैंने जबान तक नहीं खोली।

सोफ़िया—अरे, यह कब ?

इंदु—इसे दो साल होगये। (आँखें नीची करके) अगर मेरा अपना बश होता, तो उन्हें कभी न बरती, चाहे कुँवारी ही रहती। मेरे स्वामी मुझसे प्रेम करते हैं, धन की कोई कमी नहीं। पर मैं उनके हृदय के केवल चतुर्थांश की अधिकारिणी हूँ, उसके तीन भाग सार्वजनिक कामों की भेंट होते हैं।

सोफिया—आपकी धार्मिक स्वाधीनता में तो बाधा नहीं डालते ?

इन्दु—नहीं। उन्हें इतना अवकाश कहाँ है ?

सोफिया—तब तो मैं आपको मुबारकबाद दूँगी ;

इन्दु—अगर किसी कैदी को बधाई देना उचित है, तो शौक से दो।

सोफिया—बेड़ी प्रेम की हो, तो ?

इन्दु—ऐसा होता, तो मैं तुमसे बधाई देने को आग्रह करती। मैं बँध गयी वे मुक्त हैं।............"

प्रेमी-प्रेमिका किस प्रकार घुलमिल कर बातें करते हैं, उसका चित्रण कितना स्वाभाविक है—

"सोफ़िया—.............सच बताना विनय, तुमने मुझपर मोहनी तो नहीं डाल दी है ? मैं इतनी अधीर क्यों हो रही हूँ ?

विनय ने लज्जित होकर कहा—क्या जाने सोफी, मैंने एक क्रिया तो की है। नहीं कह सकता कि वह मोहनी थी या कुछ और !

सोफी—सच ?

विनय—हाँ, बिल्कुल सच । मैं तुम्हारी प्रेम शिथिलता से डर गया था कि कहीं तुम मुझे फिर न परीक्षा में डालो ।

सोफी ने विनय की गरदन में हाथ डाल दिये और बोली—तुम बड़े छलिया हो । अपना जादू उतार लो, मुझे क्यों तड़पा रहे हो ?

विनय—क्या कहूँ, उतारना नहीं सीख, यही तो भूल हुई ।" आदि

सोफिया प्रेम की अधीरता में और विनय अपने भोलेपन में दोनों बड़े स्वाभाविक ढंग से वार्तालाप करते हैं । इस प्रकार के अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं, जिन्हें हम पात्रों के स्वभाव के अनुकूल पाते हैं । ताहिर अली और उनकी विमाताओं के बीच व्यंग्य, वक्रोक्ति, ताने और हृदय को कोसने वाले वार्तालाप का एक नमूना और देखिए—

"ताहिर—पुलिस के मुहकमे में हर तरह की गुंजाइश होती है । यहाँ क्या है ? गिनी बोटियाँ, नपा शोरवा ।

जैनाब—मैं तुम्हारी जगह होती, तो दिखा देती कि इसी नौकरी में कैसे कंचन बरसता है । सैकड़ों चमार हैं । क्या कहो, तो सब एक एक गट्ठा लकड़ी न लायें ? सबों के यहाँ छान-छप्पर पर तरकारियाँ लगी होंगी । क्यों नहीं तुड़वा मँगाते ? खालों के दाम में भी कमो-वेशी करने का तुम्हें अख्तियार है । कोई यहाँ बैठा देख रहा है । दस के पौने दस लिख दो क्या सहज है...... साहब को सुभा भी नहीं हो सकता ।............ईमान दुरुस्त रखना हो, तो इंसान को चाहिए कि फकीर हो जाय ।............

ताहिर...भाई, जो लोग करते हों, वे जाने, मेरी रूह तो इन हथकंडों से फना होती हैं । अमानत में हाथ नहीं लगा सकता । आखिर खुदा को भी मुंह दिखाना है । उसकी मरजी हो, जिंदा रखे या मार डाले ।

जैनव—वाह रे मरदुए, कुरबान जाऊँ तेरे ईमान पर । तेरा ईमान सलामत रहे चाहे घर के लोग भूखों मर जायँ । तुम्हारी मंशा यही है कि ये सब मुंह में कालिख लगा कर निकल जायँ ।............"

प्रेमचन्द जी अपने पात्रों के वार्तालाप स्वाभाविक बनाने के लिए उनकी भाषा, उनके कथन के ढंग, आदि का पूरा ध्यान रखते हैं । ऊपर उल्लिखित

वार्तालाप में मुसलमान पात्रों की भाषा, और स्त्रियों के स्वभाव के अनुकूल विचारों का होना स्वाभाविकता की वृद्धि करता।

(ख) **वार्तालापों की संक्षिप्तता** :—प्रेमचन्द जी ने परिस्थितियों के विचार से उपयुक्त स्थान पर कथोपकथनों को संक्षिप्त, कभी एक वाक्य तो कभी अर्द्धवाक्य में करना उचित समझा है। जब कोई रहस्य खोलना होता तो एक-एक कर एक बात कही जाती है। सूरदास भैरों के पास अपनी ही रुपयों की पोटली ले जाता है, जिसे सुभागी ने चुरा कर और उसे लाकर दिया था। वह इस रहस्य के बारे में इस प्रकार वार्तालाप करता है।

"सूरदास ने भैरों से कहा—यहाँ और कोई नहीं है? तुझे तुमसे एक भेद की बात कहनी है।

भैरों—कोई नहीं है कहो क्या बात कहते हो?

सूरदास—तुम्हारे चोर का पता मिल गया।

भैरों—सच, जवानी कसम?

सूरदास—हाँ सच कहता हूँ। वह मेरे पास आकर तुम्हारे रुपये रख गया। और तो कोई चीज नहीं गयी थी। आदि",

अदालत में इस बात पर जोर दिया जाता है कि वादी-प्रतिवादी अत्यन्त संक्षेप में, केवल आवश्यक बात कहें और जो कुछ पूछा जाय, वही बतावें। इसका नमूना सूरदास पर चले मुकदमें में मिलता है। छोटे-छोटे वार्तालाप चुटीले और प्रवाहपूर्ण हैं। रानी जान्हवी को सोफिया और विनय की चेष्टाओं से उनके प्रच्छन्न प्रेम का पता लग जाता है। उनके तन-बदन में आग लग जाती है। वे "अग्निमय नेत्रों से विनय की ओर देख कर बोलीं—तुम कब जा रहे हो?

विनयसिंह—बहुत जल्द।

जान्हवी—मैं बहुत जल्द का आशय यह समझती हूँ कि तुम कल प्रातः काल ही प्रस्थान करोगे।

विनयसिंह—अभी साथ जाने वाले कई सेवक बाहर गये हुए हैं।

जान्हवी—कोई चिंता नहीं है, वे पीछे चले जायँगे, तुम्हें कल प्रस्थान

करना होगा।

विनयसिंह—जैसी आज्ञा।

जान्हवी— अभी जाकर सब आदमियों को सूचना दे दो। मैं चाहती हूँ कि तुम स्टेशन पर सूर्य के दर्शन करो

विनय—इन्दु से मिलने जाना है।

जान्हवी—कोई जरूरत नहीं। मिलने-भेंटने की प्रथा स्त्रियों के लिए है, पुरुषों के लिए नहीं, जाओ।

"तब............

सोफिया ने साहस करके कहा—आज कल तो राजपूताने में आग बरसती होगी।

जान्हवी ने निश्चयात्मक भाव से कहा—कर्तव्य कभी आग और पानी की परवाह नहीं करता। जाओ, तुम भी सो रहो, सवेरे उठना है।"

इस प्रकार के कथोपकथनों में नाटकीयता है और पाठकों को लुभाने की शक्ति। ऐसे वार्तालाप अत्यन्त सफल हैं।

(ग) **कथोपकथनों की सरसता**—प्रेमचन्द जी के कथोपकथन कहीं-कहीं इतने सरस होते हैं कि यह इच्छा होती है कि पात्रों के वार्तालाप हम सुनते ही रहें। इन वार्तालापों में हास्य, विनोद, व्यंग्य और वक्रोतियों का प्रयोग बड़ी कुशलता से किया है। भाषा प्रवाह पूर्ण और मुहावरेदार है। रात को भजन गाने के लिए पांडेपुर के निवासियों की मंडली जमा होती है। भजन गाने से पहले एक दूसरे पर वार पर वार होते हैं। पढ़ते-पढ़ते आनन्द आ जाता है:—

"बजरंगी ने व्यंग्य से कहा—क्या अब कोई ताड़ी पीने वाला नहीं था? इतनी जल्दी दूकान क्यों बढ़ा दी?"

ठाकुर दीन—मालूम नहीं, हाथ-पैर भी धोये हैं या वहाँ से सीधे ठाकुर जी के मन्दिर में चले आये। अब सफाई तो कहीं रह ही नहीं गयी।

भैरों—क्या मेरी देह में ताड़ी पुती हुयी है?

ठाकुर दीन—भगवान के दरबार में इस तरह न आना चाहिए।

भैरों—तुम यहाँ नित्य नहा कर आते हो।

ठाकुर दीन—पान बेचना कोई नीच काम नहीं है।

भैरों—कौन पान कैसी ताड़ी। पान बेचना कोई ऊँचा काम नही है।

ठाकुर दीन—पान भगवान के भोग के साथ रखा जाता है। बड़े-बड़े जनेऊधारी मेरे हाथ का पान खाते हैं। तुम्हारे हाथ से कोई घड़ा तक नहीं छुआता।

जब बात बजरंगी पर आती तो रंग दूसरा हो जाता है। "जगधर—चलो भी, आये हो मुँह देखी करने, सेर भर दूध ढाई सेर बनाते हो उस पर भगवान के भगत बनते हो।

बजरंगी—अगर कोई माई का लाल मेरे दूध में एक बूंद पानी निकाल दे, तो उसकी टाँग की राह निकाल जाऊँ। यहाँ दूध में पानी मिलाना गऊ हत्या समझते हैं। तुम्हारी तरह नहीं कि तेल की मिठाई को घी कहकर बेचे और भोले-भाले बच्चों को ठगें।"

(घ) **कथोपकथनों के दोष**—प्रेमचन्द जी अपने कथोपकथन लिखने में कुशल हैं परन्तु वे समाज का शिक्षक बनने का दावा करते हैं। इसलिए वे पात्रों के द्वारा समय-समय पर उपदेश दिलाने लगते हैं और संवादों के कला-पक्ष की अवहेलना कर जाते हैं। उस समय स्पष्ट हो जाता है कि वे अपने मुँह की बातें पात्रों के मुँह में ठूंस रहे हैं। एक पात्र कुछ कहता है, तो कहता चला जाता है। ऐसा उस समय भी होता है, जब वे सामाजिक समस्याओं या किन्हीं विवादस्पद प्रश्नों में दिलचस्पी लेने लगते हैं। प्रभु सेवक की कविता के विषय में विनय और प्रभु में मतभेद हो जाता है। प्रभु सोफिया को निर्णय देने के लिए बुला लाता है। इस अवसर पर विनय कविता के बारे में एक लंबा वक्तव्य के डालते हैं। प्रभु सेवक दाम्पत्य जीवन के पक्ष में उतना ही लंबा भाषण देते हैं। इसी प्रकार कुंवर भरत सिह प्रभु सेवक और डा० गांगुली के बीच चलने वाला वार्तालाप भी लंबे कथोपकथनों से परिपूर्ण हैं। कुँवर साहब उससे पूछते हैं कि तुम्हें व्यवसाय से इतनी अरुचि क्यों है। प्रभुसेवक का प्रत्युत्तर निबंध का एक अंश सा जान पड़ता है। देखिए—"कवि

प्राय: एकान्त सेवी हुआ करते हैं, पर इससे उनकी कवित्व कला में कोई दूषण नहीं आने पाया। संभव था कि वे जीवन का विस्तृत और पर्याप्त ज्ञान प्राप्त करके अपनी कविता को और भी धार्मिक न बना सकते, लेकिन साथ ही यह शंका भी थी कि जीवन संग्राम में प्रवृत्त होने पर उनकी कवि कल्पना शिथिल हो जाती। होमर अंधा था, सूर भी अंधा था, मिल्टन भी अंधा था, पर यह सभी साहित्य-गगन के उज्ज्वल नक्षत्र हैं। तुलसी, बाल्मीकि आदि महाकवि संसार से अलग, कुटियों में बसने वाले प्राणी थे; पर कौन कह सकता है कि उनकी एकान्त सेवा से उनकी कवित्व कला दूषित हो गयी।" पृ० ३७५

जहाँ प्रेमचन्द जी की उपदेशात्मक प्रवृत्ति प्रबल होगयी है, वहाँ भी पात्रों के कथन बड़े लंबे हो गये हैं। जॉन सेवक प्रभु को व्यवहार कुशलता का उपदेश देते हैं तो पूरा पृष्ठ भर जाता है। सोफ़िया विनय को लंबा चौड़ा उपदेश इस बात पर वे डालती है कि वह अपने आदर्श से च्युत हो जाता है। पर इस प्रकार के कथन लंबे होते हुए जो उबाने वाले नहीं हैं क्योंकि जॉन सेवक के वक्तव्य से हमें कोई जीवनोपयोगी सूत्र मिल जाता है। सोफिया का लंबा कथन भावावेश से परिपूर्ण होने के कारण पाठक के मन को भी झकझोर देता है।

रंगभूमि में प्रेमचंद जी की लेखन शैली

जिस प्रकार प्रेमचंद जी के जीवन-अनुभव और उपन्यासों में पात्रों की विविधता है, उसी प्रकार उनके लेखन की कई शैलियाँ है। विषय, भाव और स्थिति के अनुसार उनकी शैली बदलती रहती है। इससे उनकी भावाभिव्यक्ति की प्रौढ़ता का परिचय मिलता है। 'रंगभूमि' तक आते-आते उनकी लेखन शैली मुखरित होने लगी थी। इसका प्रमाण उनकी लेखन शैली क प्रसंगानुसार बदलना है। हम क्रमश: उसके विभिन्न रूपों पर विचार करें गे।

(क) **वर्णनात्मक शैली**—प्रेमचंद जी को पात्रों के स्वरूप, पोशाक, स्वभाव और व्यवहारों के वर्णन में बड़ीं रुचि है। दृश्यों के वर्णन में भी उनका मन खूब रमता है। ऐसे अवसरों पर जब वे किसी बात का वर्णन

करना चाहते हैं, वे शब्दों की सहायता से वही काम कर दिखाते हैं, जो एक चित्रकार महीन से महीन रेखाओं की सहायता से करता हैं। वे किसी वस्त्र या दृश्य का चलताऊ वर्णन कभी नहीं करते। छोटी से छोटी, साधारण साधारण बात उनकी निगाहों से बच कर नहीं निकल सकती। इस प्रकार की लेखन शैली को हम **वर्णनात्मक** शैली कह सकते हैं और इस पर उनका एकाधिकार है। वे क्रम से हर एक चीज का वर्णन करते हैं। कुँवर भारत सिंह के भवन का वर्णन देखने योग्य है–"रानी जी ने उनका हाथ पकड़ लिया, और अपने राजभवन की सैर कराने लगीं। आध घंटे तक मिसेज़ सेवक मानों इंद्र लोक की सैर करती रहीं। भवन क्या था, आमोद, विलास, रसज्ञता और वैभव का क्रीड़ास्थल था। संगमरमर के फर्श पर बहु मूल्य कालीन बिछे थे। चलते समय उनमें पैर धँस जाते थे। दीवारों पर मनोहर पच्चीकारी; कमरों की दीवारों पर आदमकद आइने; गुलकारी इतनी सुन्दर कि आँखें मुग्ध हो जांय; शीशे की अलभ्य वस्तुएँ; प्राचीन चित्रकारों की विभूतियाँ; चीनी के विलक्षण गुलदान; जापान, चीन, यूनान और ईरान की कला-निपुणता के उत्तम नमूने; सोने के गमले; लखनऊ की बोलती हुई मूर्तियाँ, इटाली के बने हुइ हाथी दाँत के पलंग; लकड़ी के नफीस ताक; दीवारगीरें, किश्तियाँ, आँखों को लुभानेवाली, पिंजड़ों में चहकती हुयी, भाँति-भाँति की चिड़ियाँ; आँगन में संगमरमर का हौज़ और उसके किनारे संगमरमर की अप्सराएँ–मिसेज़ सेवक ने इन सारी वस्तुओं में से एक की भी प्रशंसा नहीं की।" पृ० ४२–४३

उक्त वर्णन में शब्द चित्रों की सहायता से कल्पना हमारे आगे एक संग्रहालय के समान सुसज्जित राजमहल का प्रत्यक्ष नमूना प्रस्तुत कर देती है इस प्रकार की शैली में अलभ्य वस्तुओं को गिना कर वर्णन को पूर्णता प्रदान की गयी है। ऐसे अनेक विस्तृत वर्णन रंगभूमि में ढूंढ़े जा सकते हैं।

(ख) **विचार-प्रकाशन शैली**—प्रेमचंद जी ने अपने उपन्यासों में जीवन के अनेक गहन प्रश्नों का स्पर्श किया है। वे स्वयं उनके बारे में प्रकाश डालते हैं और अपने पात्रों को भी उन पर विचार विमर्श करने के अवसर देते हैं।

इन विचारों की व्याख्या करके उन्हें सुगम बनाने की चेष्टा की गयी। इसके लिए वे कुछ विचार सामने रखते हैं, उनको उदाहरणों द्वारा स्पष्ट करते हैं और उसका समर्थन या विरोध करने के लिए तर्क भी उपस्थित करते हैं। उनकी विचार-प्रकाशन शैली की विशेषताएँ निम्नलिखित उदाहरण में देखी जा सकती हैं :— "मैं आपसे पहले कह चुका हूँ कि बलिदान और त्याग के आदर्श को मैं जिन्दा नहीं करता। वह मनुष्य के लिए सबसे ऊँचा स्थान है।... किन्तु जिस प्रकार कुछ व्रतधारियों के निर्जल और निराहार रहने से अन्न और जल की उपयोगिता में बाधा नहीं पड़ती, उसी प्रकार दो-चार योगियों के त्याग से दाम्पत्य जीवन त्याज्य नहीं हो जाता। दाम्पत्य मनुष्य के सामाजिक जीवन का मूल है। उसका त्याग कर दीजिए, बस, हमारे सामाजिक संगठन का शीराजा बिखर जायगा, और हमारी दशा पशुओं के समान हो जायगी। गार्हस्थ्य को ऋषियों ने सर्वोच्च धर्म कहा है; और अगर शांत हृदय से विचार कीजिए तो विदित हो जायगा कि ऋषियों का यह कथन अत्युक्ति-मात्र नहीं है। दया, सहानुभूति, सहिष्णुता, उपकार, त्याग आदि आदि देवोचित गुणों के विकास के जैसे सुयोग गार्हस्थ्य जीवन में प्राप्त होते हैं, और किसी अवस्था में नहीं मिल सकते आदि" पृ० ९०-९१

इस अंश में गार्हस्थ्य जीवन की श्रेष्ठता के विचार का प्रतिपादन बड़ी प्रभावशाली युक्तियों और उदाहरणों की सहायता से किया गया है। विचार-विश्लेषण इस शैली की प्रमुख विशेषता है।

(ग) **भाव-प्रकाशन शैली**—प्रेमचंद जी मन के भावों की अभिव्यक्ति में कुशल हैं। आवेग युक्त सूक्ष्म मनोभावों को वे भावात्मक शैली में प्रकट करते हैं। इस शैली की विशेषता यह है कि पाठक को भावात्मक अंश पढ़ते-पढ़ते उन्हीं भावों की अनुभूति होनेलगती है। जब सोफिया की माँ उसे फटकारती हुई कहती है कि तेरे कर्मों से तेरे मुँह में कालिख लगेगी'—तो यह बात उसके मन में तीर की तरह चुभ जाती है और उसके हृदय में भारी क्षोभ उमड़ पड़ता है। यह क्षोभ इन अंशों में बड़ी स्वाभाविकता के साथ प्रकट हुआ है—" मेरी स्वार्थ सेवा का यही दंड है। मैं केवल रोटियों के लिए अपनी

आत्मा की हत्या कर रही हूँ, अपमान और अनादर के झोंके सह रही हूँ। इस घर में मेरा हितैषी कौन है ? कौन है जो मेरे मरने की खबर पाकर आँसू की चार बूंदे गिरा दे ? शायद मेरे मरने से लोगों को खुशी होगी। मैं इनकी नज़रो में इतनी गिर गयी हूँ। एसे जीवन पर धिक्कार ! .... मैं इन्हें दिखा दूँगी कि मैं अपने पैरों पर खड़ी हो सकती हूँ।......इस वेहयाई की रोटियां खाने से भूखों मर जाना अच्छा है। बला से लोग हँसेंगे, आजाद तो हो जाऊँगी। किसी के ताने-मेहने तो न सुनने पड़ेंगे।" पृ० २८

(घ) काव्यात्मक शैली—प्रेमचंद जी की रंगभूमि में यत्र-तत्र कितने ही काव्य प्रसून बिखरे हुए हैं। कुछ ऐसे प्रसंगों पर जहाँ पर उनका कवि जाग उठा है, उन्होंने गद्य-काव्य-सा लिखा है। इन अंशों से उनकी शैली आलंकारिक बन गयी है। वे अनूठी उपमाओं का प्रयोग इन अवसरों पर करते हैं। उनकी अद्भुत कल्पना शक्ति का चमत्कार नये-नये उपमानों को ढूढ़ने में दिखायी देता है। एक उदाहरण देखिए——"आसमान पर लाली छाई हुयी थी, ज्वालाएँ लपक-लपक कर आकाश की ओर दौड़ने लगीं। कभी उनका आकार किसी मंदिर के स्वर्ण-कलश का सा हो जाता था, कभी वे वायु के झोंकों से यों कंपित होने लगती थीं, मानो जल में चाँद का प्रतिबिम्ब है। आग बुझाने का प्रयत्न किया जा रहा था! पर झोंपड़े की आग ईर्ष्या की आग की भांति कभी नहीं बुझती थी। कोई पानी ला रहा था, कोई यों ही शोर मचा रहा था; किन्तु अधिकांश लोग चुपचाप खड़े नैराश्यपूर्ण दृष्टि से अग्निदाह को देख रहे थे, मानों किसी मित्र की चिताग्नि है।" पृ० ११७

अग्निदाह का यह सुन्दर वर्णन हमें तुलसीदास और केशवदास के लंकादहन प्रसंगों की याद दिलाता है। प्रेमचन्द जी ने अग्निदाह के विभिन्न पक्षों को उत्प्रेक्षा और उपमा अलंकारों की सहायता से प्रत्यक्ष मूर्तिमान कर दिया है।

प्रेमचन्द जी की काव्यात्मक शैली का नमूना उनकी भावावेश प्रधान शैली में देखने को मिलता है। इस शैली में हृदय के उद्गारों का विस्फोट-सा हो गया है। यह शैली प्रवाहपूर्ण है और उसमें ओज गुण की प्रधानता है।

देखिए—" आह सोफ़ी ! इस प्रेम का यों अन्त न होने दो । यों मेरे जीवन का सर्वनाश न करो । यह वेदना मेरे लिए असह्य है । तुम्हें विश्वास न आयेगा, क्योंकि इस समय तुम्हारा हृदय मेरी तरफ से पत्थर होगया है, पर यह आघात मेरे लिए प्राणघातक होगा और अगर मृत्यु के बाद कोई जीवन है, तो उस जीवन में भी यह वेदना मेरे हृदय को तड़पाती रहेगी । सोफ़ी, मैं मौत से नही डरता, भाले की नोक को हृदय में ले सकता हूँ पर तुम्हारी यह निष्ठुर दृष्टि, तुम्हारा यह निर्दय आघात मेरे अन्तस्तल को छेदे डालता है । इससे तो यही कहीं अच्छा है कि तुम मुझे विष दे दो । मैं उस प्याले को आखें बंद करके योंही पी जाऊँगा, जैसे कोई भक्त चरणामृत पी जाता है । मुझे यह संतोष हो जायगा कि ये प्राण जो तुम्हें भेंट कर चुका था, तुम्हारे काम आ गये । " (पृ० ३२३)

प्रेमचन्द जी की भाषा

जिस काल में हिन्दी-गद्य का स्वरूप स्थिर हो रहा था, उसके तीन रूप तीन लेखकों ने प्रस्तुत किये थे । राजा लक्ष्मणसिंह ने संस्कृत प्रधान हिन्दी को प्रथम स्थान दिया, तो राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द ने अरबी-फारसी बहुल भाषा को अपनाया । उसी समय हिन्दी-गद्य की भाषा दो रूपों के बीच चौड़ी खाई बन गयी । अब, इन दो रूपों के बीच निकटता लाने का प्रयास भारतेन्दु जी ने किया । उन्होंने जनसाधारण की भाषा को महत्ता दी । उनकी भाषा का पूरा निखार हमें बा० देवकी-नन्दन खत्री के उपन्यासों में देखने को मिलता है । यह वही हिन्दी भाषा थी जिसे आगे चल कर राष्ट्रभाषा बनने का गौरव प्राप्त होना था । हिन्दी के इसी स्वरूप को 'हिन्दुस्तानी' नाम आगे चलकर दिया गया । महत्मा गाँधी और उनके अनुगामियों ने इसी हिन्दी का समर्थन किया । प्रेमचन्द जी को भी भाषा का यही रूप अधिक ग्राह्य रहा । इस प्रकार वे भारतेन्दु की डाली हुई परम्परा को आगे बढ़ाने में अग्रसर हुए। जिस प्रकार उन्होंने जनता की भावनाओं को अपने साहित्य का मूल विषय बनाया, उसी प्रकार उन्होंने जन भाषा को उस साहित्य के माध्यम के रूप में ग्रहण किया । जिस प्रकार

उन्होंने हिन्दी को अपने उपन्यास-साहित्य द्वारा इस प्रकार सम्पन्न बनाया कि विश्व के अन्य साहित्यों के सामने उसे ऊँचा स्थान मिला, उसी प्रकार उन्होंने हिन्दी भाषा का वह रूप स्थिर किया जो विश्व-ग्राह्य बन सके। रंगभूमि में हिन्दी-भाषा का ऐसा रूप ही देखने को मिलता है।

प्रेमचन्द जी की भाषा का सर्व, ग्राह्य रूप इस लिए बन सका कि वे पहले उर्दू के लेखक रह चुके थे और बाद में जब वे हिन्दी के क्षेत्र में आये, तो यह स्वाभाविक ही था कि उर्दू का प्रभाव उनकी भाषा में बना रहता। उनकी यह भाषा स्थिर रूपवाली मृत भाषा नहीं है। उसमें इतनी संजीवनी शक्ति है कि विषय, भाव और पात्रों के हिसाब से वह अपना रूप बदल लेती है। यदि ऐसा न होता, तो वह अनेक प्रकार के भाव और विचार की अभिव्यक्ति में सफल न हो पाती। मानवीय भावों की विविधता के अनुकूल उनकी भाषा भी विविध रूप धारण करती है। भाषा का एक मूल आधार होते हुए भी उसके रूप बदल जाते हैं। इसके लिए उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं है। प्रेमचन्द जी की लेखन शैली के जिन चार रूपों के उदाहरण हम पहले दे चुके हैं, उन्हीं की भाषा में स्पष्ट अन्तर दिखायी पड़ता है। यदि इन गद्यांशों का अध्ययन किया जाय, तो स्पष्ट पता चल जायगा कि जहाँ स्थूल वर्णन हैं, वहाँ प्रेमचन्द जी की भाषा सरल है। सूरदास की झोपड़ी का वर्णन हो, चाहे कुँवर भरतसिंह के राजभवन का वर्णन, चाहे पाँडेपुर के सांस्कृतिक चित्र हों, चाहे शहर के, भाषा सरल है। जहाँ प्रेमचन्द जी ने भावावेश, या किसी विचार के प्रतिपादन का प्रयोग किया है वहाँ भाषा अपेक्षाकृत तत्समता-प्रधान है। संस्कृत की ओर उसका झुकाव इन स्थलों पर अधिक है। भाषा की क्लिष्टता का कारण यहाँ केवल यह है कि विषय के अनुकूल अभिव्यक्ति को शक्ति पहुँचाने के लिए विशिष्ट शब्दों का प्रयोग करना आवश्यक हो गया है।

प्रेमचन्द जी की भाषा पात्रों के अनुसार भी अपना रूप बदल लेती है। देहाती पात्र देहाती भाषा में बातें करते हैं, तो मुसलमान पात्र ठेठ उर्दू का प्रयोग करते हैं। देखिए :—

"नौकर—होई तो कहूँ सहरै माँ न ? पूछ लेबँ
आप चिट्ठी तो दें, पता तो हम लगाउब, लगी न, का कहीं?"

(पृ० ३५७)

"ताहिर अली—तुम्हारे तम्बाकू का खर्च मेरे बाल-बच्चों के लिए काफी हो सकता था। नहीं, तुम सब कुछ भूल गये। अच्छी बात है भूल जाओ, न मैं तुम्हारा भाई हूँ; न तुम मेरे भाई हो। मेरी सारी तकलीफों का मुआवजा यही स्याही है, जो तुम्हारे मुँह पर लगी हुई है। लो, रुखसत, अब तुम फिर यह सूरत न देखोगे, अब हिसाब के दिन तुम्हारा दामन न पकड़ूँगा। तुम्हारे ऊपर मेरा कोई हक नहीं है।" पृ० ५२८

शब्द चयन की दृष्टि से प्रेमचन्द जी बड़े उदार हैं। वे उन सभी शब्दों को निःसंकोच रूप से अपना लेते हैं जिनको जन साधारण प्रयोग में लाते हैं। वे शब्द के मूल रूप या उसकी तत्समता का विचार नहीं रखते। कोई भी रूप जो सर्व साधारण द्वारा प्रयुक्त होता है, उसका वे प्रयोग करते हैं। इस प्रकार के शब्दों की सूची बहुत लम्बी होगी। उदाहरण के लिए कुछ शब्द यह हैं :—दुखड़े, भावज, दुर्गत, अलबत्ता, जाहिरदारी, निबाह, जिल्लत, लुढ़कनिया, जायदाद, जिन्दगानी, अनभल, बैरी, मरतबा, गुलजार, दलाली, मुआवजा, नौबत, सलाह, दिलेर, इस्तीफा, धरोहर, वारिस, चैन, पुतलीघर, पुन्न-धरम, परदेसी, नफा, अपाहिज, मरजाद, नीयत, आबरू, मेहरबानी, अमानत, सराहना, भलमनसी, खारिज, कांउंसिल, साइत आदि।

कहीं-कहीं पर प्रेमचन्द की भाषा में अत्यधिक प्रवाह, और चुलबुलापन है। यह प्रभाव उनके मुहावरों के प्रयोग से आया है। प्रेमचन्द जी को मुहावरों के प्रयोग का बहुत शौक है। एक अनुच्छेद के प्रत्येक वाक्य में मुहावरों का प्रयोग उन्होंने किया है। देखिए—"अदालत ने अगर दोनों युवकों को कठिन दण्ड दिया, तो जनता ने भी सूरदास को कम कठिन दण्ड न दिया। चारों ओर थुड़ी-थुड़ी होने लगी। मुहल्लेवालों का तो कहना ही क्या, आस-पास के गाँव वाले भी दो-चार खरी-खोटी सुना जाते थे।—माँगता तो भीख है पर अपने को लगाता कितना है ? चार भले आदमियों ने मुँह लगा लिया,

तो घमण्ड के मारे पाँव धरती पर नहीं रखता। सूरदास को मारे शरम के घर से बाहर निकलना मुश्किल हो गया।" पृ० ४५८

कहीं-कहीं मुहावरों के शौक ने प्रेमचन्द जी को अंग्रेजी के मुहावरों के अनुवाद करके भाषा में प्रयोग करने के लिए उन्हें बाध्य कर दिया है। यद्यपि यह मुहावरे हिन्दी में घुलमिल न सकेंगे पर उनका यह प्रयोग उनकी प्रवृत्ति का द्योतक है। ऐसे मुहावरे बहुत ही कम प्रयुक्त हुए हैं। रंगभूमि में ऐसे दो मुहावरे आये हैं—'किसी के स्वास्थ्य का प्याला पीना' और 'फावड़े को फावड़ा कहना।'

प्रेमचंद जी की भाषा में अनेक स्थलों पर मीठे व्यंग्य हैं, जिनमें हृदय को कचोटने की शक्ति है। ऐसे प्रयोगों के समय भाषा सीधी मन पर प्रहार करती है। विनय सोफी से मिलने के लिए जाते हैं और वह उनका स्वागत कितनी विष बुझी हुई भाषा में करती है—"वाह! आपका आदर-सत्कार कैसे न करूँ? आप मेरे मुक्तिदाता हैं, मुझे इन डाकुओं और वधिकों के पंजों से छुड़ा रहे हैं, आपका स्वागत कैसे न करूँ! मेरे कारण आपने रियासत में अंधेर मचा दिया।............और सबसे बड़ी बात यह है कि अपनी आत्मा का, अपने सिद्धान्तों का, अपने जीवन के आदर्श का मटियामेट कर दिया है। इतना कीर्तिलाभ करने के बाद भी आपका अभिवादन न करूँ? मैं इतनी कृतघ्न नहीं हूँ। अब आप एक तुच्छ सेवक नहीं, एक रियासत के दाहिने हाथ हैं। राजे-महराजे आपका सम्मान करते हैं, मैं आपका सम्मान न करूँ?" पृ० ३२०

ऐसा तीखा और चुभता हुआ व्यंग्य बहुत कम मिलेगा। जिन बातों को विनय उचित समझता है, उन पर मीठी चुटकी लेते हुए सोफिया उन पर निर्मम प्रहार करती है।

प्रेमचंद जी की भाषा की एक विशेषता ऐसी है, जिसका उल्लेख किये बिना यह प्रसंग अपूर्ण रहेगा। वर्णनों में हो या कथोपकथनों में। उनकी कलम से ऐसी सुन्दर अनुभव प्रसूत सूक्तियाँ निकलती हैं, जो हमें जीवन का रास्ता दिखाती हैं। उन्हें यदि प्रेमचंद की भाषा का नवनीत कहा जाय तो अत्युक्ति

न होगी। उनकी भाषा सूक्ति सुधा से परिपूर्ण है जिसका पान करके पाठक आत्मविभोर हो उठता है। पूरी रंगभूमि भर में यह रत्न बिखरे पड़े है। उन में से कुछ का आस्वादन करिए :—

"सच्ची कमाई उन्हीं की है जो छाती फाड़कर धरती से धन निकालते हैं।"

"भूले भटके को प्रेम ही सन्मार्ग पर लाता है।"

"सरल प्राणियों के सामने कपट भी लज्जित हो जाता है।"

"धन का देवता आत्मा का बलिदान पाये बिना संतुष्ट नहीं होता।"

"मूर्खों के पास युक्तियाँ नहीं होतीं, युक्तियों का उत्तर वे हठ से देते हैं। युक्ति कायल हो सकती है, नरम हो सकती है, भ्रांत हो सकती है; हठ को कौन कायल करेगा।"

"धर्म का मुख्य स्तंभ भय है। अनिष्ट की शंका दूर कर दीजिए, फिर तीर्थ-यात्रा, पूजा-पाठ, स्नानध्यान, रोजा-नमाज, किसी का निशान भी न रहेगा। मसजिदें खाली नजर आयेंगी और मंदिर वीरान।"

"गृहचिंता आत्मचिन्तन की घातिका है।"

"धर्मभीरुता में जहाँ अनेक गुण हैं, वहाँ एक अवगुण भी है, वह सरल होती है। पाखंडियों का दाँव उस पर सहज ही में चल जाता है।"

अंत में कुछ बातें वाक्य-विन्यास के संबंध में। प्रेमचन्द जी संक्षिप्त, छोटे और सरल वाक्य लिखने के समर्थक हैं। इन वाक्यों में कहीं भी अटपटापन नहीं है। भाषा में इससे प्रवाह आगया है। देखिए—

"ठाकुर दीन धर्मभीरु आत्मा था, दुविधा में पड़ गया। जगधर ने आसन पहचाना, इसी ढंग की दो चार बातें और कीं। आखिर ठाकुरदीन गवाही देने से इनकार करने लगा, जगधर की ईर्ष्या किसी साधु के उपदेश का काम कर गयी। संध्या होते-होते भैरों को मालूम हो गया कि मोहल्ले में कोई गवाह नहीं मिलेगा। दाँत पीस कर रह गया। चिराग जल रहे थे। बाजार की ओर दूकाने बंद हो रही थीं। ताड़ी की दूकान खोलने का समय आ रहा था। गाहक जमा होते जाते थे।" पृ० ३४१

सरल और साधारण वाक्यों का प्रयोग आमतौर पर वर्णनात्मक प्रसंगों में हुआ है। प्रेमचंद जी ने मिश्रित वाक्यों का प्रयोग कम किया है। हाँ, उन्होंने संयुक्त वाक्यों का प्रयोग अवश्य किया है जिनमें 'और' 'या' तथा 'परन्तु' जैसे संबंधवाचक शब्दों का प्रयोग करके वाक्य को लंबा बना दिया गया है। अर्धविराम से जो उपवाक्य अलग हो गये हैं, वे भी एक प्रकार से साधारण वाक्य ही हैं। देखिए—"हवा बदल गयी। एक क्षण में साक्षियों का ताँता बँध गया। दोनों अभियुक्त हिरासत में ले लिए गये। मुकदमा चला, तीन-तीन महीने की सजा हो गयी। बजरंगी और जगधर दोनों सूरदास के भक्त थे। नायकराम का यह काम था कि सब किसी से सूरदास के गुन गाया करे। अब ये तीनों उसके दुश्मन हो गये। दो बार पहले भी वह अपने मोहल्ले का द्रोही बन चुका था, पर उन दोनों अवसरों पर किसी को उसकी जात से इतना आघात न पहुँचा था, अबकी तो उसने घोर अपराध किया था।" पृ० ४४८

प्रेमचंद जी का वाक्यविन्यास एक-सा नहीं रहता। भावावेश-प्रधान शैली में, अन्तर्द्वन्द्वप्रधान प्रसंगों में, वे प्रश्नवाचक और विस्मयादिबोधक वाक्यों की झड़ी लगा देते हैं। देखिए—"क्यों विनय, तुम मेरे लिए क्या क्या मुसीबतें झेलोगे ? अपमान, अनादर, द्वेष, माता-पिता का विरोध, तुम मेरे लिए यह सब विपत्ति सह लोगे ? लेकिन धर्म ? वह देखो तुम्हारा मुख उदास हो गया। तुम सब कुछ कर सकोगे; पर धर्म नहीं छोड़ सकते। मेरी भी यही दशा है।......धर्म को कैसे त्यागूँ ? ईसा का दामन कैसे छोड़ दूँ ?......उस पवित्र आत्मा से क्योंकर मुँह मोड़ूँ जो क्षमा और दया का अवतार थी ? क्या यह संभव नहीं है कि मैं ईसा के दामन से लिपटी रहकर भी अपनी प्रेमाकांक्षाओं को तृप्त करूँ ? हिन्दू धर्म की उदार छाया में किसके लिए शरण नहीं ?" पृ० १५१

रंगभूमि में हास्य-विनोद

प्रेमचन्द जी को अपने जीवन में काफी संघर्ष करना पड़ा था। उनका जीवन एक सरल तपस्वी का जीवन था, जिसमें चिंतन और विचार का

प्राधान्य था। कलम के मजदूर होने के नाते, वे रात-दिन व्यस्त रहते थे। पेचिस के रोग से पीड़ित प्रेमचंद शारीरिक कष्ट भोगा करते थे। फिर भी उन्हें मनोरंजन से प्रेम था। वे विनोदी स्वभाव के थे और दिल खोलकर हँसते थे। उनके मत में, "जीवन को सुखी बनाना ही भक्ति और मुक्ति है, यदि तुम हँस नहीं सकते, रो नहीं सकते, तो तुम इन्सान नहीं हो।" उनके कहे कहे मित्रमंडली में प्रसिद्ध थे और लोग उन्हें 'बम्बूक' नाम से पुकारा करते थे। जब वे हँसते तो खूब हँसते और कहकहे पर कहकहे लगाते चले जाते। मित्र मंडली में बैठकर वे घंटों गुजार देते। उनका यह विनोद-प्रेम उनके उपन्यासों में भी प्रकट हुआ है। रंगभूमि इस का अपवाद नहीं है।

प्रेमचंद जी का हास्य कई प्रकार का है। एक हास्य ऐसा होता है, जिसमें हँसी मुँह पर नहीं फूटती। वह केवल मन को गुदगुदा कर रह जाती है। दो व्यक्तियों के वार्तालाप में ऐसी हँसी प्रायः होती है; एक दूसरे पर वे चोट करते हैं और मन ही मन उसका आनंद लेते हैं। ऐसे हास्य से ही रंगभूमि का प्रारम्भ होता है। सूरदास गनेस गाड़ीवान से हँसी विनोद कर रहा है। दोनों अपने-अपने काम में लगे हैं। एक उपलों पर बाटियाँ सेक रहा है, तो दूसरा दाता की राह में आंखें बिछाये हुये बैठा है।

"गनेस—क्यों भगत ब्याह करोगे ?

सूरदास—कहीं है डौल ?

गनेस—है क्यों नहीं ? एक गाँव में सुरिया है, तुम्हारी ही जात बिरादरी की है, कहो तो बातचीत पक्की करूँ। तुम्हारी बरात में दो दिन मजे से बाटियां लगें।

सूरदास—कोई ऐसी जगह बताते, जहाँ धन मिले और इस भिखमंगी से से पीछा छूटे। अभी अपने पेट की चिंता है, तब एक अंधी की और चिंता हो जायगी। ऐसी बेड़ी पैर में नहीं डालता। बेड़ी ही है, तो सोने की हो।

उत्तर और प्रत्युत्तर, दोनों में मीठे घात प्रतिघात हैं। सुरिया काल्पनिक स्त्री है। यह दोनों जानते हैं और उसके माध्यम से रस लेते हैं, एक यह सोचता है कि इस अंधे को मूर्ख बनाओ, तो दूसरा यह समझता है कि यह

मेरी हँसी उड़ा रहा है। दोनों के मन में किसी प्रकार का मैल नहीं है।

कुछ स्थलों पर हास्य का भाव पैदा करने के लिए दूसरे प्रकार के वार्तालापों की योजना की है। कई लोग बैठकर बातें करते हैं। एक व्यंग्य करता है, तो दूसरा उसका उत्तर उतने ही तगड़े व्यंग्य में देता है। तीसरा उनको लड़ाता है बाकी सब आनंद लेते हैं। रात को पांडेपुर में वहाँ के निवासियों की जमात जुटती है। भैरों और ठाकुरदीन में चोटें चलती हैं। (पृ० १३ और १४)। नायकराम उस्ताद की तरह दोनों को बढ़ावा देता है और स्वयं इन बातों का आनन्द लेता है। इस अवसर पर खीझ, चिढ़, मर्माहत होना, क्रोध आदि सभी भाव समुद्र पर उठनेवाली तरंगों की भाँति उठते हैं पर अंत में सब शान्त हो जाते हैं क्योंकि यह लहरें विनोद के तल में विलीन हो जाती हैं। केवल इस वार्तालाप में नायक राम की मटर गस्ती पर बजरंगी का व्यंग्य देखिए :—"बजरंगी—औरों की कमाई पसीने की होती होगी, तुम्हारी कमाई तो खून की है। और लोग पसीना बहाते हैं, तुम खून बहाते हो। एक जजमान के पीछे लोहू की नदी बह जाती है। जो लोग खोंचा सामने रख कर दिन भर मक्खी मारा करते हैं, वे क्या जानें, तुम्हारी कमाई कैसी होती है? एक दिन मोरचा थामना पड़े, तो भागने को जगह न मिले।" पृ० १५।

प्रेमचन्द जी हास्य की उत्पत्ति के लिए वार्तालाप के अतिरिक्त क साधनों का प्रयोग करते हैं। कहीं वर्णनों मे इतनी अतिरंजना ले आते हैं कि पढ़ते ही पाठक एकान्त में भी हँस पड़ता है। ताहिर अली की धर्मभीरुता इस सीमा तक बढ़ जाती है कि वह कोरा बुद्धू बन जाता है। वह स्वयं अनैतिक ढंग से धन नहीं लेता पर उसके घर के भीतर ही अनैतिकता का प्रच्छन्न व्यापार चलता रहता है। उसकी विमाताएँ बजरंगी और सुभागी से रुपये ऐंठ लेती हैं। रकिया ताहिर अली की मूर्खता का फायदा उठाते हुए कहती है—"दौलत वालों पर अज़ाब भी नहीं पड़ता है। इसका वार गरीबों पर ही पड़ता हमारे बच्चे रोज ही नज़र और आसेब की चपेट में आते रहते हैं पर आज तक कभी नहीं सुना कि किसी अंगरेज के बच्चे की नज़र लगी हो। उन पर

बलैयात का असर नहीं होता।" (पृ० ६३)

यह रकिया का विश्वास नहीं है, ताहिर को मूर्ख बनाने का ढंग है और ताहिर साहब इन बातों को आँखें बंद करके पी जाते हैं। उनकी औंधी खोपड़ी का नमूना देखिए, पढ़ कर हँसी आती है—"यह पते की बात थी। ताहिर अली को भी इसका तजुर्बा था। उनके घर के सभी बच्चे गंडों और तबीजों से से मढ़े हुए थे, उस पर भी आये दिन झाड़-फूंक और राई नोन की जरूरत पड़ा करती थी।"

वर्णनों द्वारा हास्य उत्पन्न करने की कला प्रेमचन्द जी खूब जानते हैं। उदयपुर पहुँच कर नायकराम जेल के दरोगा को उसके लड़के के विवाह का प्रलोभन देकर किस प्रकार अपना काम बनाते हैं, इस वर्णन को पढ़ कर हँसी रोके नहीं रुकती। देखिये—"नायकराम हट गये। दोपहर होते-होते बच्चे-बच्चे से उनकी मैत्री हो गयी। दारोगाइन ने पालागन कहला भेजा। इधर से भी आशीर्वाद दिया गया। दरोगा तो दस बजे दफ्तर चले गये। नायकराम के लिये पूरियाँ, कचौड़ियाँ, रायता-दही, चटनी, हलवा बड़ी विधि से बनाया गया। पंडित जी ने भीतर जाकर भोजन किया। स्वामिनी ने स्वयं पंखा झला। फिर तो उन्होंने और भी रंग जमाया। लड़के लड़कियों के हाथ देखे। दरोगाइन ने भी लजाते हुए हाथ दिखाया। पंडित जी ने अपने भाग्य-रेखा-ज्ञान का अच्छा परिचय दिया। और भी धाक जम गयी। शाम को दरोगा जी दफ्तर से लौटे तो पण्डित जी शान से मशनद लगाये बैठे थे और पड़ोस के कई आदमी घेरे खड़े थे।" पृ० २९२

नायमराम की उदयपुर यात्रा का वर्णन भी हँसाने वाला है। उनके भाँग घोटने का दृश्य भी मजेदार है। जेल पहुँच कर सोफिया ने विनय से मुलाकात की। इस अवसर पर मूर्ख अफसरों की चाटुकारिता देख कर हँसी आ जाती है।

प्रेमचन्द जी ने अपने पात्रों के व्यवहार का कुछ ऐसे ढंग से वर्णन किया है कि इसे पढ़ कर हँसी आ जाती है। नायकराम अपनी वीरता पर बड़ा गर्व करता है और डींगे मारता है परन्तु प्रभुसेवक जैसा निर्बल छोकरा

कोड़े से उसकी खब खबर लेता है और वह जमीन पर लोटते हुए मार खाता जाता है। मजा यह है कि नायकराम महोदय बाद में अपने साथियों के आगे फिर उसी तरह बढ़-बढ़ कर बातें बनाते हैं। उसका यह व्यवहार हमें हँसाये बिना नहीं रहता। इसी प्रकार क्रोध में भरे ताहिर अली थाने पर पहुँच कर माहिर अली की बुरी दुर्गत बनाते हैं। उनके मुंह पर स्याही पोतने और फिर झुक कर तीन बार सलाम करने का दृश्य देख कर हम खिलखिला कर हँसने लगते हैं। प्रतिकार करने में असमर्थ ताहिर अली अपने मित्रों को समझाते हुए कहते हैं :—"हमेशा बीबी के गुलाम रहे, जिस तरफ चाहती है नाक पकड़ कर घुमा देती है। आप लोगों से खानगी दुखड़े क्या रोऊँ, मेरे भाइयों की और माँ की मेरी भावज के हाथों जो दुर्गत हुई है, वह किसी दुश्मन की न हो।…………आप लोगों ने देखा, मैंने कितनी जिल्लत गँवारा की, पर सिर नही उठाया, जबान नहीं खोली, नहीं तो एक धक्का देता, तो बीसों लुड़कनियाँ खाते। अब भी दावा कर दूँ तो हजरत बँधे-बँधे फिरें, लेकिन दुनिया तब यही कहेगी कि बड़े भाई को जलील किया।"

इतनी बेइज्जती के बाद, इस प्रकार बात बनाने का अर्थ उनके सिपाही और मित्र सभी समझ गये होंगे। उनका यह "खिसियाना" (शर्म से गड़ जाना) हमें हँसा देता है।

कहीं-कहीं प्रेमचन्द जी की हास्य की योजना त्रुटिपूर्ण भी है। जब हास्य निर्लज्जता की सीमा को छूने लगे तो कुछ अस्वाभाविक मालम पड़ता है। विनय से नायकराम की बातें कुछ इसी प्रकार की हैं। उसकी बातें जैसे— "तुम्हें क्या चिंता, आसिक लोग तो जान हथेली पर लिये ही रहते हैं, मरे तो हम कि सूखे पर ही रहे।" "तो फिर क्यों बिना कान-पूँछ हिलाये चले आये?" अपने पास मुझे भी बुलाया! क्या इस्क में अकिल घनचक्कर हो जाती है?" "फिर क्या कहने, लपक कर टाँग लेना, मजा तो जब आये कि तुम हाय-हाय करके रोने लगो और वह अँचल से तुम्हारे आँसू पोछे।" "यह मेरा अंगोछा लो, चट इसके पैर बाँध देना।" आदि हमें हँसाने के लिए लिखी गयी हैं परन्तु यह शिष्ट और संगत हास्य नहीं कहा जा सकता।

रंगभूमि के वर्णन और प्रेमचन्द जी की पर्यवेक्षण शक्ति

प्रेमचन्द जी में स्थान, वस्तु, वेश-भूषा, घटना तथा चरित्र आदि का वर्णन करने की अद्भुत् क्षमता है। रंगभूमि में इन सबके वर्णन आये हैं। वे एक कुशल चितेरे की भाँति सूक्ष्म से सूक्ष्म रेखा (Detail) की तरफ ध्यान देते हैं। इसीलिए उनके चित्र अच्छी तरह उभर आते हैं और उनमें किसी प्रकार की अस्पष्टता नहीं आने पाती। इसका कारण क्या है? बात यह है कि प्रेमचन्द जी में गजब की पर्यवेक्षण शक्ति है। अधिकांश लोग ऐसे होते हैं, जो बरसों एक कमरे में रहते पर उनको यह भी याद नहीं रहता कि उस कमरे में कितनी धन्नियाँ हैं। उनमें पर्यवेक्षण का अभाव है। प्रेमचन्द जी में एक वैज्ञानिक की विशेषताएँ मौजूद हैं। हर वस्तु की एक बात, उसका अंग-प्रत्यंग, रंग-रूप, आकार, देखते हैं और क्रम से देखते हैं। इसका प्रमाण उनके वर्णनों से मिलता है। एक उदाहरण देखिये :—"बहुत ही सामान्य झोपड़ी थी। द्वार पर एक नीम का वृक्ष था। किवाड़ों की जगह बाँस की टहनियों की एक टट्टी लगी हुई थी।"............कितना नैराश्यपूर्ण दारिद्रय था। न खाट, न बिस्तर, न बरतन, न भाँड़े। एक कोने में एक मिट्टी का घड़ा पड़ा था जिसकी आयु का कुछ अनुमान उस पर जमी हुई काई से हो सकता था। चूल्हे के पास हाँडी थी। एक पुरानी चलनी की भाँति छिद्रों से भरा हुआ तवा, एक छोटी-सी कठौत और एक लोटा।" पृ० ९

प्रेमचन्द जी के इस वर्णन में उनकी पर्यवेक्षण शक्ति ने उनका ध्यान घड़े पर जमी काई और तवे के छिद्रों तक पहुँचाया है। उनकी नजरों से छोटी से छोटी बात भी नहीं बच सकती। प्रेमचन्द जी के यह वर्णन दो प्रकार के हैं। एक वे वर्णन हैं जिनमें पूर्णतया स्थूलता है। वे हमारे सामने कोई दृश्य उपस्थित कर देते हैं, जैसे चित्रकार करते हैं। उदाहरण देखें :—"मिल के आस-पास पक्के मकान बन चुके थे। सड़कों के दोनों किनारों पर और निकट के खेतों में मजदूरों ने झोपड़ियाँ डाल दी थीं। एक मील तक सड़क के दोनों ओर झोपड़ियों की श्रेणियाँ ही नजर आती थीं। यहाँ बड़ी चहल-पहल रहती

थी। दूकानदारों ने भी अपने-अपने छप्पर डाल लिये थे। पान, मिठाई, नाज, गुड़, घी, साग, भाजी, और मादक वस्तुओं की दूकाने खुल गयीं थीं। मालूम होता था, कोई पैंठ है। मिल के परदेशी मजदूर जिन्हें न बिरादरी का भय था, न सम्बन्धियों का लिहाज, दिन भर तो मिल में काम करते, रात को ताड़ी शराब पीते। जुआ नित्य होता था। ऐसे स्थानों पर कुलटाएँ भी आ पहुँचती हैं। यहाँ भी एक छोटा-मोटा चकला अबाद हो गया था।" पृ० ४३९

इस वर्णन में वस्तुपरकता है और साथ में स्थूलता। इससे हमारे मन में कोई भाव तो नहीं जगता परन्तु हर एक शब्द में नेत्रों के समक्ष वस्तुओं को प्रत्यक्ष करने की शक्ति है। प्रेमचन्द जी के कुछ ऐसे वर्णन हैं जिनमें भावात्मकता है और साथ में उनकी कल्पना का भी पुट है। ऐसे वर्णन काव्यात्मक हैं। भावों और विचारों में लिपटे हुए इन वर्णनों में प्रेमचन्द जी के अन्तः निरीक्षण की शक्ति का परिचय मिलता है। जिस प्रकार वे स्थूल जगत् के कोने-कोने तक अपनी दृष्टि पहुँचा कर "जहाँ न जाय रवि, तहाँ जाय कवि" की कहावत चरितार्थ करते हैं, उसी प्रकार वे मनुष्य के मन की गहरी से गहरी खाईं तक अपनी अन्तर्दृष्टि पहुँचा देते हैं। पांडेपुर के उजड़ जाने पर भी वहाँ के निवासी उस उजड़ी बस्ती में आकर कैसे विचरण करते हैं!

"घर की याद भूलते-भूलते ही भूलती है। कोई अपनी भूली भटकी चीजें खोजने आता कोई पत्थर या लकड़ी खरीदने, और बच्चों को तो अपने घरों का चिन्ह देखने में ही आनन्द आता था। एक पूछता, अच्छा बताओ हमारा घर कहाँ था? दूसरा कहता, वह जहाँ कुत्ता लेटा हुआ है।...दूकानदार आदि भी यहीं शाम सवेरे आते और घंटों सिर झुकाये बैठे रहते, जैसे मृत देह के चारों ओर जमा हो जाते हैं। यह मेरा आगन था, यह मेरा दालान था........ अरे! मेरा पुराना जूता पड़ा हुआ है। पानी में फूलकर कितना बड़ा हो गया है।... दो चार सज्जन ऐसे भी थे, जो अपने बाप-दादों के गाढ़े हुये रुपये खोजने आते थे आदि।"पृ०५१५

उक्त वर्णन में प्रेमचंद जी की अन्तर्दृष्टि का चमत्कार देखने को मिलता है। उनके प्रकृति वर्णनों में कल्पना-शक्ति ने नयी जान डाल दी है। अनूठी

और नयी उपमाओं को देखकर हमें 'उपमा कालिदास्य' की याद आ जाती है :—"संध्या हो गयी थी। किन्तु फागुन लगने पर भी सरदी के मारे हाथ-पाँव अकड़ते थे। ठंडी हवा के झोंके शरीर की हड्डियों में चुभे जाते थे। जाड़ा, इन्द्र की मदद पाकर, फिर अपनी बिखरी हुई शक्तियों का संचय कर रहा था और प्राण-पण से समय चक्र को पलट देना चाहता था। बादल भी थे, बूंदे भी थीं, ठंडी हवा भी थी, कुहरा भी था। इतनी विभिन्न शक्तियों के मुकाबले में ऋतुराज की एक न चलती थी। लोग लिहाफ में यों मुह छिपाये हुए थे जैसे चूहे बिलों में से झाँकते हैं। दूकानदार अँगीठियों के सामने बैठे हाथ सेंकते थे। पैसों के सौदे नहीं मुरौवत के सौदे बेचते थे। राह चलते लोग अलाव पर यों गिरते थे, मानों दीपक पर पतंग गिरते हों।" पृ० ७३

प्रेमचन्द के नये-नये उपमान भी उनकी पर्यवेक्षण शक्ति का परिचय देते हैं। केवल वही लोग अन्य कवियों की जूठन बटोरते हैं, जो संसार को खुली आँखों से नहीं देख पाते। प्रेमचन्द जी के अनुभव को इन उपमानों में देखिए :—"गगन-मंडल में चमकते हुए तारागण व्यंग्य-दृष्टि की भाँति हृदय में चुभते थे। सामने वृक्षों के कुंज में विनय की स्मृति-मूर्ति, श्याम, करुण स्वर की भाँति कंपित, धुएँ की भाँति असंबद्ध, यों निकलती हुई मालूम हुयी, जैसे किसी संतप्त हृदय से हाय की ध्वनि निकलती है।............विनय के लिए उनके अन्तः करण से इस भाँति शुभेच्छाएँ निकल रही थीं, जैसे ऊषा काल में बालसूर्य की स्निग्ध, मधुर, मंद शीतल किरणें निकलती हैं।"

प्रेमचन्द जी की दृष्टि अत्यन्त व्यापक है। यह बात हम प्रारम्भ में कह चुके हैं कि जीवन के हर पहलू पर उनकी निगाह पहुँची है। भारतीय संस्कृति के कई सुन्दर चित्र उन्होंने रंगभूमि में प्रस्तुत किये हैं। विशेष कर सामान्य जनों की संस्कृति के नमूने देखने योग्य हैं।—"यह मंदिर ठाकुर जी का था, बस्ती दूसरे सिरे पर। ऊँची कुरसी थी। मंदिर के चारों तरफ तीन चार गज का चौड़ा चबूतरा था। यहीं मोहल्ले की चौपाल थी।............ मंदिर में एक छोटी-सी मंगत थी। आठ-नौ बजे रात को, दिन भर के काम-धन्धो से गिवृत्त होकर, कुछ भक्तजन जमा हो जाते थे और घन्टे दो घन्टे

भजन गाकर चले जाते थे। ठाकुरदीन ढोल बजाने में निपुण था, बजरंगी करताल बजाता था, जगधर को तँबूरे में कमाल हासिल था, नायकराम और दयागिरि सारंगी बजाते थे, मंजीरे वालों की सख्या घटती बढ़ती रहती थी। ....सूरदास इस संगत का प्राण था। वह ढोल, मंजीरे, करताल, सारंगी, तम्बूरा सभी में समान रूप से अभ्यस्त था।............ठुमरी-गजल से उसे रुचि न थी। कबीर, मीरा, दादू, कमाल, पलटू आदि सन्तों के भजन गाता था।" पृ० १२

भारतीय ग्रामीण क्षेत्रों में संध्या के समय साधारण जन किस प्रकार अपना जीवन व्यतीत करते हैं, इसका सुन्दर चित्र ऊपर की पंक्तियों में खींचा गया है। यहाँ भी प्रेमचन्द जी की पर्यवेक्षण शक्ति ने वर्णन को सजीव बना दिया है। संगत का समय, स्थान, भाग लेने वाले लोग, सबके अलग-अलग गुण आदि सूक्ष्मातिसूक्ष्म बातों पर उनकी दृष्टि पहुँची है। अब नग्न निर्धनता का एक चित्र देखिए :—"भाइयों के लालन-पालन पर उनकी आवश्यकताएँ ठोकर खाती रहती थीं। पाजामें में इतने पैबंद लग जाते कि कपड़े का यथार्थ रूप छिप जाता था। नये जूते तो शायद इन पाँच बरसों में उन्हें नसीब नहीं हुए थे। माहिर अली के पुराने जूतों पर संतोष करना पड़ता था। सौभाग्य से ताहिर अली के पैर बड़े थे। यथा साध्य वह भाइयों को कोई कष्ट न होने देते थे। लेकिन कभी हाथ तंग रहने के कारण उनके लिये नये कपड़े न बनवा सकते, या फीस देने में देरी हो जाती या नाश्ता न मिल सकता, या मदरसे में जलपान करने के लिए पैसे न मिलते, तो दोनों माताएँ व्यंग्य और कटूक्तियों से उनका हृदय छेद डालती थीं। बेकारी के दिनों में वह बहुधा, अपना बोझ हलका करने लिए, स्त्री और बच्चों को मैके पहुँचा दिया करते थे।" पृ० ७२

इस वर्णन में ताहिर अली की गरीबी का कितना स्वाभाविक वर्णन किया गया है। इस प्रकार की कुशल वर्णन-शक्ति प्रेमचन्द में इसलिए आ सकी कि वे हर वस्तु को बड़े गौर से देखा करते थे।

रंगभूमि में देश की समस्याओं का विवेचन

प्रेमचन्द जी उन उपन्यास लेखकों में हैं जो साहित्य और समाज के अटूट सम्बन्ध को स्वीकार करते हैं। इसलिए उनके उपन्यासों में देश और समाज की राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक समस्याओं पर प्रकारान्तर से विचार प्रकट किये गये हैं। साहित्य के द्वारा वे वही काम कर दिखाना चाहते थे, जो सरकार कानून द्वारा या समाज सुधारक प्रचार द्वारा करता है। रंगभूमि में उन्होंने मुख्य रूप से देश की आर्थिक-सामाजिक समस्या को स्पर्श किया है।

यह सत्य अब सभी स्वीकार करने लगे हैं कि बदलती हुई अर्थव्यवस्था समाज के रूप को बदल देती है। जब किसी समय मनुष्य के पेट भरने का साधन पशुपालन था, तब मनुष्य खाना बदोश था। जब आय का साधन कृषि बनी तो गाँव बसे और जीवन का महत्व बढ़ा जिससे सामन्तवादी समाज उत्पन्न हुआ। जब उद्योग मनुष्य की जीविका का साधन बना, तो पूंजीवादी अर्थव्यवस्था का जन्म हुआ और गांवों के स्थान पर शहरी समाज संगठित हुआ। रंगभूमि में पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के जन्म और विकास की समस्या पर प्रकाश डाला गया हैं। कोई भी नयी व्यवस्था बिना बाधा के नहीं जम पाती। पूंजीवादी व्यवस्था का विरोध कृषि-व्यवस्था करती है, अन्त में पूंजीवाद की विजय होती है। शहर, गाँव को हजम कर जाता है। प्रेमचन्द जी ने दोनों व्यवस्थाओं के पक्ष और विपक्ष में पात्रों से विचार प्रकट करवाये हैं।

पूंजीवादी व्यवस्था जो भारी उद्योगों, कलों और कारखानों के बल पर पनपती है, भारत के लिए कितनी उपयोगी होगी यह बात कई स्थलों पर जॉनसेवक द्वारा सिद्ध करायी गयी है। उनके तर्क निम्नलिखित हैं :—

"हमारी जाति का उद्धार कला-कौशल और उद्योग की उन्नति में है। इस सिगरेट के कारखाने से कम से कम एक हज़ार आदमियों के जीवन की समस्या हल हो जायगी, और खेती के सिर से उनका बोझ टल जायगा। जितनी जमीन एक आदमी अच्छी तरह जोत बो सकता है, उसमें घर भर का लगा रहना व्यर्थ है। मेरा कारखाना ऐसे बेकारों को अपनी रोटी कमाने

का अवसर देगा ।" पृ० ४४

तम्बाकू की खेती बढ़ाने के लिए "हम इस जमीन को भी जोत में लाने का प्रयास करेंगे, जो अभी तक परती पड़ी हुई है ।"

"इस देश में विदेश से करोड़ों रुपयों के सिगरेट और सिगार आते हैं । हमारा कर्त्तव्य है कि इस धन प्रवाह को विदेश जाने से रोकें । इसके बगैर हमारा आर्थिक जीवन कभी पनप नहीं सकता ।" पृ० ४४

"जब यहाँ कारखाना खुल जायगा, तो हजारों आदमियों की बस्ती हो जायगी, तुम दूध-मलाई बेचोगे, दूध अलग बिकेगा । इस तरह दोहरा नफा होगा । तुम्हारे उपले घर बैठे बिक जायँगे । तुम्हें तो कारखाना खुलने से नफा ही नफा है ।" पृ० १३८

"तुम्हारी पान की दूकान है, न ? अभी तुम दस-बारह आने पैसे कमाते होगे । तब तुम्हारी बिक्री चौगुनी हो जायगी । खोंचे वाले की खासी बिक्री होगी । शराब-ताड़ी का पूछना ही क्या, चाहे तो पानी को शराब बना कर बेचो । गाड़ी वालों की मजदूरी बढ़ जायगी । यह मोहल्ला चौक की तरह गुलजार हो जायगा । अभी तुम्हारे लड़के शहर पढ़ने जाते हैं, तब यहीं मदरसा खुल जायगा ।" पृ० १३८

पूंजीवादी व्यवस्था में कल-कारखाने चलेंगे । लाभ खूब होगा पर समस्याएँ भी पैदा होंगी । कुछ का तो उल्लेख स्वयं जॉनसेवक ने किया है, चाहे वह उन्हें लाभकारी समझते हों, जैसे मिलावट, नफाखोरी और मँहगाई । पूंजीवाद के लिए यह वरदान हो सकते हैं पर मध्य वर्ग के लिए तो अभिशाप ही हैं । इन बुराइयों के अतिरिक्त कुछ और ऐसे दोष पैदा होंगे जिनका उल्लेख सूरदास ने किया है—"सरकार बहुत ठीक कहते हैं, मोहल्ले की रौनक जरूर बढ़ जायगी । रोजगारी लोगों को फायदा भी खूब होगा । लेकिन जहाँ यह रौनक बढ़ेगी, वहाँ ताड़ी शराब का भी तो परचार बढ़ जयगा, कसबियाँ भी तो आकर बस जायेंगी, परदेशी आदमी हमारी बहू-बेटियों को घूरेंगे, कितना अधरम होगा । दिहात के किसान अपना काम छोड़कर मजूरी के लालच में दौड़ेंगे, यहाँ बुरी-बुरी बातें सीखेंगे और अपने बुरे आचरन अपने गाँव में

फैलायेंगे। दिहातों की लड़कियाँ-बहुएँ मजूरी करने आयेंगी और यहाँ पैसे के लोभ में अपना धरम बिगाड़ेंगी। यही रौनक शहरों में है। वही रौनक यहाँ हो जायगी। भगवान करें, यहाँ वह रौनक न हो। सरकार मुझे इस कुकरम और अधरम से बचावें। यह सारा पाप मेरे सिर पड़ेगा।" पृ० ७७

देश के औद्योगीकरण से होने वाले जिन लाभों का उल्लेख जॉनसेवक ने किया है, उन्हीं को दृष्टि में रखते हुए यहाँ उद्योगों की स्थापना पर जोर दिया जाता है। उद्योगों के चलने पर हमारी पुरानी गाँवों की सभ्यता और संस्कृति जिसका मूल आधार कृषि है, कमजोर पड़ जायगी। सूरदास ने उन सभी बातों का जिकर किया है। हमारे सामने सबसे बड़ी समस्या यह उपस्थित होगी कि पुराने नैतिक मूल्य नष्ट हो जायेंगे। ऐसा सब कहीं हुआ है। १८वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में इंगलैंड की औद्योगिक क्रान्ति से जो कुपरिणाम हुए थे, उनसे वहाँ के लेखकों और कवियों को दुख हुआ था। जिन लोगों ने गोल्ड-स्मिथ का "डेजर्टेड विलेज" और वर्डस्वर्थ की कविताएँ जैसे "माइकेल" आदि पढ़ी हैं, उन्हें स्मरण होगा कि औद्योगीकरण ने वहाँ किस प्रकार गाँवों का विनाश किया और उनके स्थान पर बड़े शहरों में एक ऐसी विशृंखल संस्कृति का विकास हुआ जो आज न्यूयार्क, टोकियो और लंडन जैसे नगरों में अपनी चरम सीमा तक पहुँच गयी है, जिसमें पला हुआ मनुष्य अपनी बाहरी सभ्यतापूर्ण टीमटाम के पीछे अपनी वर्बरता छिपाये हुए है, जिसमें अनैतिकता का साम्राज्य है और पैसे के लिए मनुष्य अपनी आत्मा को निःसंकोच होकर बेच देता है। प्रेमचन्द जी की रंगभूमि में मशीनरी युग की सभ्यता से उत्पन्न होने वाली इसी समस्या को प्रस्तुत किया गया है। पहले इस समस्या के नैतिक पक्ष को लें।

जॉनसेवक का कारखाना चलते ही क्या होता है ? पांडेपुर में संध्या को संगत होती थी, भजन मंडली जुटती थी, बजरंगी नायकराम आदि शराब आदि के चलन और हराम की कमाई को बुरा कहते थे। बजरंगी कहता है— "मैं इन सबों को पापी समझता हूँ, जो औने-पौने करके, इधर-उधर का सौदा बेचकर अपना पेट पालते हैं। सच्ची कमाई उन्हीं की है, जो छाती फाड़ कर

धरती से धन निकालते हैं। लोग स्वावलंबी थे। अपना-अपना काम करते थे, चैन से रहते थे। उसी पांडेपुर में कारखाने के चलने से धर्म की जगह अधर्म की बाढ़ आने लगी। "मिल के परदेशी मजदूर, जिन्हें न बिरादरी का भय था, न सम्बन्धियों का लिहाज, दिन भर तो मिल में काम करते, रात को ताड़ी शराब पीते। जुआ नित्य होता था। ऐसे स्थानों पर कसबियाँ भी आ पहुँचती हैं। यहाँ भी एक छोटा-मोटा चकला आबाद हो गया था।" इन परिवर्तनों की भविष्यवाणी सूरदास ने पहले ही कर दी थी। नैतिकता का ह्रास प्रेमचन्द को पीड़ा पहुँचाता था और उन्होंने इस समस्या को रंगभूमि में उठाया है।

गाँवों की सभ्यता में नैतिकता और चरित्र की रक्षा इसलिए संभव थी कि यहाँ समाज छोटा और संगठित होता है। हर एक व्यक्ति के आचरण पर हर एक आदमी नजर रखता है। गाँव के निवासी कई पीढ़ियों से एक ही स्थान पर रहते चले आते हैं। उनके बीच पारिवारिक सम्बन्ध इतने घनिष्ट हो जाते हैं कि एक की माता-बहिन दूसरे की माता बहिन बन जाती हैं। मन में कुदृष्टि डालने की भावना नहीं पैदा होती। अगर जरा भी ऐसी अनैतिक बात उठी, सारा गाँव उसका प्रतिरोध करता है। दूसरे, अधिकांश गाँवों का सामाजिक गठन इस प्रकार का है कि एक गाँव में एक जाति के लोग ही रहते हैं। जातियों में बुराइयाँ हैं पर नैतिकता की दृष्टि से जाति प्रथा में कुछ अच्छाई यह है कि उनके संगठन अनैतिकता को नियंत्रण में रखते हैं। बहिष्कार, असहयोग, आर्थिक दंड की व्यवस्था जातियों में चली आती है। इनके द्वारा व्यभिचार और स्वच्छंद भोग-विलास पर अंकुश रहता है। जब शहर बसेंगे, तो यह संगठन निर्बल पड़ जायेंगे। शहर तो समूह है, समाज नहीं। शहर में न जाने कहाँ-कहाँ से लोग आकर बसते हैं, जिनके बीच भावात्मक सम्बन्ध नहीं होते। एक की बहन, दूसरे की प्रेमिका बन सकती है। एक कुएँ में गिरता है, तो दूसरा मुंह फेर कर चला जाता है। इस शहरी प्रवृत्ति का प्रभाव हमें पांडेपुर में भी देखने को मिलता है। कारखाने के बनते ही, वहाँ ज स ती बनी, वह जुआरियों का अड्डा बन गयी। बाहर से आने-

वाले मजदूर किसी के वश में न थे। जुआ, शराब, और व्यभिचार खुले आम चालू हो गये और पांडेपुर के नौजवानों में उनकी संगत से यही दुर्गुण पैदा हो गये। इस अनैतिकता का सच्चा चित्र प्रेमचन्द जी ने यों उपस्थित किया है :—"मिठुआ, घीसू, विद्याधर, तीनों अक्सर इधर सैर करने आते और जुआ खेलते।..........दस ग्यारह बजे रात तक वहाँ बड़ी बहार रहती थी। कोई चाट खा रहा है, कोई तँबोली की दूकान के सामने खड़ा है, कोई वेश्याओं से विनोद कर रहा है। अश्लील हास-परिहास, लज्जास्पद नेत्र-कटाक्ष और कुवासनापूर्ण हाव-भाव का अविरल प्रवाह होता रहता था। पांडेपुर में यह दिलचस्पियाँ कहाँ? लड़कों की हिम्मत न पड़ती थी कि ताड़ी की दूकान के सामने खड़े हों, कहीं घर का कोई आदमी देख न ले। युवकों की मजाल न थी कि किसी स्त्री को छेड़ें, कहीं मेरे घर जाकर कह न दे। सभी एक दूसरे से सम्बन्ध रखते थे। यहाँ वे रुकावटें कहाँ? प्रत्येक प्राणी स्वच्छंद था, उसे न किसी का भय था, न संकोच। कोई किसी पर हँसने वाला न था।"

पृ० ४१७

शहरी सभ्यता से उत्पन्न समस्या ने, जिसका उल्लेख ऊपर हो चुका है, उग्र रूप धारण किया। मजदूर खुले आम स्त्रियों को छेड़ने लगे। घीसू आदि ने उन्हीं व्यापारों का प्रयोग पांडेपुर में किया। रात को, सुभागी को छेड़ने का परिणाम यह हुआ कि दो को जेल की हवा खानी पड़ी। इस प्रकार नैतिकता बनाम अनैतिकता के संघर्ष की समस्या का उल्लेख रंगभूमि में है। गाँव नैतिकता और शहर अनैतिकता का प्रतीक है।

अब उद्योग और कृषि के बीच द्वन्द्व की समस्या को लें। आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी ने इस सम्बन्ध में (प्रेमचन्द: साहित्यिक विवेचन) लिखा है— "रंगभूमि में औद्योगिक विकास का प्रश्न प्रमुख हो गया है। प्रेमचन्द जी औद्योगिक सभ्यता के दुर्गुणों की ओर उस उपन्यास में विशेष रूप से ध्यान आकृष्ट कराते हैं। ग्रामीण जीवन की सरलता और स्वच्छता के स्थान पर औद्योगिक सभ्यता की जटिलता, पूंजी का केन्द्रीकरण, मजदूरों के नैतिक पतन आदि दुर्गुणों का उल्लेख किया गया है। ग्राम्य जीवन और कृषि के व्यवसाय को

प्रेमचन्द जी ने औद्योगिकता की अपेक्षा श्रेष्ठ स्थान देना चाहा है।" औद्योगीकरण से दो मूल समस्याएँ उत्पन्न हुई हैं—एक तो कृषि का नाश जिससे खाद्य समस्या का जन्म हुआ और दूसरी समस्या है परावलंबन की।

जॉनसेवक ने कहा है कि उद्योगों के विकास से कृषि पर पड़ने वाला दबाव कम हो जायगा। अधिकाधिक लोग कृषि में लगे हैं, और फालतू लगे हैं। उनका एक बड़ा भाग उद्योग में खप जाने से खेती पर दबाव घटेगा और उद्योगों से राष्ट्र की आय बढ़ेगी। यही देश के कर्णधार सोचते हैं पर होता कुछ है। उद्योग से पैसे का महत्व बढ़ा और पैसे के लोभ से कृषि की ओर से सारे जन-समाज का ध्यान हट गया। आज हमारे देश में खाद्य-समस्या के उत्पन्न होने का मुख्य कारण यही है। हम कल कारखानों के लगाने में तत्परता से जुटे हैं और खाने के लिए मुट्ठी भर अनाज मयस्सर नहीं होता। उद्योगों की बढ़ती से कृषि की अवनति का एक कारण यह भी है कि हम कृषि अनाज की नहीं, वरन् उस कच्चे माल की करते हैं जिसे "कैश-क्राप" कहा जाता है, जैसे 'गन्ना' और 'तम्बाकू'। किसान को इनसे ज्यादा नगद धन मिलता है, गेहूँ चना क्यों बोयें। प्रेमचन्द ने कुँवर भरत सिंह के मुख से इसका उल्लेख कराया है—"लेकिन जिन खेतों में इस वक्त नाज बोया जाता है, उन्हीं खेतों में तम्बाकू बोई जाने लगेगी। फल यह होगा कि नाज और मँहगा हो जायगा।" प्रेमचन्द ने जिस बात का संकेत अब से चालीस वर्ष पूर्व किया था, वह समस्या विकराल रूप धारण करके हमारे सामने प्रस्तुत हुई है।

पूंजीवाद से उत्पन्न होनेवाली दूसरी समस्या परावलंबन है। घरेलू धंधों और कृषि की अर्थ व्यवस्था में मनुष्य अपेक्षाकृत स्वावलंबी होता है। मिल-कारखानों के खुलते ही वह अपना मालिक आप नहीं रहता, वह परमुखापेक्षी बन जाता है। हजारों आदमी एक के गुलाम बन जाते हैं। पुराने जमाने में प्रजा केवल राजनैतिक गुलामी भोगती थी, आज आर्थिक गुलामी आ गयी है। इस बात का संकेत भी प्रेमचंद जी ने सूरदास के शब्दों में रंगभूमि के प्रारंभ में दे दिया है— "भाई खेती सबसे उत्तम है, बान उससे मद्धिम है; बस इतना ही फरक है। बान को पाप क्यों कहते हो और क्यों

पापी बनते हो ? हाँ सेवा निरधिन है और चाहो तो उसे पाप कहो। अब तक तो तुम्हारे ऊपर भगवान की दया है, अपना अपना काम करतें हो, मगर ऐसे बुरे दिन आरहे हैं, जब तुम्हें सेवा और टहल करके पेट पालना पड़ेगा, जब तुम अपने नौकर नहीं, पराये के नौकर हो जाओगे, तब तुममें नीति-धरम का निसान भी न रहेगा। " हमारी संस्कृति में 'उत्तम खेती, मध्यम बान' इस लिए कहा गया था कि इन पेशों में मनुष्य की आर्थिक स्वतंत्रता बनी रहती है पर पूंजीवाद मानव समाज को गुलाम बनाता है। नौकरी-चाकरी का पेशा करके पेट पालना भीख माँगने के ही समान निकृष्ट काम है। आज नौकरी के पीछे भागने की समस्या, बेरोजगारी की समस्या, मिल मालिकों या सरकार का मुँह ताकने और परावलंबन को समस्या पूंजीवाद अर्थव्यस्था की देन है।

पूंजीवाद से संबंधित प्रत्यक्ष समस्याओं का उल्लेख हमने ऊपर किया। एक ऐसी समस्या का उल्लेख भी किया जाना आवश्यक है, जो प्रत्यक्ष दिखायी नहीं देती पर वह राष्ट्र के जीवन को खोखला बना रही है। प्रेमचंद जी ने इस समस्या को पहले ही देख लिया था और उसे बड़े सुन्दर ढग से उन्होंने रंगभूमि में हमारे समाने प्रस्तुत किया है वह समस्या हैं। पूंजीवाद का बड़ी चतुराई के साथ शासन पर प्रभाव ज़माना और धन के बल से पराजित सामन्तवाद को अपने चंगुल में फंसा कर और अपना सहायक बना कर जनता का शोषण करना। पूंजीवाद ने सामन्तवाद के पैर उखाड़ दिये पर वही सामन्तवाद पूंजीवाद का सहायक बन रहा है। इस संघर्ष में डा० रामविलास शर्मा ने (प्रेमचंद और उनका युग) लिखा है "यह दिलचस्प बात है कि राजा महेन्द्र प्रताप सिह जैसे सामन्तवादी लोग जॉन सेवक के सहायक हैं। औद्योगिक क्रांति से इनका बाल भी बाँका नहीं होता, बलकि वे इस नई लूट-खसोट में शामिल होना चाहते हैं। " जॉन सेवक चतुरता से कुंवरभरत सिह को अपने कारखाने के हिस्से बेचकर और लाभ देकर अपनी ओर मिल लेता है। कारपोरेशन के सदस्य भी हिस्से लेकर उसके चंगुल में में फँस जाते हैं। अपनी लड़की के प्रेम का लाभ उठाकर वह जिलाधीश

क्लार्क को अपने पक्ष में कर लेता है। पूँजीवाद इस प्रकार जनता के शोषण के लिए कितने घृणित उपाय अपनाता है। आज हमारे देश में स्वतंत्रता के के बाद यही समस्या उठ खड़ी हुई जिसका उल्लेख प्रेमचंद जी ने बरसों पहले किया था। प्रेमचंद ने तभी कहा था कि 'जॉन' की जगह 'गोविंद आ बैठा अर्थात् अंग्रेज गये तो आज पूँजीपति जनता को गुलाम बना रहा है।

पूँजीवाद से संबधित हम इन सभी समस्याओं को रंगभूमि में मनोरंजक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। प्रेमचंद जी ने इसका हल क्या हो, इसे सोचने के लिये हमें बाध्य किया है। वह स्वयं किसी हल को हमारे सामने प्रस्तुत नहीं करते हैं। इतना अवश्य संकेत किया है कि सूरदास के रूप में गाँधीवाद इस बदले हुए पूँजीवाद का जबरदस्त परन्तु असफल प्रयत्न कर रहा है। उन्होंने यह भी दिखा दिया है कि गाँधीवाद उसके आगे नतमस्तक हुआ है। यह उनकी दूरदर्शिता है कि सूरदास की मृत्यु के रूप में गांधी की हत्या की कल्पना उन्होंने पहले कर ली थी। उसकी मृत्यु पूँजीवाद की विजय है। फिर भी प्रेमचंद जी इसे पूँजीवाद की अंतिम विजय नहीं मानते। वे सूरदास द्वारा कहला देते हैं कि यह तो एक खेल है। कभी हार होती है और कभी जीत। पूँजीवाद के सामने जनता की हार केवल क्षणिक है। वह कहता है—"फिर खेलेंगे, जरा दम ले लेने दो।" पहले दौर में पूँजीपति जीता पर दूसरी पाली में उस की करारी हार होगी। उसकी हार का कारण या तो मार्क्सवाद होगा, रक्तरंजित क्रान्ति होगी या गाँधीवाद अथवा सर्वोदय उस पूँजीवाद का अन्त करेगा। जनता हार कर केवल 'दम' ले रही है। प्रेमचंद जी ने मृत्यु शैय्या पर पड़े सूरदास के मुंह से बड़े सांकेतिक ढंग से देश की समस्या के भावी हल का उल्लेख कर दिया है।

'रंगभूमि' में देश-काल का प्रतिबिम्ब

प्रेमचंद का साहित्य अपने युग और समाज का दर्पण है। वे जनता के लेखक हैं। बहुत से आलोचकों का विचार है कि प्रेमचंद जी ने अपने साहित्य में जिस प्रकार से एक देशीय या एक युग विशेष का चित्र प्रस्तुत किया है, उससे उनका महत्व कम हो गया है। उनके उपन्यासों

का केवल ऐतिहासिक महत्व है। जब यह देश और युग बदल जायगा तो उनके उपन्यास अपनी लोक-प्रियता खो देंगे। ऐसा विचार तर्कपूर्ण नहीं जान पड़ता। उन्होंने अपने काल और समाज के जो पक्ष चुने हैं, वे इतने अस्थायी और क्षणिक महत्व के नहीं हैं। सच तो यों है कि उन्होंने अपने साहित्य में जिस समाज की आकांक्षाओं को व्यक्त किया है, वह तो अब आगे आने वाला है और जब वह समाज वनकर तैयार होगा तो वह प्रेमचंद को ज्यादा महत्व देगा क्योंकि उन्होंने उसके पैदा होने की कथा लिखी है। अस्तु, उनके साहित्य का अकेला महत्व इसी बात में है कि उनके उपन्यासों में उनके समकालीन समाज और युग का प्रतिबिम्व मिलता है। रंगभूमि में, किस प्रकार शहरी सभ्यता, गांव की सरल संस्कृति को छल-बल से निगल रही है, इसका चित्र प्रस्तुत किया है। इस संबंध में, हम अभी पिछले प्रसंग में विस्तार से लिख आये हैं। इस मूल समस्या के अतिरिक्त प्रासंगिक तौर पर देश की अनेक बातों का जिक्र रंगभूमि में आगया है। उनके विषय में हम क्रम से प्रकाश डालेंगे।

(१) कंपनी व्यवसाय—हमारे देश में लोग व्यक्तिगत रूप से व्यवसाय करने के आदी हैं। सम्मिलित कंपनी बना कर बड़े पैमाने पर व्यवसाय लोग करते नहीं और अगर करते भी हैं, तो डायरेक्टरों की स्वार्थपरता के कारण सारा लाभ उन्हीं की जेब में चला जाता है और हिस्सेदारों को कुछ नहीं मिलता। इस विषय में जान सेवक कहते हैं:—

"शिक्षित समाज में अभी तक व्यवसाय बुद्धि पैदा नहीं हुई। लोगों की नस-नस में गुलामी छाई हुई है। कानून (वकालत) और नौकरी के सिवा किसी और तरफ निगाह नहीं जाती। दो-चार कंपनियाँ खुलीं भी किन्तु उन्हें विशेषज्ञों के परामर्श और अनुभव से लाभ उठाने का अवसर न मिला।...... मशीनरी मंगाने में एक के दो देने पड़े, प्रबन्ध अच्छा न हो सका।......डाइरेक्टरों की थैलियां भरी जाती हैं; हिस्से बेचने और विज्ञापन देने मे लाखों रुपये उड़ा दिये जाते हैं, बड़ी उदारता से दलालों का आदर सत्कार किया जाता है, इमारतों में पूंजी का बड़ा-बड़ा खर्च कर दिया जाता है, मैनेजर भी

बहुवेतन भोगी रखा जाता है।......मतलब यह की सारी पूँजी ऊपर ही ऊपर उड़ जाती है। पृ० ४५

(२) राष्ट्रीयता—भारत में बढ़ती हुई राष्ट्रीयता की भावना का परिचय हमें प्रभु सेवक के शब्दों में मिलता है—

"पहले हिन्दुस्तानियों को इसाइयों से कितना ही द्वेष रहा हो, किन्तु अब हालत बदल गयी है। हम खुद अंग्रेजों की नकल करके उन्हें चिढ़ाते हैं। प्रत्येक अवसर पर हम अंग्रेजों की सहायता से उन्हें दबाने की चेष्टा करते हैं। किन्तु यह हमारी राजनैतिक भ्रान्ति है। हमारा उद्धार देश वासियों से भ्रातृ-भाव रखने में है, उन पर रोब जमाने में नहीं। आखिर हम भी तो इस जननी की सन्तान हैं।......हमारी मुक्ति भारत वासियों के साथ है।" पृ० १४०

(३) शासक वर्ग—हमारे देश में अंग्रेजों के आने और ईसाई धर्म के प्रचलन से एक वर्ग ऐसा बन गया है, जो अपने को अंग्रेजों का उत्तराधिकारी मानता है। वह भारतीय समाज से अलग अपने को श्रेष्ठ मानता है:—

"खुदा वह दिन न लाये कि हम इन विधर्मियों की दोस्ती को अपने उद्धार का साधन बनायें। हम शासनाधिकारियों के सहधर्मी हैं। हमारा धर्म हमारी रीतिनीति, हमारा आहार-व्यवहार अंग्रेजों के अनुकूल है। हम और वे एक कलसिया में एक परमात्मा के आगे सिर झुकाते हैं। हम इस देश में शासक बनकर रहना चाहते हैं, शासित नहीं।" पृ० १४०

"हमारा कल्याण अंग्रेजों के साथ-मेल-जोल करने में है। अंग्रेज इस समय भारत वासियों की सम्मिलित शक्ति से विचलित हो रहे हैं। हम अंग्रेजों से मैत्री करके उन पर अपनी राजभक्ति का सिक्का जमा सकते हैं।......हिन्दुस्तानियों से मिलकर गुम हो जायेंगे, उनसे पृथक् रहकर विशेष अधिकार और सम्मान प्राप्त कर सकते हैं।" पृ० १४०

अंग्रेज शासकों का प्रतिनिधि क्लार्क तत्कालीन साम्राज्यवादी नीति का प्रतिपादन करते हुए जो कुछ कहता है, उससे हमें इंगलैंड की मनोवृत्ति का ज्ञान हो जाता है—"अंग्रेज जाति भारत को अनंत काल तक अपने साम्राज्य का अंग बनाये रखना चाहती है। कंजरवेटिव हो या लिबरल, रैडिकल हो या

लेबर, नेशनालिस्ट हो या सोशलिस्ट, इस विषय में सभी एक ही आदर्श का पालन करते हैं।......आधिपत्य त्याग करने की वस्तु नहीं है। संसार का इतिहास केवल इसी एक शब्द 'आधिपत्य प्रेम' पर समाप्त हो जाता है।...... हम सबके सब—मैं लेबर हूँ—साम्राज्यवादी हूँ।......बस वास्तव में नीति कोई है ही नहीं, केवल उद्देश्य है, और वह है कि क्योंकर हमारा आधिपत्य उत्तरोत्तर सुदृढ़ हो।" पृ० ३८९

(४) **देशी राजे**—अंग्रेजों ने हमारे देश में रियासतों को नाम के लिए स्वतंत्र बना रक्खा था परन्तु राजाओं को निकम्मा और पंगु कर दिया था। राजाओं की दशा का चित्र हमें उदयपुर के राजा साहब के व्यक्तित्व में देखने को मिलता है। विनय उनके पास जाता है, तो वे सदियों पुराने दैवी अधिकार के सिद्धान्त का राग अलापते हुये कहते हैं—"राजा तो ईश्वर का अवतार है। हरि-हरि ! वह एक बार जो कर देता है, उसे फिर मिटा नहीं सकता। शिव-शिव ! राजा का शब्द ब्रह्म लेख है, कहीं नहीं मिट सकता।" (पृ० ३९१)

राजा साहब को अपनी रियासत की रक्षा करना ही है। वे साधारण एजेन्ट क्लार्क से भयभीत होते रहते हैं। सोफिया के गायब होने पर उनका होश-हवाश जाता रहता है। वे अपनी असमर्थता का वर्णन करते हुए कहते हैं—"रियासत धूल में मिल जायगी, रसातल को चली जायगी। कोई न पूछेगा कि यह बात सच है या झूठ। कहीं इस पर विचार न होगा। हरि-हरि ! हमारी दशा साधारण अपराधियों से गयी बीती है। उन्हें तो सफाई देने का अवसर दिया जाता है, न्यायालय में उन पर कोई धारा लगायी जाती है और उसी धारा के अनुसार उन्हें दंड दिया जाता है। हमसे कौन सफाई लेता है, हमारे लिए कौन-सा न्यायालय है। हरि-हरि ! हमारे लिए न कोई कानून है, न कोई धारा, जो अपराध चाहा लगा दिया; जो दंड चाहा दे दिया। न कहीं अपील, न फरियाद।"

ऐसे चाटुकार और निर्बल राजाओं की रियासतों में प्रजा पर होनेवाले अत्याचारों की कहानी वीरपाल सिंह के मुँह से सुनिये :—"ये लोग प्रजा को दोनों हाथों से लूट रहे हैं। इनमें न दया है, न धर्म। हैं हमारे ही भाई बंध,

पर हमारी गरदन पर छुरी चलाते हैं।......जिसे घूस न दीजिए, वही आपका दुश्मन है। चोरी कीजिए, डाके डालिये, घरों में आग लगाइए, गरीबों का गला काटिए, कोई आपसे न बोलेगा। बस कर्मचारियों की मुट्ठियाँ गर्म करते रहिए। दिन-दहाड़े खून कीजिए, पर पुलिस की पूजा कर दीजिए, आप बेदाग छूट जाँयगे। आपके बदले कोई वे कसूर फाँसी पर लटका दिया जायगा। कोई फरियाद नहीं सुनता। कौन सुने, सभी एक थैली के चट्टे बट्टे हैं। यही समझ लीजिये हिंसक जन्तुओं का गोल है—सब-के-सब मिलकर शिकार करते हैं और मिल-जुल कर खाते हैं। राजा है, वह काठ का उल्लू उसे विलायत में जाकर विद्वानों के सामने बड़े-बड़े व्याख्यान देने की धुन है।......या तो विलायत की सैर करेगा, या यहाँ अंगरेजों के साथ शिकार खेलेगा।" पृ० १८३

भारत में गांधी जी के नेतृत्व में स्वतंत्रता संग्राम चल रहा था। उसकी लहरें देशी राज्यों में भी पहुँच रही थीं। रंगभूमि में उदयपुर-राज्य का दिप्लव और शासन का अत्याचार उसका प्रमाण है।

(५) **औद्योगीकरण**—'रंगभूमि' में तत्कालीन औद्योगीकरण की प्रवृत्ति की छाप है। इसके विषय में हम पहले विस्तार से लिख चुके हैं। भारी उद्योगों के विकास से देश की बढ़ती हुई समस्याओं का विवेचन इस उपन्यास का मूल विषय है।

(६) **भारतीय जनता**—प्रेमचंद जी ने भारतीय जनमत की विशेषताओं पर प्रकाश डाला है। जनता की कोई स्थिर विचार-धारा नहीं है। आज वह एक नेता को आदर के साथ पूजती है, तो दूसरे दिन वह जरा-सी बात पर उसे भुला देती है। आज की जनता शासक से केवल लाभ की आशा करती है। राजा महेन्द्र सिंह बड़े लोकप्रिय थे क्योंकि नगर को साफ और सुन्दर बनाने में बड़ा परिश्रम किया था। सूरदास के मामले में जनता उनके विरुद्ध हो गयी और उसने उनके सारे सुकृत्यों को भुला दिया। आज की प्रजा का हाल देखिए—

"आज राजा और प्रजा में भोक्ता-भोग्य का संबंध नहीं है, अब सेवक और सेव्य का संबंध है। अब अगर किसी राजा की इज्जत है, तो उसकी

सेवावृत्ति के कारण। अन्यथा उसकी दशा दाँतों तले दबी हुयी जिह्वा की होती है। प्रजा को भी उस पर विश्वास नहीं आता। अब जनता उसी का सम्मान करती है, उसी पर न्योछावर होती है जिसने अपना सर्वस्व प्रजा पर अर्पित कर दिया हो, जो त्याग का धनी हो। जब तक कोई सेवा-मार्ग पर चलना नहीं सीखता, जनता के दिलों में घर नहीं कर पाता।" पृ० २२३

(७) **शिक्षित समुदाय**—भारतीय शिक्षित समाज की पद-लोलुपता, पराश्रय-वृत्ति और आत्म-सम्मान हीनता के बारे में प्रेमचंद जी ने इस प्रकार विचार प्रकट किये हैं :—"तुम्हें यहाँ के शिक्षितों का हाल मालूम नहीं है।... जिस दिन मैंने प्रत्यक्ष रूप से मि० क्लार्क की शिकायत की, उसी दिन से लोग मेरे घर आना-जाना छोड देंगे। कोई मुँह तक न दिखायेगा। लोग रास्ता कतरा कर निकल जायेंगे। इतना ही नहीं, गुप्त रूप से क्लार्क से मेरी शिकायतें करेंगे और मुझे हानि पहुंचाने में कोई बात उठा न रक्खेंगे। हमारे भद्र समाज की नैतिक दुर्बलता अत्यंत लज्जाजनक है। सबके सब प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सरकार के आश्रित हैं। जब तक उन्हें मालूम है कि हुक्काम से मेरी मैत्री है, तभी तक मेरा आदर-सत्कार करते हैं। जिस दिन उन्हें मालूम होगा कि जिलाधीश की निगाह मुझसे फिर गयी है, उसी दिन से मेरे मान-सम्मान की इति समझो। अपने बंधुओं की यही दुर्बलता और कुटिल स्वार्थ लोलुपता है, जो हमारे निर्भीक सत्यवादी और हिम्मत के धनी नेताओं को हताश कर देती है।" पृ० २२७

(८) **देश-सेवक और समाज-सुधारक**—भारतवर्ष में देश-सेवा और समाज-सुधार या तो धन या नाम कमाने का साधन है। उच्च वर्गों में इस प्रकार की भावना केवल स्वार्थवश पायी जाती है। रंगभूमि में कुछ पात्र इसी कोटि में आते हैं। उदाहरण के लिए कुँवर भरत सिंह सेवक-दल के लिए धन देते हैं, उसके संगठन में दिलचस्पी लेते हैं तो केवल इसलिए कि उनका नाम हो, विनय की प्रतिष्ठा हो। वे जायदाद को देश सेवा पर बलिदान नहीं करना चाहते। अधिकारियों से वे लड़ना पसंद नहीं करते। सूरदास के लिये न्याय-युद्ध करने में वे इसलिये हिचकते हैं कि उन्होंने जॉन सेवक के कारखाने के कुछ

हिस्से खरीद रक्खे थे। यही दशा राजा महेन्द्र प्रताप सिंह की है। वे जो कुछ करते हैं, अपनी प्रतिष्ठा के लिए, वाहवाही लूटने के लिए। अधिकारियों से मिल जुल कर चलने में वे अपना हित समझते हैं। यही नहीं, वे अपने को शासक वर्ग का अंग समझते हैं। डा० गाँगुली उन लोगों में हैं जो देश-सेवा को कौंसिल की मेम्बरी तक सीमित रखते हैं। वहाँ जाकर बहस करना, कानूनों का विरोध करना, काँग्रेस के उन विचारों की छाया है, जिनके अनुसार सरकारी असेम्बलियों के लिए चुनाव लड़ना स्वीकार किया गया था।

इन कौंसिलों में जाकर देश-सेवा नहीं हो सकती क्योंकि अंग्रेजों ने यह सीमित अधिकार भारतीयों का दिल भरने के लिये दे दिये थे। कौंसिलें उनकी निरंकुशता को रोकने में असमर्थ थीं। कांग्रेस के गरम दल की विचार धारा का नमूना देखिये:—"हाँ, अगर वहाँ भाषण करना, प्रश्न करना, बहस करना काम है, तो आप हमारा जितना बड़ाई करना चाहता है करे, पर मैं उसे काम नहीं समझता, यह तो पानी चीरना है। ....हमारा तो अब वहाँ मन नहीं लगता। पहले तो सब आदमी (सदस्य) एक नहीं होता, और कभी हो भी गया, तो गवर्नमेन्ट हमारा प्रस्ताव खारिज कर देता है। हमारा मेहनत खराब हो जाता है। ......हमको नये कानून से बड़ी आशा थी पर तीन चार साल उसका अनुभव करके देख लिया कि इससे कुछ नहीं होता। ......मिलिटरी का खर्च बढ़ता जाता है, —उस पर कोई शंका करे, तो सरकार बोलता है, आपको ऐसी बात नहीं करनी चाहिये। ...जब हम काउंसिल में जोर देता है, तो हमारा बात रखने के लिये वही फालतू रुपया निकाल देता है। मेम्बर खुशी के मारे फूल जाता है—हम जीत गया, हम जीत गया। पूछो तुम क्या जीत गया? तुम क्या जीतेगा? ...कभी हमारे बहुत जोर देने पर किफायत किया जाता है, तो हमारे भाइयों का नुकसान होता है। ...कांउसिल को सरकार बताता है वह सरकार की मुट्ठी में है।" पृ० ३५३-३५४

(९) धार्मिक उदारता:—प्रेमचंद जी के काल में राष्ट्रीयता का उदय हो रहा था। इसलिए धार्मिक कट्टरता और रूढ़ियों का अन्त हो रहा था। उन्होंने रंगभूमि में जहाँ ताहिर अली और मिसेज जानसेवक जैसे पात्रों की

धार्मिक अनुदारता का उल्लेख किया है, वहाँ विनय के साथ सोफिया के विवाह संबंध की संभावना दिखाकर (क्योंकि अंत में कुँवर भरतसिंह और रानी जान्हवी इस संबंध को स्वीकार कर लेते हैं) धार्मिक उदारता के भावों की प्रतिच्छाया दिखा दी है। कुँवर भरतसिंह कहते हैं—"वह धर्म केवल जत्थे बंदी है, जहाँ अपनी बिरादरी से बाहर विवाह करना वर्जित हो क्योंकि इससे उसकी क्षति होने का भय है। धर्म और ज्ञान दोनों एक हैं और इस दृष्टि से संसार में केवल एक धर्म है। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, यहूदी, बौद्ध, ये धर्म नहीं हैं, भिन्न-भिन्न स्वार्थों के दल हैं, जिनसे हानि के सिवा आज तक किसी का लाभ नहीं हुआ।" पृ० ३७४

(१०) अन्तर्जातीय विवाह—राष्ट्रीयता और धार्मिक उदारता के प्रवाह में अन्तर्जातीय विवाहों का सिलसिला चल पड़ा था। रंगभूमि में विनय और सोफिया के प्रेम की पृष्ठभूमि में इसी विचार धारा को प्रेमचन्द जी ने प्रकट किया है। दोनों के विवाह में दोनों के परिवारों की ओर से उपस्थित कठिनाइयों को दिखाना स्वाभाविक था क्योंकि भारत में ऐसे विवाहों को बड़ी कठिनाई से स्वीकार किया जाता है। इस मामले में भारतीय स्त्रियाँ अनुदार होती हैं, जैसे रानी जान्हवी या मिसेज सेवक। भारतीय पुरुषों में विशेषकर पढ़े-लिखे लोगों में उदारता है जैसे जॉन सेवक जो विनय को दामाद रूप में पाकर गर्व करते और कुँवर भरतसिंह जो सोफिया को बहू बनाने में नहीं हिचकते।

(११) अन्तराष्ट्रीयता—भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन छिड़ने पर एक नयी जागृति इस देश में पैदा हुई। हजारों लोग विदेश जाकर शिक्षा प्राप्त करने लगे। जाति-धर्म के बन्धन टूटने लगे, साथ ही एक राष्ट्र और देश की सीमाएँ पार कर मनुष्य का प्रेम अखिल विश्व को छूने लगा। रवीन्द्र का विश्व प्रेम और नेहरू की अन्तर्राष्ट्रीयता जो इस युग की धरोहर है, प्रेमचंद की रंगभूमि के पात्र प्रभु सेवक के शब्दों में इस प्रकार प्रकट हुये हैं :—"अब से मेरे जीवन का मिशन होगा प्राच्य और पाश्चात्य को प्रेम-सूत्र में बाँधना, पारस्परिक द्वन्द्व को मिटाना और दोनों में समान भावों को जाग्रत करना।...

…"पूर्व ने किसी जमाने में पश्चिम को धर्म का मार्ग दिखाया था, अब वह उसे प्रेम का शब्द सुनायेगा, प्रेम का पथ दिखायेगा।… राजनीतिक परिस्थितियों से विरक्त होकर 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के प्रचार को अपना लक्ष्य बनाना चाहिये। …मैं अब स्वदेशी नहीं, सर्वदेशीय हूँ, अखिल संसार मेरा स्वदेश है, प्राणिमात्र से मेरा बंधुत्व है, और भौगोलिक तथा जातीय सीमाओं को मिटाना मेरे जीवन का उद्देश्य है।" पृ० ४५५

वर्तमान भारत में कितने ही ऐसे कवि हृदय नवयुवक हैं, जो विश्व प्रेम से अनुप्राणित होते हैं।

(१२) **हिन्दू-मुस्लिम एकता**—राष्ट्रीय संग्राम के दिनों में गाँधी जी ने निरंतर हिन्दू-मुस्लिम एकता पर जोर दिया था। दोनों सम्प्रदायों में समीपता लाने के प्रयासों में 'रंगभूमि' के अन्त में रानी जान्हवी के उद्गार सहायक हो सकते हैं :—"कर्तव्य के क्षेत्र में हिन्दू-मुसलमान का भेद नहीं है, दोनों एक ही नाव में बैठे हुए हैं, डूबेंगे, तो दोनों डूबेंगे; बचेंगे तो दोनों बचेंगे। मैं इस वीर आत्मा का यहीं मजार बनवाऊँगी।"

विनय के मरने पर एक मुसलमान युवक का तलवार से अपने प्राणों का अन्त कर लेना हिन्दू-मुस्लिम एकता की प्रतिष्ठा करना है। ऐसे विचारों की छाप रंगभूमि में है।

(१३) **गाँधी-विचार धारा**—देश की आजादी के लिये गाँधी जी ने सत्याग्रह और अहिंसा का मार्ग अपनाया था। उन्होंने शासकों और पूंजीपतियों से लड़ने के लिये हस्त उद्योग, मिलों का विरोध, जनता का संगठन आदि बातों पर जोर दिया था। प्रेमचंद जी गाँधी जी के परम भक्त थे। उन्होंने 'सूरदास' के रूप में गाँधी के व्यक्तित्व का समावेश किया है। उन्होंने सूरदास के सत्याग्रह द्वारा सरकार का विरोध करना दिखाया, उसकी अहिंसा की मनोवृत्ति कई अवसरों पर प्रकट की। इस प्रकार रंगभूमि में तत्कालीन गाँधी विचार धारा का प्रस्फुटन हुआ है। इस संबंध में हम अलग से विचार प्रकट करेंगे।

(१४) **हिन्दी जगत्**—प्रेमचन्द ने रंगभूमि में हिन्दी भाषा की कई प्रवृत्तियों का दिग्दर्शन प्रसंगवश कराया है। राजा महेन्द्र प्रताप सिंह सेवकदल

को बिदाई देने के लिए स्टेशन चले जाते हैं। इस समाचार को बढ़ा चढ़ा कर पत्रों में छाप दिया जाता है। तत्कालीन संपादकों की मनोवृत्ति का नमूना देखिए :—पुलिसवालों की भाँति इस समुदाय में भी मुरौवत नहीं होती, जरा भी रिआयत नहीं करते। मैं इसका मुँह बन्द रखने के लिए, इसे प्रसन्न रखने के लिए कितने यत्न करता हूँ; आवश्यक और अनावश्यक विज्ञापन छपवाकर इसकी मुट्ठियाँ गरम करता रहता हूँ; जब कोई दावत या उत्सव होता है, तो सबसे पहले इसे निमन्त्रण भेजता हूँ; यहाँ तक कि गत वर्ष म्यूनिसिपैलिटी से इसे पुरस्कार भी दिला दिया था। इस सब खातिरदारियों का यह उपहार है। कुत्ते की दुम को सौ वर्ष तक गाड़ रक्खो तो भी टेढ़ी की टेढ़ी।" पृ० १७०

पत्रों के सम्पादक भी किस प्रकार अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं, इसका विवरण ऊपर की पंक्तियों में दिया गया है। हिन्दी के पत्र-पत्रिकाओं की दुरवस्था का चित्र भी स्वाभाविक है :—"हमारी पत्रिकाओं में कितने भद्दे चित्र होते हैं; व्यर्थ ही कागज लीप-पोत कर खराब किया जाता है। किसी ने बहुत किया तो बिहारीलाल के भावों को लेकर एक सुन्दरी का चित्र बनवा दिया और उसके नीचे उस भाव का दोहा लिख दिया; किसी ने पद्माकर के कवित्त को चित्रित किया। बस इसके आगे किसी की अक्ल नहीं दौड़ती।" पृ० १७१

हिन्दी कविता की तत्कालीन प्रवृत्तियों का कुछ उल्लेख रंगभूमि में मिलता है। प्रभु सेवक पिछली पीढ़ी के कवियों की भाँति अपनी कविता के विषय चुनता है। उसमें पवित्र भाव हैं, भाषा प्रसाद गुण से परिपूर्ण है पर विषय घिसा-पिटा हुआ है—एक माता ससुराल जाती हुई पुत्री को आशीर्वाद दे रही है। प्रेमचन्द जी ने विनय और सोफिया द्वारा नवीन काव्य प्रवृत्तियों का समर्थन कराया है। पुराने विषयों पर कविता लिखना अनुपयुक्त है। देश आजादी की लड़ाई में लगा हुआ है। इस समय राष्ट्रप्रेम विषयक कविताएँ लिखी जानी चाहिए। सोफिया कहती है—"तुम्हारा कर्तव्य है कि अपनी इस अलौकिक शक्ति को स्वदेश-बन्धुओं के हित में लगाओ। अवनति की

दशा में शृंगार और प्रेम का राग अलापने की जरूरत नही होती, इसे तुम भी स्वीकार करोगे।"-पृ० ९१

सम्पादकों, कवियों और साहित्यकारों की दशा का चित्रण रंगभूमि में प्रेमचन्द जी ने इस प्रकार किया है—"सम्पादकों की प्रशंसा का तो कोई मूल्य नहीं। उनमें बहुत कम ऐसे हैं, जो कविता के मर्मज्ञ हों। किसी नये अपरिचित कवि की सुन्दर से सुन्दर कविता न स्वीकार करेंगे, पुराने कवियों सड़ी-गली खोगीर की भरती, सब कुछ शिराधार्य कर लेंगे। कवि मर्मज्ञ होते हुए भी कृपण होते हैं। छोटे-मोटे तुकबन्दी करने वालों की तारीफ भले ही कर दें; लेकिन जिसे अपना प्रतिद्वन्द्वी समझते हैं 'उसके नाम से कानों पर हाथ रख लेते हैं।......पुराने ढंग के कवियों से मेरा कोई मुकाबला नहीं......उनके यहाँ भाषा-लालित्य है, पिंगल की कोई भूल नहीं, खोजने पर भी कोई दोष न निकलेगा, लेकि उपज का नाम नहीं, मौलिकता का निशान नही, वही चबाये हुए कौर खाते हैं, विचारोत्कर्ष का पता नहीं होता। दस-बीस पद्य पढ़ जाओ, तो कहीं उपमाएँ भी वही पुरानी धुरानी, जो प्राचीन कवियों ने बांध रक्खी हैं।" पृ० ३७१

तत्कालीन-कविता के विषय में प्रेमचन्द जी के विचार कितने उपयुक्त हैं, जो उन्होंने प्रभु सेवक के मुँह से कहलाये हैं। उनकी रंगभूमि में समय और देश का स्तर जगह-जगह पर मुखरित हुआ है।

रंगभूमि में जीवन-दर्शन

गाँधीवाद—हम कई स्थानों पर लिख आये हैं कि प्रेमचन्द जी पर गाँधीवादी विचार धारा का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। रंगभूमि में यह विचारधारा आदि से अन्त तक प्रवाहित होती रहती है। इसका कारण यह है कि प्रेमचन्द जी गाँधी जी के परम भक्त थे और भारत की आजादी के साथ-साथ वे भारतीय समाज की पुनर्रचना में विश्वास करते थे। वे गाँधी-विचारधारा का पोषण इसलिए करते हैं कि देश की स्वतन्त्रता पाने का दूसरा रास्ता, जो ध्वंसपूर्ण क्रान्ति का रास्ता, हो सकता है, ही ज्यादा

व्यावहारिक है। एक तो भारत जैसे देश में रूसी क्रान्ति जैसा विप्लव सम्भव नहीं था; दूसरे भूमि-क्रान्ति हो भी, तो उसका शुभ परिणाम ही होगा, ऐसा नहीं कहा जा सकता। गाँधी दर्शन विकासवादी दर्शन है जिसमें विनाश को स्थान नहीं मिलता। इसलिए वे इसी दर्शन के हामी रहे। यह अवश्य ठीक है कि वे गांधी दर्शन से पूर्णतया सन्तुष्ट नहीं हैं और कहीं-कहीं पर उनका क्षोभ स्पष्ट प्रकट हो जाता है। उन्होंने एक बार कहा था कि मैं किसी पार्टी का पोषक नहीं हूँ, मैं तो जनसाधारण की शक्ति और उसके कल्याण में विश्वास करता हूँ। इस भावना के कारण ही वे गाँधी जी अनुयायी रहे थे क्यों कि देश उन्हीं की छत्र-छाया में स्वतन्त्र होने की आशा कर रहा था।

"रंगभूमि में प्रेमचन्द जी ने गाँधीवाद का सर्वांग रूप हमारे सामने उपस्थित किया है। रंगभूमि का 'सूरदास' वास्तव में गाँधी जी के व्यक्तित्व का प्रतिरूप है; केवल अन्तर यह है कि वह पाँडेपुर का गाँधी है और उसका कार्य केवल छोटे पैमाने पर चलता हैं। न्याय, सत्य, अहिंसा, दृढ़ता, असहयोग और क्षमाशीलता के सभी गुण उसमें पाये जाते हैं। गाँधी दर्शन का प्रतिपादन उसी के व्यवहार और विचारों द्वारा प्रेमचन्द जी ने कई प्रसंगों में कराया है।

सूरदास में अहिंसा और क्षमा की पराकाष्ठा है। वह पाप से घृणा करता है, पापी से नहीं। जहाँ भी हिंसा की सम्भावना होती है, सूरदास उसे रोकने की पूरी चेष्ठा करता है। जॉन सेवक के गोदाम पर जनता हमला बोल देती है, तो वह वहाँ पहुँच कर सबको शान्त कर देता है। वह गाँधी के समान ही कहता है कि "आग लगाने से मेरे दिल की आग न बुझेगी, लहू बहाने से मेरा चित्त शान्त न होगा।" भीड़ को रोकने के लिए वह यहाँ तक कह देता है कि यदि तुम लोग न मानोगे तो पत्थर से सिर टकरा कर अपनी जान दे दूँगा। वह केवल चाहता है कि जिन लोगों ने उसके साथ अन्याय किया है, उनमें दया-धरम जागे। त्याग और कष्ट-सहन द्वारा शत्रु को मित्र में परिणत करना गाँधीवादी दर्शन की मुख्य विशेषता है। प्रेमचन्द जी ने इस विचार की सत्यता प्रमाणित कर दी है। सूरदास की

जमीन, उसकी झोपड़ी और साथ में उसकी जान चली जाती है परन्तु अन्त में जॉन सेवक को अपनी पराजय स्वीकार करनी पड़ती है। जब सूरदास मृत्यु के निकट होता है, तो वे कहते हैं कि सूरदास तुम जीते मैं हारा। शत्रु के प्रति क्षमा भाव रखना आवश्यक है। उदयपुर में विनय भी अहिंसा और सत्याग्रह के मार्ग का अवलम्बन करता है। वहां वीरपाल सिंह के विप्लव वाले विचारों को स्वीकार नहीं करता। डाकिये की रक्षा के लिये वह अपने प्राणों को संकट में डाल देता है। जेल में वीरपाल सिंह उसे छुड़ाने के लिये पहुँचता है परन्तु वह वहाँ से नहीं भागता, सत्य पर वह दृढ़ रहता है।

क्षमाशीलता और प्रतिकार की भावना का अभाव गाँधी विचारधारा का प्रमुख अंग है। इस बात को भी सूरदास के चरित्र में दर्शाया गया है। राजा महेन्द्र प्रताप सिंह के विरुद्ध सोफिया ने जो प्रहसन लिखा था, वह उनकी प्रतिष्ठा को नष्ट करने वाला था। सूरदास सोफिया को क्षमा-भाव रखने की शिक्षा देता है। फलतः सोफिया उसे प्रकाशित करने का विचार छोड़ देती है और प्रहसन को फाड़ डालती है। क्लार्क के द्वारा छोड़ी गयी गोली से आहत होने पर भी सूरदास के मुख पर उत्तेजना के स्थान पर क्षमाशीलता का भाव ही वर्तमान था। प्रभु सेवक के व्यवहार में भी क्षमा-शीलता का उदाहरण मिलता है। जब वे पूना में राष्ट्रीय सभा के बीच अपना भाषण दे रहे थे, एक उद्दंड अंग्रेज ने उन पर गोली चला दी। वे कहते हैं—"मैं उस प्राणी को क्षमा करता हूँ, जिसने मुझ पर आघात किया है। उसका जी चाहे, तो वह फिर मुझ पर निशाना मार सकता है। मेरे पक्ष को लेकर किसी को इसका प्रतिकार करने का अधिकार नहीं है। मैं अपने विचारों का प्रचार करने आया हूं, आघातों का प्रत्याघात करने नहीं।

शत्रु को क्षमा करके उसका हृदय जीतना एक महान हृदय वाले व्यक्ति का काम है परन्तु हानि उठाकर भी शत्रु को लाभ पहुँचाना तो महानतम पुरुष का ही काम हो सकता है। गाँधी जी ऐसे ही देवोपम पुरुष थे। रंगभूमि का सूरदास भी उतना ही देवोपम है और वह गाँधी जी के आदर्शों का अनुगमन करता है। भैरों उसके साथ कितनी बुराई करता है, इसे प्रत्येक

पाठक जानता है। दो बार वह सूर की झोंपड़ी जलाता है, उसके रुपये भी उठा ले जाता है, परन्तु सूरदास न केवल अपने रुपये, जो सुभागी उसे वापस दे जाती है, भैरों को दे देता है, वरन् इन्द्रदत्त द्वारा उसे दी गयी रकम भी भैरों को उसकी दूकान बनाने बनाने के लिए दे देता है। इसी प्रकार मिठुआ जॉन सेवक के कारखाने को उड़ा देने की योजना बनाता है और सूर को यह बात बता देता है। सूरदास जॉन-सेवक को यह सारी सूचना देता है। शत्रु के साथ भी मित्रवत् आचरण करने की शिक्षा गाँधी जी दिया करते थे, यह गुण सूरदास में हमें मिलता है। सूरदास के इस सत्याचरण ने उसके शत्रुओं का हृदय बदल दिया। भैरों और जॉन सेवक दोनों उसके भक्त बन गये।

गाँधी की अहिंसा कायर की पराजित भावना नहीं। अहिंसक व्यक्ति अकेले ही न्याय पथ पर चलता है। गाँधी जी कहते थे—इकला चलो रे। सत्य और न्याय के मार्ग पर चलते समय वे यह नहीं देखते थे, कि दुनिया मेरे पीछे चल रही है या नहीं। वे हर बुराई का अकेले विरोध करते थे, चाहे कुछ हो। अपने नेतृत्व को दाँव पर लगा देते थे। सूरदास ने समझ लिया था कि वह अपनी जमीन बेच कर पांडेपुर के लोगों का अहित कर बैठेगा। उसने अपने नाम के लिए नहीं, वरन् जन हित के लिए यह कदम उठाया था। फिर भी एक-एक करके सब लोग उसका साथ छोड़ देते हैं, परन्तु वह अन्याय का प्रतिकार करने के लिए डटा रहता है। अहिंसक मे कितना मनोबल होना चाहिये, यह सूरदास के शब्दों में सुनिये :—"भला सोचो, कितना अन्धेर है कि हम, जो सत्तर पीढ़ियों से यहाँ अबाद हैं, निकाल दिये जायँ और दूसरे यहाँ आकर बस जायँ। यह हमारा घर है, किसी के कहने से नहीं छोड़ सकते, जबरदस्ती जो चाहे निकाल दे, न्याय से नहीं निकाल सकता। तुम्हारे हाथ में बल है, तुम हमें मार सकते हो, हमारे हाथ में बल होता, तो हम तुन्हें मारते, यह तो कोई इंसाफ नहीं है। सरकार के हाथ मे मारने का बल है, हमारे हाथ में और कोई बल नहीं, तो मर जाने का बल तो है। "४६४-४६५

ऐसी दृढ़ता और मनोबल के सहारे ही सत्याग्रही बड़े से बड़े शत्रु के

आगे खड़ा रह सकता है। गाँधी जी ने इसी मार्ग को अपनाया था, सूरदास भी वही मार्ग अपनाता है। उसके मनोबल का प्रभाव यह पड़ता है कि जनता उसका समर्थन करने को तैयार हो जाती है। घटना स्थल पर हजारों आदमियों की भीड़ होती है। घर गिराने के लिये सरकार को दुगनी-तिगुनी मजदूरी देने पर भी मजदूर नहीं मिलते। चपरासी भी सत्याग्रह के आगे काम करने से इनकार कर देते हैं। हवलदार और सिपाही भी गोली नहीं चलाते और अपनी नौकरी से हाथ धोने के लिए तैयार हो जाते हैं। प्रेमचन्द जी ने सत्याग्रह की सफलता रंगभूमि में प्रदर्शित की है। एक का मनोबल कितना कमाल कर सकता है, इसका नमूना रंगभूमि में प्रत्यक्ष देखने को मिलता है।

गाँधीवाद केवल शत्रु से विरुद्ध मोरचा लेने की योजना मात्र नहीं है, उसमें रचनात्मक शक्ति भी है। गाँधी जी त्याग, सेवा, बलिदान और अपरिग्रह पर दृढ़ विश्वास रखते थे। इस विचार धारा का समावेश हमें विनय, इंद्रदत्त, और सूरदास के जीवन में देखने को मिलता हैं। विनय सादा जीवन, उच्च विचार का पक्षपाती है। वह साधु जीवन व्यतीत करता है। उसके रचनात्मक कार्य गाँधी के विचारों से अनुप्रमाणित हैं। जसवंतनगर पहुँच कर वह जनता की सेवा में जुट जाता है। "उन्होंने उन्हें अपनी मदद आप करना सिखाया है। इस प्रान्त के लोग अब वन्य पशुओं को भगाने के लिए पुलिस के यहाँ नहीं दौड़े जाते, स्वयं संगठित होकर उन्हें भगाते हैं; जरा-जरा सी बात पर अदालतों के द्वार नहीं खटखटाये जाते, पंचायतों में समझौता कर लेते हैं; जहाँ कभी कुएँ न थे, वहाँ अब पक्के कुएं तैयार हो गये हैं, सफाई की ओर भी लोग ध्यान देने लगे हैं, दरवाजे पर कूड़े-करकट के ढेर नहीं जमा किये जाते।"

पृ० १७९-१८०

गांधी जी के ग्रामोत्थान और सर्वोदय कार्यक्रम का ही यह वर्णन है जो विनय के सम्बन्ध में दिया गया है। विनय और सूरदास दोनों के जीवन में अपरिग्रह का गुण दिखाया गया है। विनय अपनी बहुत बड़ी सम्पति को ठुकरा देता है; सूरदास मुआवजे की रकम सेवक दल को दे डालता है; इन्द्रदत्त, सूरदास और विनय तीनों एक उद्देश्य के लिए अन्त में प्राणोत्सर्ग

करते हैं।

अर्थ और समाज-व्यवस्था के क्षेत्र में गांधीवाद ने एक मौलिक विचार प्रस्तुत किया है। गांधी जी पूँजीवाद के विरोधी हैं, परन्तु वे पूँजीवाद का अन्त हिंसात्मक तरीके से (जैसे रूप में हुआ) नहीं चाहते। वे ऐसी व्यवस्था चाहते थे जिसमें पूँजीवाद का 'शोषक रूप' समाप्त हो जाय। प्रेमचंद जी कुँवर भरतसिंह द्वारा कहलाते हैं कि "हम जायदाद के स्वामी नहीं; केवल रक्षक हैं। यह गाँधी का विचार है। पूँजीवादी मालिक नहीं हैं, बल्कि वे समाज के धन के रक्षक हैं। इस विचार से पूँजीवाद और जनवाद के बीच संघर्ष समाप्त हो जाता है। इसके अतिरिक्त गाँधी जी पूँजीवाद को पनपने ही नहीं देना चाहते थे, इसलिए वे मशीनों के विरोधी थे। मशीनें चाहे पूँजीपति चलावें, चाहे सरकार, उससे व्यक्ति गुलाम बन जाता है। इस दृष्टि से उन्होंने बड़े-बड़े कल कारखानों और भारी उद्योगों का विरोध किया था। रंगभूमि में प्रेमचंद जी ने यही मूल विषय चुना है। उन्होंने सूरदास के मुख से कहलाया है कि कृषि उपेक्षा से और बड़े कारखानों के चलने से "ऐसे बुरे दिन आरहे हैं, जब तुम्हें सेवा और टहल करके पेट पालना पड़ेगा, जब तुम अपने नौकर नहीं, पराये के नौकर हो जाओगे, तब तुममें नीति धरम का निसान भी नहीं रहेगा।" पूँजीवादी अर्थ व्यवस्था से समाज में अनैतिकता आयेगी। इसलिए सूरदास इसका विरोध करते हुए कहता है, "मोहल्ले की रौनक जरूर बढ़ जायगी, रोजगारी लोगों को फायदा भी खूब होगा। लेकिन जहाँ रौनक बढ़ेगी, वहाँ ताड़ी शराब का परचार तो बढ़ जायगा, कसबियाँ भी तो आकर बस जाँयगी, परदेसी हमारी बहू-बेटियों को घूरेंगे, कितना अधरम होगा। दिहात के किसान अपना काम छोड़कर मजदूरी के लालच में दौड़ेंगे, वहाँ बुरी-बुरी बातें सीखेंगे और अपने बुरे आचरन अपने गाँव में फैलायेंगे। दिहातों की लड़कियाँ-बहुएँ मजूरी करने आयेंगी और यहाँ पैसे के लोभ में अपना धरम बिगाड़ेंगी।"

गाँधी जी के कुछ अन्य विचारों का समावेश 'रंगभूमि' में मिलता है। उदाहरण के लिए, हिन्दू-मुस्लिम एकता और नारी स्वातंत्र्य के विचार भी

आगये। सूरदास के सत्याग्रह के अवसर पर एक मुसलमान युवक विनय के समान अपने जीवन का अन्त कर देता है। इंद्र और सोफिया आज की स्वतंत्र नारी का प्रतिनिधत्व करती है। अस्तु यह कहा जा सकता है, कि रंगभूमि गांधीवाद का साहित्यिक संस्करण है। यह प्रेमचंद जी का राजनैतिक उपन्यास है।

आदर्शवाद और यथार्थवाद—किसी भी उपन्यासकार को शुद्धरूप से यथार्थवाद या आदर्शवाद की परिधि में रखना संभव नहीं है। विशेषरूप से प्रेमचंद को तो किसी एक बात की सीमा में बांधना अनुचित होगा। अगर कुछ कहा जा सकता है, तो यह कि प्रेमचंद जी आदर्शोन्मुख यथार्थवाद के समर्थक हैं और उनके उपन्यासों में यथार्थ और आदर्श का समन्वय है। वे सत्य की प्रतिष्ठा करते हैं परन्तु उसको शिवं और सुन्दरम् का चोला पहनाकर। वे यथार्थ को भद्दे, विकृत, अश्लील और कटु के रूप देखना पसंद नहीं करते और न उन्हें कल्पना के महल में प्रतिष्ठित आदर्श की पूजा करना पसंद है। इस संबंध में उनके विचार यह हैं—"यथार्थवादी चरित्रों को पाठक के सामने उसके यथार्थ नग्न रूप में रख देता है। उसे इससे कुछ मतलब नहीं कि सच्चरित्रता का परिणाम बुरा होता है या कुचरित्रता का परिणाम अच्छा—उसके चरित्र अपनी कमजोरियां या खूबियां दिखाते हुए अपनी जीवन-लीला समाप्त करते हैं।......यथार्थवाद हमारी दुर्बलताओं, हमारी विषमताओं और हमारी क्रूरताओं का नग्न चित्र होता है। और इस तरह यथार्थवाद हमको निराशावादी बना देता है, मानव चरित्र पर से हमारा विश्वास उठ जाता है, हमको अपने चारों ओर बुराई ही बुराई नजर आने लगती है।" "आदर्शवाद.....हमें ऐसे चरित्रों से परिचित कराता है, जिनके हृदय पवित्र होते हैं, जो स्वार्थ और वासना रहित होते हैं, जो साधु प्रकृति के होते हैं। यद्यपि ऐसे चरित्र व्यवहार-कुशल नहीं होते, उनकी सरलता उन्हें सांसारिक विषयों में धोखा देती है, लेकिन कांइयेपन से ऊबे हुए प्राणियों को ऐसे सरल, ऐसे व्यवाहारिक ज्ञान-विहीन चरित्रो के दर्शन से एक विशेष आनन्द होता है।"

यथार्थवाद और आदर्शवाद की व्याख्या कर चुकने के बाद वे दोनों के

दोषों का विवेचन करते हुए, उनके समन्वय पर जोर देते हैं—"यथार्थवाद यदि हमारी आँखें खोल देता है, तो आदर्शवाद हमें उठाकर किसी मनोरम स्थान पर पहुँचा देता है। लेकिन जहाँ आदर्शवाद में यह गुण है, वहाँ इस बात की भी शंका है कि हम ऐसे चरित्रों को न निश्चित कर बैठें जो सिद्धान्तों के मूर्तिमात्र हों—जिनमें जीवन न हो। किसी देवता की कामना करना मुश्किल नहीं है, लेकिन उस देवता में प्राण-प्रतिष्ठा करना मुश्किल है।" "इसलिए वही उपन्यास उच्चकोटि के समझे जाते हैं जहाँ यथार्थ और आदर्श का समावेश हो गया हो।"

अब इस दृष्टि से रंगभूमि का सिंहावलोकन करें। हम पहले बता चुके हैं कि इस उपन्यास में गाँधीवाद का प्रभाव हर जगह स्पष्ट है और वह कई पत्रों के माध्यम से प्रकट हुआ है। वास्तव में गाँधीवाद आदर्शवाद की ही एक धारा माना जाना चाहिए। सरल, संयमपूर्ण जीवन, त्याग, अहिंसा, सत्य और क्षमा आदि के आदर्श गाँधीवाद में समन्वित हैं। सोफिया का संयम, विनय का बलिदान, जाह्नवी का वीरमाता बनने की कामना, प्रभु सेवक की अन्तर्राष्ट्रीयता, और सूरदास की अहिंसा और सत्याग्रह, आदर्शवाद का परिचय देते हैं। कभी-कभी वे लोग इस जगत् के प्राणी नहीं जान पड़ते, परन्तु ऐसे लोग हो ही नहीं सकते, यह नहीं कहा जा सकता। गाँधी जी जैसे युगपुरुष हमारे जीवन-काल में ही हो गये हैं। प्रेमचंद जी के पात्र प्रायः आदर्शोन्मुख हैं। इसलिए नन्ददुलारे वाजपेयी ने उन्हें आदर्शवादी उपन्यासकार माना है।

प्रेमचंद जी के पात्र आदर्श के लिए जीवन संग्राम में जूझते हैं और अपने प्राणों और सुख की आहुति देते हैं। यह प्रवृत्ति सूरदास, सोफिया, विनय, प्रभु सेवक और इंद्रदत्त आदि पात्रों में स्पष्ट लक्षित होती है। फिर भी इन पात्रों को मानवीय रूप दिखाने के लिए प्रेमचंद जी कहीं-न-कहीं उनके चरित्र में दुर्बलताएं दिखा देते हैं। सूरदास अपनी अद्भुत शक्तियों के साथ-साथ एक दुर्बल प्राणी है। वह बच्चों की लड़ाई से दुखी होकर भैरों और जगधर को चिढ़ाता है, वह धन के मोह में इतना विवेकहीन बन जाता है कि जली हुई झोपड़ी की राख में रुपयों की पोटली ढूंढ़ता है और सुभागी को वहन

मानते हुए भी एक बार अपने घर बिठा लेने की बात तक सोच डालता है। विनय की निर्बलताओं पर प्रकाश डाला ही जा चुका है। सोफिया भी कई बार अपनी वासना पर नियंत्रण करने में अपने को असमर्थ पाती है। अपने पात्रों में सहज दुर्बलताओं का समावेश करके प्रेमचंद जी उन्हें यथार्थ का जामा पहना देते हैं। साथ ही वे यथार्थ को नग्न रूप में प्रकट नहीं होने देते। फ्रांसीसी उपन्यासकार जोला या अनातोले की भाँति वे कामवृत्ति की उच्छृंखलता का चित्र खींचना पसंद नहीं करते। यदि 'रंगभूमि' जोला ने लिखी होती तो सोफिया और विनय का एकांत मिलन वासनापूर्ति में समाप्त होता और सुभागी पर नव युवकों का अधिकार हो गया होता परन्तु प्रेमचंद जी आदर्शप्रेम के कारण ऐसे प्रसंगों को बचा गये हैं।

प्रेमचंद जी कुछ अर्थों में यथार्थवाद के उपासक हैं। रंगभूमि में जॉन सेवक जैसे पात्र को देख कर कौन पाठक कह सकता है कि प्रेमचंद जी यथार्थ का ख्याल नहीं रखते। उनका जॉन सेवक इस संसार का सबसे अधिक यथार्थवादी जीव है। अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए वह अच्छे-बुरे हर संभव उपाय अपनाता है। उसके समान व्यवहार कुशल व्यक्ति कहाँ मिलेगा जो सिवा यथार्थ के आदर्श का पल्ला कभी नहीं पकड़ता। जॉन सेवक के चरित्र-चित्रण में हम इस विषय में विस्तार से प्रकाश डाल चुके हैं। यहाँ संक्षेप में केवल यह कहना है कि वह यथार्थ को दृष्टि से ओझल नहीं होने देता। धर्म, सन्तान, मित्र और मृत्यु, सभी उसके स्वार्थ की पूर्ति के साधन हैं। इस नग्न स्वार्थ को प्रेमचंद जी ने भद्दे और कुरूप ढंग से नहीं प्रस्तुत किया है। हमें कहीं भी प्रभु सेवक के प्रति घृणा नहीं पैदा होती। उनका यथार्थ भी आदर्श की तरह मंगलमय है। वास्तविकता यह है कि प्रेमचंद जी आदर्श को प्रस्तुत करते समय यथार्थ का पल्ला नहीं छोड़ते और न यथार्थ के चित्रण में आदर्श को भुला सकते हैं। दोनों का संतुलित प्रयोग रंगभूमि में हुआ है।

कुछ आलोचकों का कहना है कि रंगभूमि में वस्तुतः यथार्थ की प्रतिष्ठा करना प्रेमचंद जी का उद्देश्य था। उन्हें गाँधीवाद अथवा आदर्शवाद की पराजय दिखाना अभीष्ट था। इसीलिए रंगभूमि के अन्त में [illegible]

विफल हो जाती है और जॉन सेवक सफल होते हैं, परन्तु वास्तव में इस प्रकार की धारणा गलत है। यथार्थ और आदर्श की सदैव टक्कर होती है और पहली चोट में यथार्थ आदर्श को गिरा देता है परन्तु अंत में विजय आदर्श की होती है। इस बात का संकेत हमें मृत्यु शैय्या पर पड़े सूरदास की उस उक्ति से मिलता है, जिसमें वह कहता है—"हम हारे तो क्या मैदान से भागे तो नहीं, रोये तो नहीं, धाँधली तो नहीं की। फिर खेलेंगे, जरा दम ले लेने दो, हार-हार कर तुम्हीं से खेलना सीखेंगे और एक-न-एक दिन हमारी जीत होगी, जरूर होगी।" यही नहीं यथार्थरूपी जॉन सेवक अन्त में कहता भी है कि मैं ज़ीत कर भी हरा हूँ क्योंकि हारे हुए आदर्श की पूजा हो रही है और विजयी यथार्थ घृणा का पात्र बन रहा है।

वास्तव में प्रेमचन्द जी स्वभाव से आदर्शवादी हैं। वे यथार्थ का प्रयोग अपने आदर्श को ग्राह्य और स्वाभाविक बनाने के लिए करते हैं। आदर्श के प्रति उनके मन में अधिक प्रेम का कारण उनकी मान्यता है—साहित्य का काम हमारी सुन्दर भावनाओं को जगाकर उनमें कियात्म शक्ति की प्रेरणा पैदा करना है।

रंगभूमि का संदेश और शीर्षक

रंगभूमि का मूल-सन्देश सूरदास के उस गीत में है, जो वह गाता हुआ फिरा करता था। वह गीत है–

भई, क्यों रन से मुंह मोड़ै ?
वीरों का काम है लड़ना, कुछ नाम जगत में करना
क्यों निज मरजादा छोड़ै ?
भई क्यों रन से मुंह मोड़ै ?
क्यों जीत की तुझको इच्छा, क्यों हार की तुझको चिन्ता
क्यों दुख से नाता जोड़ै ?
भई, क्यों रन से मुँह मोड़ै ?
तू रंगभूमि में आया, दिखलाने अपनी माया

क्यों धरम नीति को तोड़ै ?
भई क्यों रन से मुंह मोड़ै ?

यह जीवन एक युद्ध है और हमारा काम वीरों के समान इस युद्ध में संघर्ष करना है। कायरों की तरह हमें मुंह मोड़ कर नहीं भागना चाहिए। यह युद्ध भी धर्मनीति के आधार पर लड़ना उचित है। न्यायूपूर्वक लड़ना है, हार-जीत की चिंता नहीं करना चाहिए। गीता का यह सन्देश है जो भगवान ने अर्जुन को दिया था। उसी सन्देश को सूरदास हमारे सामने प्रकट करता है। सूरदास यह सन्देश केवल मुंह से नहीं कहता वरन् इस पर आचरण करके भी दिखा देता है। यह इस जीवन-दर्शन का व्यावहारिक पक्ष हैं।

सूरदास ने कई स्थलों पर निरपेक्ष तथा तटस्थ भाव से सुख दुख की चिंता किये बिना जीवन का खेल खेलने का अनुरोध सबसे किया है। वह कहता है—"हानि-लाभ, जीवन-मरन, जस, अपजस विधि के हाथ है, हम तो खाली मैदान में खेलने के लिए बनाये गये हैं। सभी खिलाड़ी मन लगाकर खेलते हैं, सभी चाहते हैं कि हमारी जीत हो लेकिन जीत एक ही की होती है, तो क्या इससे हारनेवाले हिम्मत हार जाते हैं ? वे फिर खेलते हैं, फिर हार जाते हैं, तो फिर खेलते हैं। कभी-न-कभी तो उनकी जीत होती ही है। जो आपको आज बुरा कहते हैं, वे कल आपके सामने सिर झुकाएँगे। हाँ नीयत ठीक रहनी चाहिए।"

इस विचार को लेकर ही प्रेमचन्द जी ने रंगभूमि की रचना की है। 'रंगभूमि' शीर्षक की सार्थकता भी उन्होंने इसी दृष्टि से सिद्ध कर दी है। इस संसार को उन्होंने रंगभूमि माना है। अस्तु, उपन्यास में जीवन रूपी खेल दिखाया है। उस खेल में सूरदास एक पाली में और जॉन सेवक दूसरी पाली से खेलते हैं, सूरदास नेता है जनता के दल का, और जॉन सेवक, पूजीवादी वर्ग का। दोनों के बीच खेल की कथा रंगभूमि है। इसलिए यह शीर्षक उपयुक्त भी है।

रंगभूमि में सूक्ति-सुधा

१. लड़के खूब जानते हैं कि किस न्यायशाला में उनकी जीत होती है।

२. दीनों पर उपदेश का भी दाँव चलता है, मोटों को कोई उपदेश नहीं देता।

३. लज्जा अत्यंत निर्लज्ज होती है। अन्तिम समय में भी, जब हम समझते हैं कि उसकी उल्टी साँसे चल रही हैं, वह सहसा चैतन्य हो जाती है और पहले से भी अधिक चैतन्यशील हो जाती है।

४. धरम एहसान के लिए नहीं किया जाता।

५. मूर्खों के पास युक्तियाँ नहीं होतीं, युक्तियों का उत्तर वे हठ से देते हैं।

६. धर्म का मुख्य स्तंभ भय है। अनिष्ट की शंका को दूर करके दीजिये, फिर तीर्थ-यात्रा, पूजा-पाठ, स्नान-ध्यान, रोजा-नमाज किसी का निशान भी न रहेगा। मस्जिदें खाली नजर आयेंगी और मंदिर वीरान।

७. धर्म-भीरुता जड़वादियों की दृष्टि में हास्यास्पद बन जाती है।

८. धर्म तो व्यापार का श्रृंगार है।

९. सच्चा दानी प्रसिद्धि का अभिलाषी नहीं होता।

१०. प्रेम और वासना में उतना ही अन्तर है, जितना कंचन और काँच में।

११. ईर्ष्या में तम ही तम नहीं होता, कुछ सत् भी होता है।

१२. धैर्य तो नैराश्य की अंतिम अवस्था का नाम है। जब तक हम निरुपाय नहीं हो जाते, धैर्य की शरण नहीं लेते।

१३. युवावस्था को अतिशयोक्ति से प्रेम है। हम बाधाओं पर विजय पाकर नहीं, उनकी विशद व्याख्या करके अपना महत्व बढ़ाना चाहते हैं।

१४. वृद्धावस्था बड़ी अविनयशील होती है।

१५. युवावस्था अनुभव-लाभ का समय है। अवस्था प्रौढ़ हो जाने पर ही सार्वजनिक कार्यों में भाग लेना चाहिये।

१६. कठिनाइयों में पड़ कर परिस्थिति पर क्रुद्ध होना मानव-स्वभाव है।

१७. सफलता में अनंत सजीवता है, विफलता में असह्य अशक्ति।

१८. आशा मद है, निराशा मद का उतार । आशा जड़ की ओर ले जाती है, निराशा चैतन्य की ओर । आशा आँखे बन्द कर लेती है, निराशा आँखे खोल देती है । आशा सुलाने वाली थपकी है, निराशा जगाने वाली चाबुक ।

१९. विलंब से प्रेम ठंडा हो जाता है और फिर उस पर कोई चोट नहीं पड़ सकती ।

२०. कपट में से कपट ही पैदा होता है ।

२१. जातीय सेवा का दूसरा नाम बेहयाई है ।

२२. अपने सामर्थ्य का ज्ञान हमें शीलवान् बना देता है ।

२३. बाहर की आग केवल देह का नाश करती है, जो स्वयं नश्वर है, भीतर की आग अनन्त आत्मा का सर्वनाश कर देती है ।

२४. स्वार्थ को कोई दैविक शक्ति परास्त नहीं कर सकती ।

२५. नैराश्य में प्रेम भी द्वेष का रूप धारण कर लेता है ।

२६. हम अपनी दुर्बलताओं को व्यंग्य की ओट में छिपाते हैं ।

२७. मनोवृत्ति वाणी को दूषित कर सकती है, अंगों पर उसका जोर नहीं चलता । जिह्वा चाहे निःशब्द हो जाय, पर आँखे बोलने लगती हैं ।

२८. क्षमा मानवीय भावों में सर्वोपरि है । दया का स्थान इतना ऊँचा नहीं । दया वह दाना है, जो पोली धरती पर उगता है । इसके विपरीत क्षमा वह दाना है, जो काँटों में उगता है । दया वह धारा है जो समतल भूमि पर बहती है, क्षमा कंकड़ों और चट्टानों में बहनेवाली धारा है । दया का मार्ग सीधा और सरल है, क्षमा का मार्ग टेढ़ा और कठिन ।

२९. किसी पर सन्देह करने से अपना चित्त मलीन होता है ।

३०. शीतल विचार कायरता का दूसरा नाम है ।

३१. डाकुओं से धन की रक्षा की जा सकती है, साधुओं से नहीं ।

३२. सौन्दर्य की सबसे मनोहर, सबसे मधुर छवि वह है, जब वह सजल

शोक से आर्द्र होता है, वही उसका आध्यात्मिक स्वरूप होता है।

३३. कोयल आम न पाकर भी निमकौड़ियों पर नहीं गिरती।

३४. शोक की सीमा कंठावरोध है, पर शुष्क और दाहयुक्त, आनन्द की सीमा भी कंठारोध है, पर आर्द्र और शीतल।

३५. शोकाभिनय में भी बहुधा यथार्थ शोक की वेदना होने लगती है।

३६. युवती का हृदय बालक के समान होता है। उसे जिस बात के लिए मना करो, उसी तरफ लपकेगा।

३७. प्रेम एक भावनागत विषय है, भावना ही से उसका पोषण होता है, भावना ही से वह जीवित रहता है और भावना ही से लुप्त हो जाता है।

३८. मन एक भीरू शत्रु है जो सदैव पीठ के पीछे से वार करता है।

३९. विचारोत्कर्ष ही सौन्दर्य का वास्तविक शृंगार है।

४०. निराशा में प्रतीक्षा अंधे की लाठी है।

४१. तोप के सामने खड़ा सिपाही भी बिच्छू को देख कर सशंक हो जाता है।

४२. सफल जीवन पर्याय है खुशामद, अत्याचार और धूर्तता का।

४३. पर निंदा का मनुष्य की जिह्वा पर कभी इतना महत्व नहीं होता, जितना सम्पन्न पुरुषों के सम्मुख।

४४. मानव चरित्र कितना रहस्यमय है। हम दूसरों का अहित करते हुए जरा भी नहीं झिझकते, किन्तु जब दूसरों के हाथों हमें कोई हानि पहुँचती है, तो हमारा खून खौलने लगता है।

४५. क्रोध अत्यंत कठोर होता है, वह मौन को सहन नहीं कर सकता। मौन वह मंत्र है जिसके आगे उसकी सारी शक्ति विफल हो जाती है। मौन उसके लिए अजेय है।

४६. रचयिता अपनी रचना का सबसे चतुर पारखी होता है।

४७. आग चाहे फूस को न जला सके, लोहे की लीक चाहे मिट्टी में न न समा सके, काँच चाहे पत्थर की चोट से न टूट सके, व्यंग्य विरले

ही कभी हृदय को प्रज्ज्वलित करने, उसमें चुभने और उसे चोट पहुँचाने में असफल होता है, विशेष करके जब वह उस प्राणी के मुँह से निकले, जो हमारे जीवन को बना या बिगाड़ सकता है।

प्रेमचंद जी का जीवन वृन्त और हिन्दी-सेवा

प्रेमचंद जी का जन्म ३१ जलाई १८८० में बनारस नगर के निकट लमही नामक गाँव में हुआ था। उनका असली नाम धनपत राय था। इनके पिता अजबराय डाकखाने में नौकर थे। इनकी माता आनन्दी देवी बड़ी सन्तोषी स्वभाव की थीं। परिवार समृद्ध न था और बचपन में प्रेमचंद जी को आर्थिक तंगी का अनुभव करना पड़ा। यही नहीं अल्पावस्था में उन्हें मातृ-वियोग का सामना करना पड़ा। इसका उनके मानसिक जीवन पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा। अपनी विमाता के कठोर व्यवहार से उन्हें बड़ी ठेस पहुँची। बचपन में स्नेह के अभाव में पले प्रेमचंद को इसी समय जीवन की कटुता का अनुभव होने लगा। घर में चैन न मिलने से वे सैलानी प्रकृति के बालक हो गये। इससे उनको लाभ यह हुआ है कि वे गाँव के जीवन से पूर्णतया परिचित होगये, उनकी पर्यवेक्षण शक्ति का विकास हुआ। उनके साहित्य में ग्रामीण-जीवन का सच्चा चित्र इसी लिए उतर सका। कुछ अभाव उनके लिए वरदान बन गये।

जब प्रेमचंद जी १३ वर्ष के थे, उनके पिता की बदली गोरखपुर हो गयी। यहाँ उनका विद्यार्थी-जीवन प्रारंभ हुआ। उन्होंने उर्दू भाषा पहले सीखी, क्योंकि उन दिनों उर्दू का चलन था। ज्यों-ही उन्हें भाषा का ज्ञान हुआ, उनको उपन्यास पढ़ने का चस्का लग गया। उन्होने मौलाना शरर और रतन नाथ सरकार आदि के उपन्यास पढ़े। कहते हैं कि उनका यह शौक इतना बढ़ गया कि वे अपने एक मित्र के घर तम्बाकू के गट्ठरों के पीछे बैठ कर तिलस्मी होशरुबा पढ़ा करते थे। उपन्यासों की पढ़ाई ने उनकी कल्पना शक्ति को खूब विकासित कर दिया।

प्रेमचंद जी का विद्यर्थी-जीवन संकटमय रहा। उनके पिता की मृत्यु होगयी और उन्हें अपनी पढ़ाई के लिए धन संग्रह करने की चिंता सवार हो

गयी। फिर उनका विवाह उनके पिता कर गये थे; पत्नी का भार भी ढोना था। उनकी पत्नी का स्वभाव अच्छा न था और प्रेमचंद जी की उससे पटती न थी। ऐसी परिस्थिति में वे पढ़ रहे थे। ट्यूशन ही उनका सहारा थी और घोर परिश्रम उनका संबल। बड़ी कठिनाई से उन्होने दसवीं कक्षा द्वितीय श्रेणी में पास की। आगे इनकी पढ़ाई न हो सकी। पारिवारिक परिस्थतियाँ विषम हो गयी थीं। अत: १८९९ में प्रेमचन्द जी को अध्यापन के पेशे में प्रवेश करना पड़ा। अब भी वे अपनी योग्यता बढ़ाना चाहते थे। इस मार्ग में गणित विषय मार्ग का रोड़ा बन गया। ट्रेनिंग कालेज में इसी ने धोखा दिया और वे इंटर भी न पास कर पाये। जब १९१० में गणित एच्छिक विषय बना दिया गया, तब उन्होने एफ० ए० पास किया और १९१९ में अध्यापक की हैसियत से बी० ए० पास किया।

प्रेमचंद जी के पारिवारिक जीवन की दो प्रमुख समस्याएं थीं। एक तो, उनकी विमाता का उनके साथ व्यवहार अच्छा न था। दूसरे, उनकी पत्नी उन्हें परेशान करती थी। अंत में उन्होने अपनी पहली पत्नी का परित्याग कर दिया और एक बाल विधवा स्त्री से विवाह कर लिया। उनकी दूसरी पत्नी जीवन के अंतिम क्षणों तक उनकी संगिनी बनी रहीं। विमाता के प्रति प्रेमचंद जी ने कभी भी दुर्व्यवहार नहीं किया। वे भरसक उसका भरण-पोषण करते रहे।

सन् १९०६ में वे महोबा के डिप्टी इन्स्पेक्टर नियुक्त हुए। यहाँ वे ६ साल रहे और उसके बाद बस्ती के सरकारी स्कूल में इनकी नियुक्ति होगयी। इस काल में ही इनकी साहित्य सेवा का कार्य प्रारंभ होगया था। तब तक प्रथम महायुद्ध का अन्त हुआ और भारत के नेतृत्व की बागडोर गाँधी जी के हाथों में आयी। सत्याग्रह का दौर चला और दौर में अभूतपूर्व राष्ट्रीयता का भाव जाग्रत हुआ। इसका प्रभाव प्रेमचंद जी पर भी पड़ा। उन्होने सरकारी नौकरी से त्याग-पत्र दे दिया। इसके बाद ही उन्हें काशी-विद्यापीठ के विद्यालय विभाग में हेड मास्टरी करने का अवसर मिला, परन्तु इस पद पर वे रुक न सके क्योंकि वहाँ के अधिकारियों से उनका मतभेद होगया। वे

नौकरी छोड़कर अपने गाँव-लमही में जाकर रहने लगे। सन् १९२४ में अलवर नरेश ने इनकी रचनाओं से प्रभावित होकर ४०० रु० प्रति मास की नौकरी प्रदान की और बंगला, मोटर और नौकर अलग। परन्तु प्रेमचंद जी ने स्वतंत्र लेखक का जीवन अपनाने का निश्चय कर लिया था। उन्होंने अलवर जाने से इनकार कर दिया।

प्रेमचंद जी को संपादन का कार्य भी पसंद था। पहली बार उन्होंने 'मर्यादा' पत्रिका का संपादक कार्य अपनाया, क्योंकि बा० संपूर्णानन्द जी, जो उसके संपादक थे, जेल जा चुके थे। उनके लौटने पर वे अलग होगये। सन् १९२९ में वे 'माधुरी' के संपादक बन गये और १९३० में 'हंस' का संपादन आरम्भ किया। इस पत्र को उन्होंने अपने अंतिम काल तक घाटा सह कर भी चलाये रक्खा। कुछ समय तक प्रेमचंद जी फिल्मी जगत् में भी रहें। सन् १९३४ में आठ हजार वार्षिक के ठेके पर एक फिल्म कंपनी ने इनकी सेवाएँ उपलब्ध करलीं। यहाँ प्रेमचंद जी को घोर असंतोष रहा क्योंकि यहाँ कलाकार को फिल्म निर्माताओं की इच्छा का दास बनना पड़ता है। मियाद पूरी होते ही वे बनारस लौट आये। यहाँ वे साहित्य सेवा में लग गये।

सन् १९३६ में इनका अतंकाल निकट आगया। प्रेमचंद जी का स्वास्थ्य बहुत अच्छा न था। इन्हें पेचिश का पुराना रोग था, जिससे वे प्रायः पीड़ित रहा करते थे। इस वर्ष पेचिश ने जोर पकड़ा। २५ जून को भीषण दर्द इनके पेट मे उठा और उनकी हालत गिरने लगी। कै-दस्त, पेट का फूलना और अनिद्रा सबने मिल कर अपना आक्रमण बोल दिया था। आखिर ८ अक्तूबर १९३६ को प्रेमचंद जी स्वर्गवासी होगये।

प्रेमचन्द जी उन व्यक्तियों में हैं, जो अपने भाग्य का निर्माण स्वयं करते हैं। उनके पास सिवा संघर्ष करने की शक्ति के, और कुछ न था। माता-पिता की ओर से उपेक्षित और गरीबी के दम घुटने वाले वातावरण में पोषित प्रेमचन्द की उपलब्धियों पर हम जब विचार करते हैं, तो हमें दंग रह जाना पड़ता है। वे अपनी दृढ़ता और साहस के बल पर विजयी हुए और इस जीवन को कर्म क्षेत्र मान कर आगे बढ़ते रहे। उनकी एक महत्वाकांक्षा पूरी न हो सकी.

उनकी बड़ी इच्छा थी कि एम० ए० पास करके वकालत करें, परन्तु उनका यह अरमान पूरा न हो सका। फिर भी वे साहित्य को कुछ जो दे गये या जिस प्रकार से अपना नाम चिर स्थायी कर गये, उससे प्रकट है, कि वे वकील बन कर इतना न कर पाते। साहित्य के माध्यम से उनकी प्रतिभा प्रस्फुटित हुई। प्रेमचन्द जी के चरित्र की मुख्य विशेषता थी, उनकी सादगी और सदाचार। सहृदयता में शायद ही कोई व्यक्ति उनकी बराबरी कर सकता। संघर्ष करने की अपार शक्ति उनमें थी। गरीबी से लड़ते हुए कई बार उन्हें अपना कोट और किताबें तक बेचने का अवसर आ गया, परन्तु उन्होंने सत्पथ से कभी मुँह नहीं मोड़ा। यही कारण है कि वे साहित्य की साधना में सफल हो सके। इस क्षेत्र में केवल अध्यवसायी लोग ही ठहर सकते हैं।

हम एक जगह पहले ही कह चुके हैं कि प्रेमचन्द जी में साहित्य के प्रति पहले से ही अनुराग था। वे उर्दू के उपन्यास बड़े शौक़ से पढ़ते थे। जब वे १३-१४ वर्ष के थे, तभी लिखना प्रारम्भ कर दिया था। उन्होंने साहित्य-रचना की शुरुआत उर्दू में की। उनकी प्रारम्भिक कृतियाँ नष्ट हो गयीं या उन्होंने स्वयं नष्ट कर दीं। इन रचनाओं में एक प्रहसन और एक नाटक का जिक्र प्रेमचन्द जी ने अपने एक लेख में किया है। उनका प्रथम उपन्यास जो अखबार में क्रमशः प्रकाशित हुआ था, "इसरारे मोहब्बत" था। पुस्तक के रूप में उनका पहला उपन्यास "हम खुर्मा हम सबाब" १९०१ में छपा। इस उपन्यास को हिन्दी में "प्रेम" के नाम से स्थान मिला। साहित्य जगत् में प्रेमचन्द जी का नाम "जमाना" पत्र के द्वारा प्रसिद्ध हुआ। इनका एक कहानी-संग्रह "सोजे वतन" राष्ट्रीय भावों से ओतप्रोत था और उसे सरकार ने जब्त कर लिया था। तभी से वे प्रेमचन्द के नाम से लिखने लगे। वे बराबर कहानियाँ लिखते रहे। सन् १९१२-१३ में इनका "वरदान" प्रकाशित हुआ। तबसे इनका लेखन-कार्य उनकी मृत्यु तक बराबर जारी रहा। उनके उपन्यास-साहित्य की सूची निम्नलिखित है।

(१) बरदान–१९१२-१३ (२) सेवा-सदन–१९१४ (३) प्रेमाश्रम–१९२२ (४) निर्मला–१९२३ (५) रंगभूमि–१९२४ (६) काया कल्प–

१९२८ (७) प्रतिज्ञा १९३० (८) गवन–१९३० (९) कर्मभूमि–१९३२ (१०) गोदान–१९३६ (११) मंगलसूत्र–अपूर्ण ।

प्रेमचन्द जी ने अनेक कहानियाँ लिखीं । उनके संग्रह प्रकाशित हुए । इसके अतिरिक्त उन्होंने नाटक भी लिखे, जिनके नाम हैं—कर्बला, रुहानी, शादी, संग्राम, प्रेम की वेदी । "महात्मा शेखशादी" और "दुर्गादास" उनकी दो जीवनियाँ हैं । उन्होंने बाल-साहित्य भी लिखा, जिसके अन्तर्गत कुत्ते की कहानी, जंगल की कहानियाँ, रामचर्चा और मनमोदक आ जाते हैं । प्रेमचन्द जी ने कई उत्तम ग्रन्थों का अनुवाद विदेशी भाषाओं से किया, जैसे टाल्स्टाय की कहानियाँ, जार्ज इलियट का सिलास मारिमर (सुखदास), अनातोले फ्रांस की थाया (अहंकार), गाल्सवर्दी का सिल्वर बाक्स (चाँदी की डिबिया), गाल्सवर्दी के "जस्टिंस" और "स्ट्राइक" ("न्याय" और हड़ताल), उर्दू के प्रसिद्ध लेखक पं० रतननाथ सरशार का फिसानए आजाद (अजाद कथा) । उन्होने निबंध साहित्य की भी वृद्धि की । अनेक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित उनके लेखों का संग्रह "साहित्य का स्वरूप" नाम से उपलब्ध है ।

प्रेमचन्द जी ने कई पत्रों का संपादन करके हिन्दी की सेवा की । "मर्यादा" और "माधुरी" के संपादन में वे लगे रहे परन्तु संपादन-कला की दृष्टि से उनका "हंस" अपना विशेष स्थान रखता है । उनके द्वारा वे अनेक नये लेखकों को प्रोत्साहन देते रहे । "हंस" स्वतन्त्रता-आन्दोलन को भी सहायता पहुँचाता रहा । "हंस" के स्तर को ऊँचा बनाये रखने और अजादी की आवाज को बुलंद करने के लिये प्रेमचन्द जी को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा । फिर भी वे इसकी रक्षा के लिये कटिबद्ध रहे । उनके अपने पुत्रों से अधिक "हंस" से प्रेम था । इसका प्रमाण यह है कि आर्थिक तंगी और घाटे के बावजूद वे इसे चलाते रहे । इसको जीवित रखने के लिये जब उन्होंने एक बार इसे सस्ता साहित्य मंडल" को सौंप दिया और मंडल ने सरकार द्वारा इससे जमानत माँगने पर इसका प्रकाशन स्थगित करने की घोषणा की, तो प्रेमचन्द जी ने इसे फिर वापस ले लिया । उनकी चिंता का प्रमुख विषय "हंस" ही रहा ।

प्रेमचन्द की साहित्य सेवा की विशेषता यह है कि उसमें भारत का, उसके

एक गौरव पूर्ण युग का स्वर हर जगह बोलता है। डा० रामविलास शर्मा के शब्दों में "प्रेमचन्द की आवाज सुनकर हमें अपने देश और जनता पर गर्व होता है, उस संस्कृति पर गर्व होता है जिसे प्रेमचन्द जी सँवार रहे थे। प्रेमचन्द की आवाज अजेय जनता की आवाज है। इसलिये प्रेमचन्द आज भी हमारे साथ हैं।" प्रेमचन्द के साहित्य का असली मूल्यांकन अभी बाकी है। उन्हें केवल अभी साहित्य सेवियों ने पहचाना है। एक दिन जब प्रजातंत्र का पूर्ण विकास हो चुकेगा और इस देश का किसान अपने को पहचानेगा, तब प्रेमचन्द की पूजा होगी, क्योंकि तब वे जानेंगे कि कभी एक ऐसे महान पुरुष ने उनकी दीनावस्था में उनकी आवाज बुलंद की थी। जनता की भावनाओं की, उसकी आकांक्षाओं की, अभिव्यक्ति करने वाले प्रेमचन्द का मूल्य बढ़ता जायगा। इसका प्रमाण यह है कि उनके ग्रन्थों को रूसी, अंग्रेजी और अन्य यूरोपीय भाषाओं ने अनुवाद रूप में शिरोधार्य किया है।

कठिन स्थलों की व्याख्या

पृ० ५६, " लज्जा अत्यन्त निर्लज्ज.................द्योतक हो।

जैसे निर्लज्ज आदमी बार-बार दुत्कारने पर भी नहीं जाता, उसी प्रकार लज्जा भी लाख दूर करने पर भी नहीं जाती है। इसलिए लज्जा को निर्लज्ज कहा जा सकता है। जब हम समझते हैं कि अब लज्जा नहीं है, उस समय भी वह मौजूद रहती है। उदाहरण के लिए हमें किसी से कुछ माँगने में लज्जा आती है, परन्तु हम निर्लज्ज बन कर उसके पास जाते हैं, क्योंकि वह हमारा घनिष्ठ मित्र है। जब मित्र हमारे सामने सामने होता है, तो हमारा साहस नहीं होता कि उससे कुछ माँगें, क्योंकि उस समय हमारी लज्जा की भावना जाग उठती है। बजाय माँगने के हम कुछ बातें करके वापस चले आते हैं। उस समय हम इस बात का की ध्यान रखते हैं कि एक भी शब्द ऐसा न निकले जिससे हमारे मन की बात खुल जाय, मित्र को यह मालूमहो जाय कि यह कुछ माँगने आया है।

पृ० ६३, धर्म का मुख्य..............मंदिर वीरान।

धर्म का आधार अंध विश्वास है, तर्क नहीं। हमारे मन में धर्म की भावनाएँ जागने के लिए भय दिलाया जाता है। उदाहरण के लिए, नर्क या पाप का भय दिखा कर धर्म पालन करने के लिए कहा जाता है। यदि लोग नर्क, पाप या ईश्वर का भय न करें, तो मन्दिर, मस्जिद और गिरजेघर जाना छोड़ दें। हम पाप के डर से छूटने के लिये तीर्थ यात्रा करते हैं, या व्रत उपवास रखते हैं, या पूजा-पाठ करते हैं। ईश्वर का प्रकोप हमसे यह सब करवाता है।

पृ० ६६, कृतज्ञता हमसे सब............असह्य होता है।

जब कोई हमें कुछ देता है, तो हम उसके प्रतिकृतज्ञ हो जाते हैं। कृतज्ञता की भावना हमें याद दिलाती रहती है कि अमुक व्यक्ति ने हमें यह दिया था। वह हमें उसका बदला चुकाने के लिए मजबूर करती है, कभी-कभी यह बदला चुकाने के लिए हम नियमों को भी तोड़ देते हैं। घूस आदि के बदले सरकारी नियमों का तोड़ना इस बात का प्रत्यक्ष उदाहरण है। इसीलिए कृतज्ञता की तुलना चक्की से की जा सकती है, जिसमें नियम पिस पर चकनाचूर हो जाते हैं। आम-तौर से कृतज्ञता की भावना उसी में प्रबल होती है, जो स्वार्थी न हो। जो व्यक्ति निस्वार्थ भाव से काम करता है, उसे किसी का किया गया उपकार सहन नहीं होता। ऐसा व्यक्ति कृतज्ञता का बोझ नहीं उठा सकता।

पृ० ७२, धर्म और व्यापार को एक तराजू............नाप लेना पाप है।

धर्म ओर व्यापार को बराबर मानना मूर्खता है, धर्म का आधार नैतिकता है। सच्चाई, ईमानदारी और न्याय के बल पर धर्म चलता है। व्यापार में झूठ बेईमानी और अन्याय से काम लेना पड़ता है। इसलिए इन दोनों में कोई संबंध नहीं। यह सोचना कि धर्माचरण करते हुए व्यापार करके लाभ उठाया जा सकता है, पूरी मूर्खता की बात है। इसलिए मनुष्य ने दो जीवनों, दो संसारों की कल्पना की है। इस जीवन, इस संसार में व्यापार की आवश्यकता है, इसमें सुख पाने के लिए धन चाहिए और धन व्यापार और अनैतिकता से आ-ता है। धन पाकर धर्म कर सकते हैं। धर्म से परलोक बनता है। इसलिए व्यापार

करके धन पैदा करिए और बाद में उसी धन से कुँए,, सराय, धर्मशाला, मंदिर मस्जिद बनवा दीजिए; बस आपको स्वर्ग मिलेगा। हमारे देश में व्यापारियों और धनी वर्ग की धर्म के बारे में यही धारणा है कहते हैं—भूखे भजन न होय गोपाला'।

पृ० ९१, गार्हस्थ्य को ऋषियों ने..........दाम्पत्य सुख भोगीयों को है।

भारत में प्राचीन आचार्यों ने जीवन को चार आश्रमों में बाँट दिया था। उनमें से गृहस्थाश्रम को उन्होंने सब से उँचा बताय। और कहा कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति इसी अकेले आश्रम से हो सकती है। इसका कारण यह है कि गृहस्थ रहते हुए मनुष्य प्रेम करता है, त्याग करता है, दूसरों की सेवा करता है। इस प्रकार के महान आदर्शों का पालन गृहस्थ जीवन में ही संभव है। गृहस्थ जीवन में भोग और त्याग दोनों संभव हैं। इस आश्रम को स्वाभाविक कह सकते हैं। क्योंकि मनुष्य भोग और त्याग दोनों के बीच रह कर स्वस्थ जीवन बिताता है। मनुष्य जाति की श्रेष्ठता गृहस्थ-धर्म का पालन करने वालों ने प्रामाणित की है। विवाह करके इस आश्रम में प्रवेश करने वाले लोग केवल योगी नहीं होते। इसलिए विवाह को बुरा कहना उचित नहीं है। यह देश-सेवा में बाधक नहीं है।

पृ० १०७,—संसार में किसी काम का अच्छा..............................स्मारक बनाये जाते है।

कोई काम अच्छा है या बुरा— इस बात का प्रतिमान सफलता है। जिस काम में मनुष्य सफल हो जाय वही काम अच्छा और जिस काम में मनुष्य असफल हो जाय, वही बुरा। इसका प्रमाण राजनीति में मिलता है। किसी देश में एक मनुष्य राजा का विरोध करता है। यदि वह सफल हो जाय, तो उसके कार्य को देश भक्ति कहा जायगा और उसकी पूजा की जायगी। यदि वही व्यक्ति असफल हो जाय, तो उसे देश द्रोही कहते हैं और उसे प्राणदंड दिया जाता है। इससे सिद्ध है कि सफलता किसी काम को अच्छा या बुरा बनाती है।

पृ० १००, बेटा रंग मिलाये बगैर भी........ रंगों की जरूरत होती है।

इस संसार में सफलता पाने का उपाय यह है कि अवसर के अनुकूल किसी

बात को घटा-बढ़ा कर कहना चाहिए। एक व्यवसाय में ऐसा कहना बहुत जरूरी है। एक व्यवसायी अपनी साधारण वस्तु की बढ़ा चढ़ा कर इस प्रकार प्रशंसा करता है कि ग्राहक उसे खरीदने के लिए टूट पड़ते हैं। ऐसा कहना बुरा नहीं है। अपनी दवा को रामवाण कहना या संजीवनी कहना पाप नहीं है। अपनी बात को सभी बढा-चढ़ा कर कहते हैं, उपदेशक अपनी बात को रंग मिला कर कहता है और वकील को भी अपने मुकदमे को जीतने के लिए कुछ रंग मिलाना पड़ता है। इसी तरह संसार में अपनी बात को कुछ हेर फेर करके प्रस्तुत करने में सफलता मिलती है।

पृ १२२, सच्चे खिलाड़ी कभी रोते········रोने के लिए नहीं।

यह जीवन एक खेल के समान है और मनुष्य को यह खेल तटस्थ भाव से खेलना चाहिए। जैसे खिलाड़ी अपने खेल में मन लगा देता है, खेल के समय सुख-दुख का अनुभव केवल क्षणिक रूप से करता है, उसी प्रकार इस जीवन में मनुष्य को जरा देर के लिये ही सुख-दुख का अनुभव करके अपनी सफलता और विफलता को भूल जाना चाहिए। खिलाड़ी किसी से ईर्ष्या नहीं करता, न चिढ़ता है और न दुश्मनी बाँधता है, हार-हार कर भी बाजी जीतने की चेष्टा करता है, उसी प्रकार हमें इस भी इस जीवन में विजय पाने की पूरी चेष्टा करनी चाहिए, पर अपनी विरोधी से घृणा या शत्रुता का भाव नहीं रखना चाहिए। यदि जीवन को खेल समझ लिया जाय, तो इसका आनन्द लेना चाहिए। पराजय भी आनन्द का कारण बन जाती है।

पृ० १३६, तुम्हारा यह कहना··········करने लगती है।

भयभीत होकर कोई आदमी क्षमा नहीं माँगता। भय होने पर आदमी, छिपने और भागने का प्रयत्न करता है। क्षमा माँगने का कारण दूसरी मनोवृत्ति है। जब मनुष्य को यह विश्वास हो जाता है, कि मैंने बुरा काम किया और उसके लिए उसे पश्चात्ताप होने लगता है, तब वह क्षमा माँगने के लिये तैयार हो जाता है।

पृष्ठ १५०, अब यह विदित हो रहा है··········कितना बड़ा अन्याय है।

सोफिया ने पहले यह निश्चय किया था कि मैं विनय से केवल आध्या-

त्मिक प्रेम करूँगी परन्तु ऐसा न होता । वह उन्हें पाने का प्रयत्न करने लगी । इससे स्पष्ट है कि आध्यात्मिक प्रेम केवल ईश्वर से किया जा सकता है । वह प्रेम भी भक्ति बन जाता है । स्त्री-पुरुष आध्यात्मिक प्रेम नहीं कर सकते क्योंकि शरीर वासना को बीच में ले आता है । वे प्रेम के साथ-साथ वासना की तुष्टि चाहने लगते हैं । इसलिए सोफिया की समझ में आने लगा कि प्रेम के कारण वह पतन की ओर अग्रसर होने लगी है । प्रेम के पहले मनुष्य कहता है कि हम अपने प्रिय को केवल देखते रहेंगे । पर बाद में उसकी इच्छा उसे पाने की होने लगती है । सोफिया बिदुषी थी, वह जानती है कि इस जीवन का उद्देश्य है ऊँचे उठना, संसार में कुछ कर दिखाना । वह यह भी जानती है कि संसार क्षणभंगुर है, शरीर नष्ट होता है फिर भी वह वासनामय प्रेम के पीछे इस तरह दौड़ने लगी, जैसे पतंग दीपक के पीछे दौड़ता है । प्रेम में पड़कर मनुष्य सारा ज्ञान भूल जाता है, संयम ढीला पड़ जाता है प्रेम में पड़कर भक्त जन भी बच नहीं सकते । जब प्रेम मनुष्य को अपनी ओर खीच रहा हो, तो उसे अपने को रोकना कठिन होता है ।

पृष्ठ १५३, उसकी दशा उस मनुष्य............रोने लगता है ।

सोफिया जब विनय के पत्र को न पा सकी, तो बड़ी निराश हुई । उसकी मनोदशा की तुलना प्रेमचंद जी एक ऐसे व्यक्ति से करते हैं, जो मेले में अपने खोये हुए प्रिय जन को ढूढ़ता है परन्तु उसे पाता नहीं, वह कभी उसका नाम लेकर पुकारता है, कभी उससे मिली-जुलती सूरत के आदमी को झपट कर देखता है, पर अन्त में लज्जित होता है, और फिर उसकी आशा टूट जाती है; सिवा रोने के कोई चारा नहीं रह जाता पत्र न पाने पर सोफिया की यही दशा हो रही थी ।

पृष्ठ १५३, मगर आशा उस घास............लहराने लगती है ।

प्रेम चंद जी ने आशा की तुलना घास से की है । घास गर्मी के दिनों में सूख कर नष्ट हो जाती है, परन्तु उसकी जड़ें नहीं मरतीं । पानी बरसते ही घास हरी हो जाती है । उसी तरह आशा भी चाहे कितनी अपूर्ण रहे मरती नहीं । जहाँ अवसर आया, फिर वह हमारे मन में उत्पन्न हो कर अपना

प्रभाव जमा लेती है।

पृष्ठ १६४, में बचन से साम्यवाद......बदनाम करना है।

बहुत से लोग साम्यवाद का प्रचार करते हैं, पर कर्म में उसे नहीं लाते। हमारे देश में कितने ही ऐसे लोग हैं, जो दिखावे के साम्यवादी हैं, ढोल पीट-पीट कर कहते हैं कि बराबर संपत्ति का बटवारा हो परन्तु बड़ी-बड़ी कोठियों में रहना चाहते हैं। कहते कुछ हैं, करते कुछ हैं। वचन और कर्म में यह भेद मुझे सहन नहीं होता। दिखाने के लिये सादगी से रहना, कमरों में फर्श न रखना आदि केवल आडंबर हैं। अपनी ओर से त्याग न करना और साम्यवाद की दुहाई देना पाखंड है। ऐसे लोग अपने भोजन के बाद, बचा हुआ अंश गरीबों को देकर केवल नाम कमाना चाहते हैं।

पृ० १८४, जब मनुष्य दुष्टता की चरम सीमा......परास्त नहीं कर सकती।

अहिंसा, त्याग और उदारता का प्रभाव सज्जनों पर पड़ता है, दुर्जनों पर नहीं। शेर के आगे अहिंसा नहीं चल सकती। इसी प्रकार दुष्ट, अत्याचारी और अन्यायी के लिये दंड की व्यवस्था है। हमारी नीति कहती है— विषस्य विषमौषधम्। अर्थात विष की दवा विष है और "शठे शाठ्यंसमा चरेत्" दुष्ट के साथ दुष्टता का बर्ताव करना चाहिये, क्योंकि जब किसी मनुष्य में मनुष्यता न रह जाय दया धर्म नष्ट हो जाय, जो उसको प्रेम से नहीं जीता जा सकता। दुष्ट हृदय वाले व्यक्ति को दैवी शक्ति रा सकती।

पृ० २१७, धार्मिक विवेचनाओं ने......उनका आशय नहीं समझा।

जॉन सेवक ने सोफिया को फटकारते हुए कहा कि तुमने धर्म ग्रन्थों को पढ़ते-पढ़ते अपनी विचार शक्ति खो दी है। धर्म में त्याग और परोपकार करने पर जोर दिया गया है। यह आदर्श बनाये गये हैं, केवल कुछ लोगों के लिये, सबके लिये नहीं। भक्त जन, कवि और उपदेशक इनकी चर्चा करते हैं। धर्म ग्रन्थों में लिखी बातों पर आचरण करने वाला मनुष्य जीवन में असफल हो जायगा। वह युग भिन्न था, जब ईसा, बुद्ध और मूसा जैसे त्यागी पैदा हुये थे। आज का संसार संघर्ष से पूर्ण है। आज धन को बुरा कहा जाता है, परन्तु मनुष्य को सुख उसी से प्राप्त हो सकता है। मैं तुमसे शिक्षा नहीं लेना चाहता।

तुमको भगवान ने धर्म का ठेकेदार नहीं बनया। उन्हें ऐसा करने के लिये ही बनाया है। ऊँच-नीच का भाव उसी ने पैदा किया। यह समझना भूल होगी कि समाज में ऊँच-नीच की भावना मनुष्य ने पैदा की।

पृ० २४९, उसका मस्तिष्क गीता के·····बंशी की ध्वनि सुना दी थी।

सोफिया ने कृष्ण-चरित्र पढ़ा। इसका उस पर गहरा प्रभाव पड़ा। अभी तक उसने गीता पढ़ी थी, जिसमें दार्शनिक चर्चा थी। इससे वह प्रभावित अवश्य थी, पर अब कृष्ण की लीलाओं की कथा पढ़ कर उसके मन में प्रेम तरंगें उठने उगीं। अब वह कृष्ण से ईसा की तुलना करती। ईसा में उच्च विचार थे, परन्तु कृष्ण में शुद्ध भावना मय प्रेम। ईसा में दया थी जो आकाश की तरह अनन्त थी परन्तु उसमें नीरसता थी, उनकी दया की तुलना जल प्रवाह से की जा सकती है, परन्तु उसमें इतना प्रभाव न था। कृष्ण का प्रेम फूलों से सज्जित उद्यान की भाँति मनमोहक था और बंशी की तान की तरह आकर्षक। ईसा मसीह को देवता समझ लेना सरल है, परन्तु कृष्ण देवता होते हुये भी एक मनुष्य जान पड़ते हैं। एक अप्राप्य है और दूसरा प्राप्य। ईसा योगी की भाँति उदासीन है, तो कृष्ण कवि की तरह मोहक, एक संयमी और दूसरा भोगी। इसी से सोफिया को कृष्ण ज्यादा आकर्षक लगे और वह उनकी प्रेम-क्रीड़ाओं से अपने मन को हटा सकने में असमर्थ थी। उसे कृष्ण की बंशी की तान मानो हर समय सुनायी पड़ती थी।

पृ० २७७ विनय भी दोनों पर खोले·····कोठरी कितनी भयंकर।

जेल में सोफिया और विनय का अबाध मिलन हुआ। उस समय विनय एक पक्षी के भाँति कल्पना के अनन्त लोक में विहार कर रहे थे। सोफिया का प्रेम पाकर वे एक सुखमय संसार में भ्रमण करने लगे। उस लोक में सब कुछ सुखद, सुन्दर और स्वादमय था। जीवन की कठोरता, कुरूपता, दरिद्रता और चिता का नाम-निशान भी न था। उस लोक की रानी सोफिया उनकी प्रेमिका थी। उनके प्रेम में वे अपने को भूल गये। उन्हें यह जेल का जीवन, यह सेवा-व्रत खलने लगा क्योंकि वह उस सुखद कल्पना में बाधक था।

पृ० २८४, सोफी ने सारी रात····· गुण-दोष से मुक्त थी।

विनय के प्रेम ने सोफ़िया के मन में बड़ा परिवर्तन कर दिया। जेल में विनय से मिल लेने के बाद, वह रात में लेटे हुये भावी जीवन के बारे में नाना प्रकार की कल्पनाएँ करने लगी। फिर वह जो कुछ सोचती, उससे उसे चैन न मिलता, जहाँ उसे धूप अर्थात् आशा का चिन्ह दिखाई देता, उसी क्षण उसे वहाँ छाँह अर्थात् निराशा दृष्टिगत होती। उसे सुख में दुख जान पड़ता। वह अपने जीवन को जितना अपने यत्न द्वारा सुधारने का प्रयत्न करती, उतना ही वह दुखद, नीरस और मलिन बन जाता। चूँकि वह "ईश्वर" में विश्वास करती थी, इसलिये उसे यह समझ में आने लगा कि ईश्वर ने जो कुछ मेरे लिए विधान रच दिया है, वही पूरा होगा। मेरे गुण-दोष भी उसी के बनाये हैं, अपने कर्मों के के लिये मैं उत्तरदायी नही हूँ।

पृ०२८८, प्रेम एक भावनागत······कई गुना बढ़ा दिया है।

प्रेम का सम्बन्ध भावना से है। अगर भावना न हो, तो प्रेम हो नष्ट जाता है। प्रेम कोई स्थूल वस्तु नहीं है। चूँकि यह विश्वास मुझे है कि तुम मेरे हो इसलिए मेरा प्रेम स्थायी रहेगा। जिस दिन यह विश्वास जाता रहा, उसी दिन मेरे जीवन का अंत हो जायगा। अगर तुमने जेल में पड़े रहने का निश्चय किया है, तो मैं इसे स्वीकार करती हुँ। तुमने विरागी का मार्ग अपनाया है, इसलिए तुम्हारे प्रति मेरे मन में आदर अधिक बढ़ गया है।

पृ० २९५, विचार शीलता स्वाभाविक सौन्दर्य............प्रेम विहीन, उद्देश्य विहीन।

शरीर सुन्दर है और उसके साथ मनुष्य के मन में उच्च विचार हों तो सुन्दरता ज्यादा बढ़ जाती है। विचारों की उच्चता में ही सुन्दरता है। अच्छे वस्त्र पहनने से तो सौन्दर्य बनावटी बन जाता है। वह भद्दा जान पड़ने लगता है। दिखावटी और असली सौन्दर्य में वही अन्तर है, जो हास्य और मुस्कान में, धूप और चाँदनी में और संगीत तथा काव्य में पाया जाता है। सोफिया देवी है। उसकी मुस्कान में वही शीतलता है जो वसंत की वायु में या कवि की मौलिक सूझ में होती है। हम कितने गिरे हुए हैं कि एक स्त्री को देखकर वासना युक्त नजरों से उसकी ओर देखने लगते हैं, होश हवास खो बैठते हैं।

सोफी जैसी नारी को पाने के लिए किसी भी नियम को तोड़ना उत्तम होगा। उसके बिना मेरा जीवन उस वृक्ष के समान रहेगा जिस पर कोई भी वर्षा अपना प्रभाव नहीं दिखा सकती। उसके बिना मेरा जीवन व्यर्थ और निस्सार हो जायगा।

पृष्ठ ३२१, किंतु मुझे उस वस्तु से घृणा है......सुरधाम को भेज दिया।

मुझे सफलता से घृणा है क्योंकि मनुष्य को इस संसार में सफलता दुष्कृत्यों से ही मिलती है। खुशामद, अन्याय, अत्याचार, छल-कपट के द्वारा ही सफलता पाई जाती है। इन्हें हम दुर्गुण करते हैं। हम उन्हीं लोगों को महान पुरुष कहते हैं, जो जीवन में सफल न थे। सांसारिक जीवन उनका दुखमय था, जिन्हें समाज ने ठुकराया। यहाँ तक कि उनकी हत्या भी कर दी। गयी। ऐसे लोग सफल न थे पर वे महान अवश्य थे।

पृष्ठ ३३६, किसी बड़े आदमी को रोते........रूप ही आदर है।

जब हम किसी बड़े आदमी को दुखी देखते हैं, तो उसके प्रति हमारी सहानुभूति बहुत जल्दी जाग्रत हो जाती है। कारण यह है कि हम उसे अपने से भिन्न समझते हैं। उसे हम दैवी गुणों से पूर्ण, अपने से बड़ा समझकर उसके विषय में यह सोचने लगते हैं कि उसका भोजन भिन्न होगा, उसके विचार भिन्न होंगे, उसका रहन-सहन कुछ दूसरी तरह का होगा। इस कूतूहल के कारण उसके प्रति हमारे मन में आदर पैदा हो जाता है।

पृष्ठ ३३६, परनिन्दा का मनुष्य.........बाहर हो जाती है।

हम यों चाहे दूसरों की की निंदा न करें परन्तु जब कोई धनी मानी या शक्तिशाली मनुष्य हमारे सामने हो, तो हम पर निंदा किये बिना नहीं रह सकते। दूसरों की बुराई करके हम उनकी आँखों में ऊँचे उठना चाहते हैं। उनके आगे हम उन लोगों की बुराई भी कर जाते हैं जिनसे हमारी कोई शत्रुता नहीं। केवल सम्मान पाने के लिए, उनका विश्वासपात्र बनने के लिए, हम पर-निंदा का अपराध करते है। हम चाहें भी तो अपनी जबान को नहीं रोक सकते।

पृष्ठ ३५६ मगर क्रोध अत्यंत कठोर.........मौन उसके लिए अजेय है।

क्रोध की दशा में मनुष्य अत्यंत निष्ठुर हो जाता है। वह चाहता है कि कड़ी-से-कड़ी बात अपने विरोधी से कहे। साथ ही वह यह भी देखना चाहता है कि मेरी बात का क्या प्रभाव उस विरोधी पर पड़ा। यदि विरोधी चुप रहे, तो उसके वार व्यर्थ जाते हैं। क्रोध के पास बड़े-बड़े घातक अस्त्र हैं। अर्थात् क्रोध में मनुष्य कटुवाक्यों से लेकर वध तक का प्रयोग कर सकता है। पर मौन के आगे क्रोध का कोई वश नहीं चलता। सहनशील और चुप रहने वाला व्यक्ति अपने सारे विरोधियों को पराजित कर सकता है।

पृ० ३७५, कवि प्रायः एकान्तसेवी……बेजार हो रहा हूँ।

प्रायः यह कहा जाता है कि समाज से अलग रह कर कवि की कविता बेजान हो जाती है। देखा यह गया है कि कवि एकान्तवास ज्यादा पसंद करते हैं। समाज से अलग रहने पर भी उनकी कविता में कोई दोष नहीं पैदा होता है। यदि वे समाज में रहें, तो उनका अनुभव और ज्ञान दोनों ही विकसित हो जाय और साथ भी उनकी कविता भी अधिक उपयोगी बन जाय पर इससे एक दोष भी पैदा हो सकता है, वह यह कि संसार में फँस कर उनकी कवित्व शक्ति नष्ट हो जायगी। इसलिए कवि के लिए एकान्त जीवन अधिक उपयोगी है। इसका प्रमाण सूरदास, होमर और मिल्टन की कविता में मिलता है। इन तीनों के काव्य श्रेष्ठ हैं, परन्तु वे कभी भी समाज में घुस कर नहीं रहे। हमारे अन्य कवि जैसे बाल्मीकि, तुलसी आदि भी सन्यासी थे। समाज से दूर कुटियों में रहने पर भी उनका कविता उच्च कोटि की रही। मैं यह तो नहीं कह सकता कि भविष्य में मेरी विचार-धारा ऐसी ही बनी रहेगी या नहीं पर इस समय तो धनार्जन की ओर मेरा झुकाव नहीं है।

पृ० ४२३, अगर मैं देवता होता……तृप्ति नहीं होती।

विनय सोफिया के आध्यात्मिक प्रेम से संतुष्ट न था। वह साधारण मनुष्य की भाँति वासना का आनन्द भी लेना चाहता था। इसलिये वह कहता है, कि आदर्श प्रेम और भोग-विलास से दूर रहने की बात केवल देवता कर सकते हैं। मै तो केवल एक साधारण मनुष्य हूँ। मैं केवल भावना का सम्बन्ध नहीं चाहता। मैं तुम्हारे साथ लोग करना चाहता हूँ। मेरी मुंडेर पर एक

चिड़िया बैठी है, उसे देख कर मुझे सन्तोष नहीं है। मैं उसे अपने पिंजड़े में बन्द करके उस पर पूरा अधिकार चाहता हूँ। केवल भोजन को देखने से तृप्ति नहीं होती, उसे खाकर ही पेट भरता है। तात्पर्य यह है कि मेरा और तुम्हारा सम्बन्ध स्त्री-पुरुष का होना चाहिये। प्रेम के साथ यौन सम्बन्ध भी आवश्यक है।

पृ० ४४८, वैद्य प्रत्येक ऐसा रोग······शासन करता है।

हर एक का इलाज हो ही, यह संभव नहीं। यह वैद्य की मूर्खता है कि वह प्रत्येक रोग की दवा ग्रन्थों में खोजता है, लक्षणों का अध्ययन करता है। पष्ट है कि वह खुली हुई बुद्धि से काम नहीं लेता। लुकमान या धन्वंतरि भी ऐसे रोग का उपचार नहीं कर सकते जो असाध्य है। इसलिये मनुष्य की बुद्धि संकुचित न होनी चाहिये। उसे बड़े व्यापक विस्तार रूप से सोचना चाहिये। ऐसा व्यक्ति एक स्थान पर बैठे-बैठे बड़े-बड़े काम कर सकता है। उदाहरण के लिये मंत्री समा-भवन में बैठ कर बड़ी-बड़ी सेनाओं का संचालन करता है। इसका कारण यह है कि वह दूरदर्शिता से काम लेता है और इसी से वह ऐसे काम कर सकता है।

पृ० ४५६, वह स्त्री नहीं है······भावना है।

इंदु सोफिया को विशेषता बताते हुए कहती है कि सोफी अपने व्यक्तित्व को भी समझने में असमर्थ है। इसी से वह अपने जीवन के विषय में कोई निर्णय नहीं ले पाती। उसकी कल्पना शक्ति प्रबल है और वह भावों के प्रवाह में बह जाती है। वास्तव मे वह साधारण मनुष्य की तरह इस संसार की प्राणी नहीं है, वह आदर्शवादिनी स्त्री है। इसी से हम उनकी बातों और विचारों को समझने में असमर्थ रहते हैं। उसकी विचारधारा इतनी उच्च है कि उसे स्पष्ट रूप से प्रकट करने में वह स्वयं असफल है। जैसे एक कवि अपने सूक्ष्म भावों को प्रकट नहीं कर पाता, उसी प्रकार हम सोफिया के व्यक्तित्व का वर्णन नहीं कर सकते। उसकी तुलना कवि की अन्तर्तम भावना से की जा सकती है।

पृ० ४८१ गंगे ! ऐसाप्रभावशाली दृश्य ······वलिदान कर दिया।

पांडु के गोली कांड में इंद्रदत्त सहित बाहर लोगों की मृत्यु हुई। उन लोगों के शव गंगा जी में प्रवाहित करने के लिये ले जाये गये। लेखक इस अवसर पर गंगा जी को संबोधित करता हुआ कहता है कि ऐ गंगा माता! तुम अनादि काल से इस देश में प्रवाहित हो रही हो। तुम्हारे किनारे पर कितने ही लोगों के शव जलाये गये। इनमें ऐसे-ऐसे वीरों के शव थे, जो सिहों से भी ज्यादा वीर थे। उनमें बड़े-बड़े राजा भी थे, जिन्होंने दिग्विजय करली थी। कोई भक्त था, कोई ज्ञानी, कोई सम्राट था, कोई विजेता, कोई शासक था, कोई राजनीतिज्ञ—वे सभी तुम्हारे किनारे जल कर भस्म हो गये। परन्तु तुम्हें कभी न हर्ष हुआ और न शोक। तुम तटस्थ भाव से बहती रहीं, परन्तु आज देश के लिये वलिदान होने वाले इन वीरों का दाह-कर्म देख कर तुम्हें अवश्य ही आनन्द हुआ होगा। अपने स्वार्थ के लिये मरने वाले व्यक्तियों के प्रति तुमको क्यों रुचि अथवा अरुचि होती। यह लोग तो मरे थे दूसरों के लिये, न्याय की रक्षा के लिये और एक आदर्श के लिये। वे लोग तुम्हारे निकट विश्राम लेने आ रहे हैं। उन्हें देख कर अवश्य ही तुम्हें प्रसन्नता हुई। तभी तो तुम्हारे हृदय में लहरें उठ रही हैं।

पृष्ठ ४९८, नीति चतुर प्राणी अवसर..............महत्वपूर्ण समझते हैं।

जो लोग नीतिशास्त्र को जानते हैं, वे समझ बूझकर अवसर के अनुकूल काम करते हैं। आश्यकता के अनुसार वे दब जाते हैं, जहाँ क्रोध दिखाना चाहिए क्रोध दिखाते हैं। उन्हें हर्ष दुख मान-अपमान का अनुभव नहीं होता। वे अपने निश्चय के अनुसार चलते हैं। उनका काम सिद्ध होना चाहिए। चाहें उनका अपमान हो या तिरस्कार। इसके विपरीत सरल स्वभाव वाले व्यक्ति भावना प्रधान होते हैं। जोश मे आकर के कुछ भी कर सकते हैं। उनकी तुलना बादलों से की जा सकती है। जैसे बादल अनुकूल वायु प्रकार इकट्ठा होकर घनघोर वर्षा करते हैं और प्रतिकूल वायु पाकर बिखर जाते हैं, उसी प्रकार भावुक व्यक्ति बड़े से बड़ा त्याग कर सकता है और अवसर पर भाग भी सकता है। नीतिवान व्यक्ति अपने स्वार्थ के आगे आदर्श का बलिदान करने में नहीं हिचकता परन्तु सरल

निष्कपट व्यक्ति अपने आदर्श के पीछे जान दे देता है। उस पर अगर कोई दोष लगाये, तो वह सह नहीं सकता। अपने को निर्दोष सिद्ध करने के लिए वह मरने को तैयार हो जाता है। उनके लिए चरित्र अधिक मूल्यवान है, सफलता नहीं।

पृष्ठ ५११, धर्म हमारी रक्षा..............उतना ही अच्छा।

सभ्यता के विकास के दौरान में मनुष्य ने धर्म की रचना की क्योंकि उससे मनुष्य का भला होता है। वह हमारे भीतर उत्तम भाव जगाता है, हमे सच्चे अर्थों में मनुष्य बनाता है। मनुष्य की भलाई का वह साधन है। यदि धर्म मनुष्य का हित नही कर सकता वरन् उसकी उन्नति में बाधक बन सकता है, तो उसे त्याग देना चाहिए। जैसे हम फटे पुराने कोट को उतार कर फेंक देते हैं। अगर धर्म की रस्सियों से हमारी आत्मा बँधकर नष्ट हो जाय, तो वह धर्म त्याग देने योग्य है।

पृ० ५२०, सूरदास अभी नहीं मरेगा······ऐसा ही समझता है।

सूरदास का शरीर नष्ट हो सकता है परन्तु उसका आदर्श नही मर सकता। जब तक किसी मनुष्य के विचार संसार में रहें, तब तक उसे जीवित समझना चाहिए। सूरदास के विचार और आदर्श शाश्वत हैं, अतः उसकी मृत्यु नहीं हो सकती। वह अनंत काल तक जीवित रहेगा। उसके आदर्श सबको प्रेरणा देते रहेंगे। हम लोग तो केवल शरीर के रहते जिंदा रहते हैं क्योंकि हमारा कोई आदर्श नहीं होता। सूरदास ने कर्म और वीरता का मार्ग हम सबको दिखाया है। उसकी मृत्यु नहीं होगी वरन् वह मर कर और भी ज्यादा अमर हो गया है।

पृष्ट ५२१, बस-बस अब मुझे मारते हो··········जीत होगी, जरूर होगी

मृत्यु के निकट सूरदास प्रलाप में भी ज्ञान की बातें करने लगा। वह ईश्वर को संबोधित करते हुए कहता है, कि तुम्हारा हमारा क्या मुकाबला तुमने यह संसार बनाया और जीवन का खेल तुम्हारे लिए कुछ नहीं है। तुममें शान्ति है, उत्साह है। हम निर्बल प्राणी हैं, हम अपने कर्म में असमर्थ हैं। तुम हर प्रकार से जीत सकते हो, हम इसलिए हारते हैं कि हम में एकता नहीं, सहयोग नहीं, पर तुम्हें हमारी हार पर हँसना नहीं चाहिए। तुम्हें हमें उत्साह देना

चाहिए। ताकि हम खेलने में निपुण हो जांय। तुम्हें हमे उत्साहित करना चाहिए क्योंकि हमने भी खेल भरसक खेला, न्याय पूर्वक खेला और वीरता से खेला और यह निश्चय किया है कि खेलेंगे अत में बिजयी होंगे।

सूर के इस कथन में प्रतीको का प्रयोग है। यहाँ खेल के अर्थ हो सकते हैं। एक तो अपने और जांनसेवक के बीच संघर्ष का उल्लेख है जिसमें अंत में विजय उसी की होगी, क्योंकि पूंजीवाद को अन्त में जनता के आगे पराजित होना है। दूसरा अर्थ खेल का है, ईश्वर और भक्त है। प्रत्येक जन्म खेल है। हर जीवन में भक्तजन अमरत्व पाने में असफल रहते हैं पर अन्त में ईश्वर की कृपा से किसी न किसी जन्म ब्रह्मपद पाने में सफल होते हैं।

पृष्ठ ५४४, इस जीवन से परे अब......................मिलती है।

भरत सिह लगभग नास्तिक होगये और निराशावादी बन गये। उनका स्वर्ग-नर्क पर से विश्वास उठ गया। ऊपर स्वर्ग नहीं केवल आकाश है। यह जीवन हमें सुखपूर्वक बिताना चाहिए। मृत्य के बाद क्या होगा, कुछ कहा नहीं जा सकता। इस संसार की जो दशा है वही बनी रहेगी। इसे सुधारने का न जाने कितना यत्न किया गया पर कोई परिवर्तन नहीं आया। जीवन का रहस्य बड़े-बड़े ऋषि-मुनि न पा सके। हमें इस पचड़े में न पड़ कर सुख पाने में लगना चाहिए। देशभक्ति, विश्वप्रेम, परोपकार, सेवा आदि के आदर्श खेल दिखाने के लिए हैं।

चुने हुए प्रश्न

१. 'रंगभूमि की कथा संक्षेप में लिखिए। इसे राजनीतिक उपन्यास कहना कहां तक उचित है ?

२. रंगभूमि का कथानक सुगठित (Organic) प्रकार का है या शिथिल (Loose) प्रकार का १. प्रमाण सहित उत्तर दीजिए।

६. "प्रेम चंद जी कथा कहने की कला खूब जानते है परन्तु उनमें आवश्यकता से अधिक कहने की प्रवृति हैं।" इस कारण से आप कहाँ तक सहमत हैं ? रंगभूमि के आधार पर लिखिए।

४. रंगभूमि के कथानक की रचना में प्रेमचंद जी ने किन सिद्धान्तों का प्रयोग किया है ? सोगदाहरण उत्तर दें।

५. प्रेमचंद जी की चरित्र-चित्रण कला पर एक निबंध लिखिये।

६. प्रेमचंद जी के चरित्र-चिरण में कहाँ तक मनोवैज्ञानिकता है ? रंगभूमि में यह विशेषता कहाँ तक पायी जाती है ?

७. प्रेमचंद जी उन पात्रों के चरित्र-चित्रण में कहीं अधिक सफल हुए हैं जिन की ओर उन्होंने कम ध्यान दिया है। उस दृष्टि से कुल्सुम, सुभागी, बजरंगी और ताहिर अली में से किसी दो पात्रों के बारे में विचार प्रकट करिए।

८. सूरदास का चारित्र-चित्रण करिए और यह बताइए कि उसे गाँधी की अनुकृति कहना कहाँ तक उपयुक्त होगा।

९. 'सोफिया' भारतीय नारी-जीवन के आदर्शों की प्रतिमा है। इस दृष्टि कोण से उसका चरित्र-चित्रण करिए।

१०. विनय के चरित्र की प्रमुख विशेषताएँ बताइए। इस पात्र के चरित्र चित्रण में प्रेमचंद जी को कहाँ तक सफलता मिली है।

११. रंगभूमि के कथोपकथनों की विशेषताओं पर सोदाहरण प्रकाश डालिए ! इन कथोपकथनों में नाटकीयता कहाँ तक पायी जाती है !

१२. रंगभूमि की भाषा और शैली पर विस्तार से विचार प्रकट कीजिए।

१३. "प्रेमचंद जी ने अपनी अदभुत् पर्यवेक्षण शक्ति से अपने वर्णनों में चमत्कार पैदा कर दिया है।" इस कथन की सार्थकता रंगमूमि से उदाहरण देकर सिद्ध करिए।

१४. रंगभूमि पर गाँधीवादी विचार-धारा की छाप कहाँ तक वर्तमान है ? सिद्ध करिए।

१५. 'रंगभूमि' भारत के राजनैतिक युग का प्रतिबिंब है। इस कथन से आप अपनी सहमति अथवा असहमति प्रकट करिए।

१६. प्रेमचंद जी यथार्थवादी लेखक हैं अथवा आदर्शवादी ! अपने विचारो की

पुष्टि में रंगभूमि से प्रमाण दीजिए।

१७. रंगभूमि का संदेश क्या है? हमारे लिए वह कहाँ तक और क्यों अनुकरणीय है?

१८. "प्रेमचंद जी भविष्य थे। दृष्टा वे पूंजीवादी व्यवस्था के कुपरिणामों को समझते थे।" रंगभूमि की कथा से यह बात कहाँ तक सिद्ध होती है?

१९. 'रंगभूमि' में आये हुए हास्य-विनोद प्रधान प्रसंगों कत्थकपन करिए। उसमें 'हास्य' की विशेषताओं का उल्लेख करिए।

२०. 'रंगभूमि' में पराधीन भारत की किन-किन समस्याओं का उल्लेख है? उन पर प्रेमचंद जी ने प्रकारान्तर से क्या विचार प्रकट किये हैं।

...

हिन्दी विद्वान परीक्षा

के लिए

हमारी अन्य उपयोगी पुस्तक



